# शाचार्यश्री आतृचंद्रस्रिज्यमाळा. ५० थी ५३.



समाचारी समाश्रित-

श्रीसमपदीशास्त्र



ं संपादकः— आचार्यदेवश्रीसागरचंद्रयुरीश्वरजीः

# 

ाचार्यदेवश्रीश्रातृचंद्रसरीश्वरजी ग्रन्थमाळा.

पुस्तक ५०, ५१, ५२, ५३.

युगप्रधान श्री पार्श्वचन्द्रमूरीश्वरजी प्रणीत-सामाचारी समाश्रित-

# श्रीसप्तपदीशास्त्र.

<sub>मृल-अर्थ</sub> आदिश्रन्थ ४

संपादक तथा अनुवादक-आचार्यदेवश्रीसागरचन्द्रसूरीश्वरजी साहेब प्रकाशक-मांडल संघ तरफथी-व्होरा-मोहनलाल जीवराज-मांडल

अमदाबाद-धी डायमंड ज्युबिली प्रिन्टींग प्रेसमां परीस शरेशचंद्र पोण्टलाले छाप्यं.

वि. सं. १९९६ आवृत्ति १ ली

सने १९४० प्रतः १०१

किंमत १ रुपीओ टपालखर्च ६ आना अलग.

# प्रसु प्रार्थना-

ॐकारध्येयरूपः मथमिजनपतिः शान्तिकृद् श्रीमान श्रीनेमिनायो यदुकुलतिलकः पापहत्ता अनानाम ॥ मायाबीजात्मरूपः सकलसुलकरः पार्श्वदेवाधिदेवो । देयाच्छ्रीवर्द्धमानो ग्रहगणधरसुग् वर्द्धमानं पदं मे ॥ १ ॥ श्रुतदेवी स्मर्ष्

जिनपतिप्रथिताखिलवाङ्मयी, गणधराननमण्डपर्नर्वकी । गुरुग्रुखाम्युज्यत्वेलनइंसिका, विजयते जगति श्रुतदेवता ॥ १॥ श्रीसरस्वती स्तुति ( अनुष्टुप श्क्षेष्ठ-अष्ट्रपदी )

" श्वेतपद्मासना देवी, श्वेतपद्मोपशोभिता । श्वेताम्बरधरा देवी, श्वेतगन्धानुस्त्रेपना ॥ अर्चिता मुनिभिः सर्वे,-ऋषिभिः स्तूयते सदा । एवं ध्यात्वा सदा देवीं, वाञ्छितं स्रभते नरः" ॥ १ ॥ ॥ श्रीपरमगुरुदेव-स्तुतिः ॥ (स्रम्थरा-वृत्तम्)

श्रीमत्पार्श्वेन्दुसुरिः सकलमुनिजनैरच्येपादारिवन्दो, भक्तेभ्यस्सत्प्रवीधं सपदि भवगदच्छेदशक्तिं ददानः । सोऽयं गच्छाधिनाथो जयति जिनमते भव्यसौभाग्यकीर्त्ति,-स्तं भक्तया भो पुमांसो!नमत नतिगुणश्रेणिपं तत्त्वधीशम्॥१॥

अर्थः — समस्त मुनिजनोथी सेववायोग्य चरणकमळ-वाळा, भक्तोने उत्तम उपदेश आपनारा, तत्काळ संसाररूप रोगने छेदवानी शक्ति उत्पन्नकरनारा, विशाळसौभाग्य तथा कीर्तिने घरावनारा, ते आ नागपुरीयतपागच्छना अधिपति श्रीमान, पार्श्वचन्द्रमृद्धि जैनशासनमां जय पामे छे. हे पुरुषो ! नमस्कार करवायोग्य गुणोनी पंक्तिने धारणकरनारा अने तत्त्व-. ज्ञानमां बृहस्पति जेवा तेओश्रीने भंक्तिथी नमस्कार करो. १

### Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra

# जगत् श्रेष्टिगुरु श्रीहर्षचंद्रसूरी वरचरणानुचर-पंडितप्रवर महर्षि श्रीमुक्तिचंद्रगणिसुशिष्य-



युगप्रवर भट्टारकोत्तम भ० पूज्यपाद जैनाचार्यवर्य-श्रीभातचंदसूरीश्वरजी महाराज.

# सादर-समर्पण.

तत्वज्ञं श्रोधातृचंद्रं, दीव्यं स्याद्वादवादिनम् । पदस्यं नयनिष्णातं, वंदे श्रीमुक्तिनंदनम् ॥१॥

परमपुज्य प्रातःस्मरणीय जगत्शेठगुरु श्रीवडतपगच्छनाः यक श्रीपार्श्वचंद्रसूरोश्वर संतानीय श्रीजैनश्वेताम्बराचार्यवर्य श्रीहर्षेचंद्रमूरीश्वरजी महाराजसाहेबना शिष्य पंडित प्रवर महर्षिश्रीम्नक्तिचंद्रगणीना धर्मपुत्र सुशिष्य प्रातःस्मरणीय परमोपकारी संवेगरंगरंगितात्मा वि० सं० १९३७मां कियो-द्वारकारक परमकृषालु शान्तरसपयोनिधि चारित्रपात्रचृडा-मणि स्वनामधन्य श्रीमन्नागपुरीयवृहत्तपागच्छाधिराज आचा-र्यदेव श्री १००८ श्रीभ्रात्चंद्रसूरीश्वरजीमहाराजसाहेब! आपश्रीजी ! गच्छना नायक लायक हता,युगप्रवर जैनाचार्य हता अने कोमलविद्यावंत संतमहंतहता. आपश्रीजीए ! पवित्र श्री जिनागमनीवाणीथी विद्वताभरी शान्तिमय उपदेशकरवानी पद्धतिथी अने मुनिजनने शोभेतेवा अमेक धार्मिक शुभकार्यो करवाथी चणाभव्यात्माओने मोक्षमार्गसन्मख बनाव्याछे. आपश्री पुज्यजी! उत्तम जोवनजीवी अन्यधन्यात्माओने उत्तमजीवन जीववानी छापपाडी स्वर्गवासीथया. अनेक उत्तमगुणोने धारणकरनारा आपश्रीजीतरक आक-र्षायीने अनेवली आपश्रीजी! परमगुरुदेवश्रीपार्श्वचंद्रसरी-श्वरजीमहाराज साहेबना वचनामृतोपर परमश्रद्धाने धारण करनाराहता, तेथी तेमना रचेला "सप्तपदी" तथा " विचारपट्ट " नामक आग्रन्थो आपश्रीजी साहेबने सादर समर्पणकरी हं म्हारा आत्माने कृतार्थ मानुं छुं.

ली. आपश्रीजीनो पशिष्यमुनिट्ढिचंद्र.

# निवेदन.

" प्रवलेऽपि कलिकाले, स्मृतमपि यन्नाम हरति दुरितानि । कामितफलानि कुरुते, स जयति जीरावलिपार्थः " ॥१॥

आ ' समाचारीसमाश्रित-सप्तपदीशास्त्र आदिग्रन्थः" परमपुज्यपरमगुरुदेवश्रीनागपुरीयबृहत्तपागच्छाधिराज युग-प्रधान श्रीपार्श्वचंद्रसुरीश्वरजी महाराजे रचेल हे. ते ग्रन्थनी हस्तलिखित प्रतियो-नकलो बहुओछी जोवामां आववाना कारणे आ ग्रन्थने छपावी पसिद्ध करवामां आवे तो घणाने वांचवानी अनुकुछता थाय, तेथी परमोपकारी मातःस्मरणीय आचार्यदेवश्रीस्रातचंद्रमुरीश्वरजी महाराजना पूर्वाचार्यवर्षेश्रीसागरचंद्रसुरोश्वरजीमहाराजे पोतानी देख-रेखनीचे पोतानाशिष्य मुनिराजश्रीवृद्धिचंद्रजीमहाराजपासे प्रेसकोपी तैयारकरावी अने तेओश्रीनाज उपदेश्यी मांडल निवासी श्रीपार्श्वेचंद्रसरिसद्गुरुचरणकमलोपासक श्रीसंघे आपेल द्रव्यसहायताथी आग्रन्थ मसिद्ध कर्वामां आवेल्रहे. आ ग्रन्थना पुफ सुधारवा विगेरेनी कालजी पण उपरोक्त आचार्यश्री तथा मुनिराजे संपूर्ण राखेल हे छतां पण मुद्रायंत्रना दोषथी वीबाओ उडी जवाथी के टूटी जवाथी, दृष्टिदोषथी अथवा भ्रांतिथी जे कांइ अशुद्धि रहीगएल होय तेने सुधारी लेवा समजु गुणग्राही विद्वान वर्गने विनति छै. आ ग्रन्थना संपादक ग्रुरु-शिष्यने भूरिवंदनकरी अने सहा-यकोनो उपकारमानी हुं विरम्नं छुं ली० प्रकादाक.

### धन्यवाद.

परमपुज्य आचार्य महाराज श्रीसागरचंद्रसूरीश्वरजी महाराजने मांडलगामना श्रीसंघनी चातुर्मास माटे अत्यन्त आग्रह भरी विनती थवाथी वि. सं. १९९३ ना आषाढ सुदिमां अत्र पधार्या, अने अहिना श्रावकोने चोमासामां श्रीभगवतोजी सुत्र पंचमांग वंचाय तो बहु सारु आवो उत्साह थवाथी शा. चुनिलाल मलुकचंद तथा व्होरा मोहनलाल जीव-राज तरफथी अने चोमासा बाद पन्नर दिवस सुधी जा. मछ-क्वंद खेमचंद तरफथी वंचावामां आवेल अने वि. सं. १९९४ <sup>्</sup>नी सालना चोमासामां गांधी मोहनलाल नथुभाइ तरफथी वंचावामां आवेल. ते निमित्ते जे कांड ज्ञानद्रव्यनी आवक शह ते परमगुरुदेव युगमधान श्रीपार्श्वचंद्रसुरीश्वरजी महाराज विरचित ग्रन्थ छपावामां वापरवी. एममाणे श्रीपार्श्वचंद्र-गच्छना आगेवानोनी इच्छाथवाथी ते रकम आग्रन्थ छपावामां बापेल है. तेथी परमगुरुदेवना विरचित आ ग्रन्थोने प्रसिद्ध करवामां उत्साह धारण करी द्रव्यसहाय आपनारा मांडल-जामनिवासी श्रीपार्श्वैचैदसृरिगच्छना अनुयायीश्रावकोने धन्यवाद आपवामां आवेछे तेमज स्वभातबंदर निवासी पाग-. बाटवंशीय शेठ दलसुखभाइ वीरचंद तरफथी सप्रेम आ ग्रन्थमां क २५ नी सहाय आवेल छे तेमने तथा प्रेसकाम संबंधी न्नाः वाडीलाल लल्खभाइए मदद सारी करीहे.

तेथी तेमने पण धन्यवाद आपवामां आवे है. इति क्षम. संवत् १९९५ झानपंचमी, हे ही. संतचरणरज -म्र. मांडल. मिन्हिद्धिचंद्र.

### प्रस्तावना.

श्रीपार्श्वेचंद्रस्रीन्द्राः, कली करपहुमोपमाः। सदाचारा गुणैन्यप्ता, भवंतु शांतिदायकाः॥ १॥

आ अपार संसारमां जन्म-मरणना दुःखोथी बचवानो श्रेष्ठ उपाय श्रीवीतराग-परमात्मानी पवित्रवाणीनी उपासना-सेवना छे. ते सद्गुरुना कथनथी प्राप्त थइ शकेछे. श्री बीत-रागनी आणा प्रमाणे कथन करनार अने पोते श्रीवीतरागनी आणाना अनुसारे यथाज्ञक्ति सम्यक्चारित्रमार्गमां पृष्टित करनार होय ते सद्गुरु कहेवाय है, सद्गुरु धर्मीचार्यी पोते उत्तम चारित्रवाळा होयछे अने पोताना अनुयायिओने उत्तम चारित्रवान् बनाववासारु सुत्रानुसारे अनेक रचनाओ करनारा होयछे, तेथीज ते परमोपकारी कहेवाय छे. परमो-पकारी परमगुरुदेव युगप्रवर आचार्यवर्थ स्वनामधन्य पातः स्मरणीय युगपथान श्रीपार्श्वचंद्रसूरीश्वरजी महाराजे जेनी आराधना सेवना करवाथी जीवनुं कल्याण थाय एवी समा-चारी आश्रित आ " सप्तपदीशास्त्र" रचेल छे. जेमां ग्रुख्य सात बीनाओनं वर्णन करवामां आवेल छे. (१) मथम गच्छ-स्थित-गच्छनी मर्यादा, गच्छ कोने कहेवाय ते संबंधि स्वरूप वर्णवेळं छे. (२) बीजी बीना संभोगासंभोगविधिनी छे. केवा म्रनिओ-चारित्रियाओं संभोगी-एक बोजानी साथे आहार-

पाणी विगेरेनो व्यवहार राखी शके ? अने क्यां सुधी संभोगी पर्णु चार्त्यु ? अने क्यारे संभोग असंभोगीपर्णुथयुं ? ए विगेरेनुं वर्णन जेमां करवामां आवेल छे. (३) त्रोजी बीना रात्रि-दिवसमां सुनिराजोए केवी पट्टिंच करवी, राजिसंबंधी कि-याओ. दिवससंबंधी क्रियाओ-आचरवानी विधिओ सूत्रा-नसारे बताबवामां आवेल है (४) चोथी बीना पांचे प्रति-क्रमणनी विधिओ सूत्रपंचांगीना आधारे बताववामां आवेल छे, (५) पांचमी बोना उदयतिथीनुं स्वरुप सूत्रहत्तिओना अनुसारे बतावेल छे. (६) छठी बीना श्रावकोना उपधाननो विधि आगमानुसारे बताववामां आवेल है. (७) सातमी बीना उपदेशविधि मुनिराजोए केवा प्रकारनो उपदेश आपवो ? ते सुत्रानुसारे बताववामां आवेल छे. आ ग्रन्थमां ग्रुरूय बी-नाओं जे आ उपर बताबी ते सात है. ते सिवाय पेटामेंदे घणी बीनाओं बतावेल है. श्री समाचारी समाश्रित-श्रीसप्तपदी शास्त्रनी एकपत परमपूज्य आचार्यदेव श्रीश्रातृचंद्रसूरी-श्वरजी आश्रित अमदावाद सामळानी पोळना मोटा उपा-श्रयना ज्ञान भंडारमांथी प्राप्तथड, ते प्रायः शुद्ध त्रणसोवर्ष पहेलानी लखेल २६ पत्रवाळी हती अने बीजी पत मारी-पासे हती, तेना पत्र २७ छे. ते पत पोणा बज्ञे वर्ष पहेलानी छखेल जणाय है अने ते पण घणा भागे शुद्ध है. ए बन्ने प्रतोना आधारे मांडल गाममां ग्रुनिश्रीदृद्धिचंद्रजीएपोताना अवकाञ्चना समयमां म्हारी देखरेख नीचे लगभग आढ म-

हिनामां प्रेसकोपी तैयार करी हती. ते मूलप्रन्थमां जे जे सिद्धान्त—सूत्रोना मूलपाठो आव्या, ते ते मूलपाठोने आग्मनी प्रतो भंडारमांथी काठी, तेनी साथे मेलवी लख्या छे. ते सूत्र—आगमना मूलपाठो सुखेथी समजाय एटला माटे तेनी टोका—हत्ति पण ज्यां ज्यां मूलप्रन्थमां न हती त्यां त्यां नाना टाइपनी अंदर कोंसमां लीधेल छे. २७ पानावाळी प्रतमां केटलीक जगाए पंक्तिओ पानानी कांबीमां बारीक अक्षरोथी टिप्पणीरुषे लखेल हती, ते पण नाना टाइपमां लिधेल छे, ज्यां ज्यां लिधेल छे, ज्यां ज्यां लिधेल छे, ज्यां ज्यां लिधेल छे, त्यां त्यां आ प्रमाणे सूचन करवामां आवेलछे के आ बीना लखेल पानानी कांबीमां छे. ए टिप्पणीओ पाळलना थएला आचार्योंनी करेली जणाय छे. आ ग्रन्थ आचार्यदेवे वि. सं. १५९१ना कार्तिक सुदी पूर्णिमाना दिवसे रची संपूर्ण करेल छे, ते बीना सुरिजीए ग्रन्थना अंतमां पोतेज आ प्रकारे जणावेल छे—

''सिसनंदतिहिपमाणे, विक्वमसंवञ्छराउ वरिसंमि । कत्तियपुक्तिमदिवसे, लिहियमिणं पासचंदेण ॥ २८५ ॥ '' बीजो ग्रन्थ '' उत्सृत्रतिरस्कारनामा-विचारपट ''

जेमां सूत्र-सिद्धान्तना अनुसारे मुनिराजोनो उपदेश केता प्रकारनो होय? शुं शुं आचरी शके ? अने शुं शुं न आचरी शके ? इत्यादि घणा विचारो जणाव्या छे ते वांचवाथी वाच-कने अनुभव थइ शके तेम छे, तेथी ए संबंधि विशेष जाण- बानी इच्छाबाळाए विचारपट वांची जोवो "उत्सुत्रतिरस्कार नामा-विचारपट " नी नकल एकज परमपूज्य आचार्यदेव श्रीभ्रात्चंद्रसुरीश्वरजीसाहेब आश्रित मांडल गाममां रहेल ज्ञानभंडारमांथी प्राप्त यह तेना आधारे प्रेसकोपी सुनिश्री वृद्धिचंद्रजीए तैयार करी छै. ते विचारपट पण त्रणके वर्ष उपरांतनो लखेल मालम पडेछे. ते विचारपटना पहेला के छेला भागमां संवतु के लेखकनुं नाम नथी। वस्नपर लखेल छे लगभग पोणो फ़ट पहोलो अने पाये पनर फ़ट लांबोछे. एक इंच प्रमाणना शास्त्रिलीपीना पहिमात्रावाळा अक्षरोथी लखाएल छे, अने ते जीर्णताने पाम्यो नथी पण सारी स्थितिमां छे. लखाण पण तेमां प्राये करी शुद्ध छे. आ 'उत्स्रत्रतिरस्कारनामा-विचारपट' भट्टारक युगप्रधानश्रीपार्श्व-चंद्रसरिवरे वि. सं. १५७५ ना कार्तिक सदी बीजना दिवसे पाटणमध्ये अखेल है. तेबीना विचारपटनी आदिमांज युग-प्रधान आचार्यदेवे आ प्रकारे जणावेल है:-

" स्वस्तिश्रोसंवत् १५७५ वर्षे कार्तिकशुक्लद्वितीयायां मंगले विहित मंगले मैत्रीपवित्रे मैत्रीनक्षत्रे श्रीपक्ते सुरत्राण-श्रीमद् फुरसाहिराज्ये विजयिति निजनिजनिश्चित्तगुरुनोदित संजातिनःकारणमरसररणरणकहाजीविकानुचरो केशवंश लोक कतिपयदिवसस्थायिपुरोगताऽमद्मत्तपक्षरहित भिक्षको-परिमकदितगाढम्बल्वल्वल्रशालि सा० वत्सराज साराज देवचन्द्रैः मसभगरव्यस्वापायोपायः श्रीवीतरागपणीतद्यारसमयश्री-

समयप्रस्पणातिरस्करणं समालोक्य श्रीजिनाज्ञापालनिवत-न्द्रेण श्रीअष्टापदतीर्थाधिपतिश्रीजिननामस्मरणसंजातभद्रेण स्विर पार्श्वचन्द्रेण पत्रमिदमलेखि, यात्रिकानेकदेशायातिववे-किलोकैः श्रीपत्तननगरिनवासिभिर्जिनाज्ञावासितिचित्तैर्जनैश्व वाच्यमानं चिरं नन्दात्॥"

त्रीजो ग्रन्थ '' श्री स्थापनापश्चाशिकाप्रकरण'' जेमां स्थापना संबंधी बिना सूत्र--सिद्धान्तना पुरावा बताववा पूर्वक जणावेल हे, " श्री जिनमतिमा जिन सारखी " ए वस्तु शास्त्रानुसारे सिद्ध करी लोंकाना मतने अनुसरनाराओने शुद्ध श्रद्धावाळा करवा युक्तिपुरःसर समजाववा माटे आचार्य वर्षे आ ग्रन्थनी रचना करी छे. आ ''श्रीस्थापनापंचा-शिका पकरण '' बारीक अक्षरथी लखाएल एकज पत्रमां संपूर्ण इतो, तेनुं लखाण शुद्ध पण अक्षरो केटलीक लेनोमां घसाइ गएला अने बहुजीणा हता. पत्र पण जीर्ण-विशीर्ण जेवो थइ गएल हतो. बनता पयत्ने विचारपूर्वक ते परथी सुधारो पेसकोपी करवामां आवेल हती. तेना अन्तभागमां पुष्पिका आ प्रमाणे छखेछछे. "इति श्रीस्थापनापंचा-शिका संपूर्णा ॥ संवत १५७४ वर्षे ज्येष्टमासे चतुर्थी तिथौ शनिवासरे लिखिता सूरि पार्श्वचन्द्रेण सा० नाडुपुत्र सा० सघारण पठनार्थम् ॥ श्रोः ॥ " आ स्थापनापंचाशिकाप्रकरण आचार्यश्रीए वि० सं० १५७४ मां बनावेल छे तेज बीना प्रकरणना अन्तमां आपकारे जणावेल छे:-

"वेदम्रणितिहसुविस्से, पंडियसिरिसाहुरयणसीसेण । पासचंदेण विहिया, ठवणा पंचासिया एसा ॥ ५३ ॥''

आ ग्रन्थो रचवानो प्रयोजन-ते वस्त्रते जैनोमां वाता-वरण घणोज कल्लिवत थएल परस्पर द्वेष, इर्ष्या, सत्य वस्तुने ढांकनारा, साधु-ग्रुनिओने न छाजे तेवी बाह्यधमाधम-आडंबरने सेवनारा वेषधारीओनी पबलता विध गएल हती, तेमज सत्यवस्तुने ओलवनारा प्रगट थया इता. कारणके सोळसेनीसदीमां जैन वेषधारीओनी अंदर शीथिलता, क्वचित् क्रियाजडता, केटलाएकनी सावधिक्रयाओमां प्रवृत्ति. अने केटलाएकनी आगमप्रतिपादित वस्तुस्वरूपमां अनादरता फेलाएल हती. एज टाइममां सूत्र आणा ओलंघी स्वच्छंदपणे लोंकामती, विजयामती अने कडवामती विगेरे प्रगट थड पोतानी मान्यता फेलावी रह्या हता. तेवा समयमां सूत्र-आगमनी वाणीना विचारक संपूर्णवैरागी, शुद्धचारित्र पालन करवामां महान उत्साही. पोताना गच्छनी मर्यादामां रहीने सिद्धान्ततस्वना विवेकपुरःसर गवेषक आत्मार्थी आ परमपुज्यआचार्य महाराजे मुनिमार्गनी शुद्ध देशना निर्भय-पणे करवा मांडी. तेने जोड यणा शिथिलाचारी-स्वच्छंदी-ओने इर्ध्या पेदा थइ, यद्वा तद्वा फावे तेम बोलवा मांड्या " एमणे तो नवो मत काढचोई, पोतानो गच्छ चलाववानो आग्रह छे. तेथी उत्कृष्टिकया करी लोकोने रंजन करेछे. िश्विष्ठाचार कांइ आजकाळनो थोडोजछे, एतो चालतोज आवे छे. एमना बोलवापर आपणे ध्यान आपर्व नही, आपणे जै करता होइए ते करता रहीये '' आ प्रकारे समजण विनाना अज्ञानीलोकोना आचार्यश्री उपर वचनना (वाचिक-लेखित) हमला थया पण समर्थ आत्माओ आवा काकारवथी डरता नथी. प्रतिपक्षीओ फावे तेम कहे तेमनी तेओने तमा होती नथी, तेमने भय मात्र जिनेश्वर-परमात्मानी आणा-नोज रहा करेंछे, ते वीतरागनी आणा कोइ रीते पण विराधाय नहीं अने केम आराधाय एनामाटेज सदा साव-धान-उजमालताने धारणकरनारा होय छे. लोको तरतमां एमने अथवा एमना वचनोने मानो या न मानो पण तेमना काने सुत्रानुसारे स्व-परना हितनी खातर तेमनुं कर्तव्य शुं छे ? ते जणाववुंज जोइए, आवो निश्चय ए महापुरुषोना अंतःकर-णमां रहेल होयछे. तेथी श्रीवीतरागदेवनी आज्ञा शी रीते आराधाय ? शुद्ध देव-गुरु अने धर्मनी सेवना शी रीते थड शके ? श्रीजिनेश्वरनी प्रतिमाने केवा विधिए वंदन पूजन करवुं ? आराधवा योग्य पर्वतिथीओ आगम-सिद्धा-न्तमां कइ कइ बतावेल छे ? सूत्र-पंचांगीमां प्रतिक्रमण कर-वानो विधि बोड़े ? अने हाल जे करायछे ते विधि आग-मानुसारी छे के कांड फेरफार छे ? साधुनी करणी केवी होय ? तेम साधु-म्रुनिराजनो उपदेश केवो होय? सर्वविरतिम्रुनि सावयनो उपदेश करो शके के नही ? हालमां केटलाएक आगममर्यादा समज्या विना उपदेश करेछे ते निरवधडप-

### ₹3

देश कहेवाय के केम ? उपधान शेना वहेवा ? कोण व्यवरावे ? तेनो विधि केवो ? साधने स्त्रीओना परिचयमां रहेवाथो केवा दोष लागे ? तेनो परिचय करवो के छोडवो ? प्रतिष्ठा अंजन-शलाका कोण करावे ? ए करणी कोनी छे ? त्यागीने कल्पे ? पोतपोताना गच्छनी ममता धारण करवी के वीतरागदेवनी आणा आराधवी ? इत्यादि बीनाओ संभलावनारने श्रं जुदी मत-पंथ काढ्यो एम कही शकाय खरुं? गड़रीमवाह के अंधपरंपरा जेने चलावबी होय तेने भले एम लागे के आ जुदो पंथ छे, परंतु सुत्र-आगमना अनुसारे उपदेशकरनार अने पोते चालनार जे होय ते बीतरागप्रणीत मार्गे चालनार गणाय है, तेने जुदा पंथे चालनार न कहेवाय. " तेज साचं अने शंका विनानं जे जिनेश्वरोए कहेल होय'' आबी श्रद्धा ज्यारे थाय त्यारेज सम्यकत्वसन्ध्रुख जीव थयो गणाय. आ दर्भनमां पोतपोतानी मरजी मुजब स्वीकारेल मत-पंथ के गच्छो कोइ **कांड़** काम आवता नथी हां, जे वीत-रागनी आणाना अनुसारे-सूत्र-सिद्धान्तमां बतावेल मर्यादा प्रमाणे चालनार गच्छ होय ते तो त्रणे काळ बंदनीय-सेव-नीय अने आराध्यहे. ते सिवाय होय तो संसारनी आल-पंपालनी माफक ए पण एक जीवने आलपंपाल है, कारणके बीतरागनी आणा विना जीवनी कांड पण कार्यसिद्धि थड श-क्ति नथी. जो केवल खोटो गच्लकटाग्रहज पोषाय तो तेथी संसारनी दृद्धि थाय छे, माटे सुत्र-सिद्धांतमां जणावेल वीत-

रागवाणीयते पूरेपूरो आदर धारण करवो जोइए, एना आधारेन ज्यारे त्यारे आ जीवनुं करवाण थहो, संसारना सर्व दुःखोनो नाश करी परमसुखोने आत्मा त्यारेन पामशे. आम्प्रकारे समजावनार आचार्य भगवान वंदनीय-पूजनीय छे. सद्गुरु विना साचो मार्ग बीजो कोण बतावे ? जे वीतराग परुपित मोक्षमार्ग बतावे तेन सद्गुरु, तेथोन सद्गुरु आराधनीय छे. ते महापुरुषे पोताना नामे नवो गच्छ के पंथ चलावेल नथी, जे गच्छमां हता तेन गच्छने वीतरागनी आज्ञानुसारे अनवारयो छे जे ने तेमणे प्रन्थो कर्यो छे, तेनी समानिसमां जे पोताना गच्छ हतो तेन जणावेल छे पण नवीन पोताना नामे गच्छ जणावेल नथी. जुओ तेमणेन रचेल अजितदाांतिस्तवनो बालाववोध, विकम सं. १६०१ मां करेल छे तेनी पश्चितमां आ प्रमाणे जणावेल छे:—

" शशिखरसघरणिसंख्ये,तपोभिधे मासि शितौ चतुर्दश्याप । वारे सवितुः पूर्वा,-षाढक्षें हर्षणे योगे ॥ १ ॥ श्रीमद् बृहत्तपागच्छे,-ऽजितशांतिस्तत्रस्य च । श्रीसाधुरत्नशिष्येण, पार्श्वचंद्रेण वार्त्तिकम् ॥ २ ॥

चके बालाववोधाय, वाचनाय च हर्षदम् ।
वाच्यमानिमदं नन्धात्, तावत् याविजनागमः॥ ३॥"
वळी तेमणे जे जे आगमोना बालाववोध करेला छे,
तेनी प्रशस्तिओमां पण कोइ जगाए पोताना नामे नवीन
गच्छ बतावेल नथी. जुओ तेमणे स्वेल श्रीतंदुलवेयालीय

पयन्नाना बालावबोधनी आदिमां आ प्रमाणे जणावेल छेः— "कल्याणबल्लीतिवारिवाहं, श्रीसिद्धिदुर्गं प्रतिसार्थवाहम् । सकेवलं लोकदिनेशतुल्यं, श्रीवर्द्धमानं प्रयतः प्रणम्य ॥१॥ श्रीमत्तपागच्छसरोमरालः, श्रीसाधुरत्नाभिध्यमैक्षिष्यः ॥ प्रकीर्णकस्यास्य करोति वार्ती—रूपं प्रवन्धं किल पार्श्वचंद्रः॥२॥

यावचन्दुलभोजी-वर्षश्चतायुर्नरस्तद्विचारान् । ख्यातं प्रकीर्णकमिदं, तन्दुलविचारिकं नाम्ना ॥ ३ ॥ "

आ बीना लखती बखते जे जे तेओश्रीनी कृतिओ हाजर हती अने जोवामां आबी तेमांथी लखी जणावेल है. कहेबानुं तात्पर्य ए छे के महापुरुषे पोताना नामनो लोभ राखेल नथी, अने आगमवस्त प्रसिद्ध करवामां कोड जातनो संकोच धारण करेल नथी. निर्भयपणे सत्यवस्त जणावेल छे. तेमनामां विद्वता-पाकृत, संस्कृत अने गुर्जरभाषामां कवित्वशक्ति, लेखनकळा अने तेनी श्रद्धता. सत्रोना बाला-वबोध सरल भाषामां करवानी शक्ति अपूर्व हती. तेमज जिनवचन पर श्रद्धा. ज्ञाननी जागृति-तीक्ष्णता तेने अंगे तीवविचारशक्ति अने चारित्रनी निर्मेलता वगेरेमां अलौकिक इता एमना ग्रन्थोनो अभ्यास, मनन चितवन जेमणे करेल होय अने पोते विचारशील विवेकी होय तो तेमने उपरनी बीनाओ आपो आप मालम पडीआवे एम छे. तेथी ए विषयमां विशेष लखवानी जरूर जणाती नथी. सङ्जन हुशे ते सार ग्रहण करी लेशे. कहाँ छे के:-

"ग्रुणानगृण्हन्स्त्रजनो न निर्देतिं, प्रयाति दोषानवद्त्र दुर्जनः । चिरंतनाभ्यासनिबंधनेरिता, ग्रुणेषु दोषेषु च जायते मतिः ॥१॥ खळः सस्पमात्राणि, परच्छिद्राणि पश्यति ।

आत्मनो विख्यमात्राणि, पश्यक्षिप न पश्यित ॥२॥ "
अर्थात्-सज्जन गुण ग्रहण कर्या विना अने दुर्जन दोष
बोल्या विना तृप्ति पामतो नथी कारणके लांबा कालना अभ्यासना सबंधे पराएली मित गुणोमां अने दोषोमां उत्पन्न
थाय छे. १ तेमां पण दुर्जन पुरुष सरसव जेवडा परना नाना
दोषोने जुए छे अने पोताना मोटा मोटा बिलीना फल जेवडा
दोषो जोवा छतां जोइ शकतो नथी. एवो दुर्जननो स्वभाव
छे. २ तेथी पोतपोताना स्वभावना अनुसारे प्रवृत्ति करे छे. माटे
एमां विशेष जणावा जरूर नथी. युगमधान श्रीपार्श्वचंद्रस्ट्रिजीने ज्ञानीओना वचनपर संपूर्ण आस्ता हती. तेने लइ
पंडितवीर्यनी जापृतिना अंगे संसारमायाजालपर उत्पन्न
थएल तीव ज्ञानगमित वैराग्यना योगे उत्कृष्ट चारित्रवंत,
वचनगृप्ति अने भाषा समितिथी ते सेवाएल हता.

युगप्रधान श्रीपार्श्वचंद्रसूरिजीनी दुंकी जीवनरेखा जन्म-श्रीआबृतीर्थना पित्रत्र पहाडना नीचे लगोलग पश्चिम दिशामां रायहमीरे वसावेल हमीरपुर नामना शहेरमां जेमां हाल पण पांच पित्रत्र जिनालयो जीण अवस्थामां रहेला जोनारने नजरे पढे छे. त्यां वीसा पोरवाड ज्ञातीय श्रावककुलमां श्चिरोमणी धर्मिष्ठपुरुषोमां अग्रेसर वेलगसाह नामे श्रावक हता, तेनी धर्मसहचारिणी पितन्त्रता शीलालंकारधारिणी विमलादे नामनी स्त्री हती तेनी कुल्वथी वि. सं. १५३७मां आ आपणा पूज्य महापुरुषनो जन्म थयो तेमना जन्मथी सौ संविधियोने आनंद थयो तेमनुं नाम पार्श्वकुमार आपनामां आव्युं अनुक्रमे हिद्ध पामतां आठ नरसनी समजणनाळी नयने पाम्या. सुगुरु समागम—पूर्व पुण्यना उदये सद्गुरुमहाराजनो समागम थयो, ते द्वाराए परमात्मानी पितन्न वाणीनुं श्रवण थयुं, तेथी आत्मानी जाग्नत दशा प्रगट थई. मोहजाल गइ अने वैराग्य प्रगट थयो.

दीक्षा-माता-पिता संबंधिओनी अनुज्ञा छइ श्रीमन्नागपुरीयबृहत्तपागच्छमां पंडितिज्ञिरोमणी तरीके पंकाता श्रीसाधु
रत्नजी धर्माचार्यनी पासे वि. सं. १५४६ मां पोतानी
नववरसनी नानी वयमां ओच्छवपूर्वक माता-पिताना हाथे
दीक्षा ग्रहण करीः गुरुराजे तेमनुं नाम श्रीपार्श्वचंद्रस्रुनि
स्थापन कर्युं. श्रीसद्गुरुनी सानिध्यमां रहेतां विनयपूर्वक
विद्याभ्यास करतां सर्व शास्त्रोना पारगामी थया.

उपाध्यायपद-तीत्रबुद्धिशाळी पवित्र वर्तेणुकवाळा श्रीपार्श्वचंद्र मुनिने जाणी अत्यंत प्रेमथी गच्छाधिपतिए तैमने उपाध्यायपदे वि० सं० १५५४ मां विभूषित कर्याः स्याखाद सिद्धान्त-आगमनो अभ्यास करावता पोताने विशेष जाग्रतदशा प्राप्त थईः

क्रियाउद्धार-जैनवेषधारिओमां रहेल क्षिथीलता द्र

करवानो उत्साह जाग्रत थयो गुरुआज्ञा-गुरुजिष्यनो परस्पर अत्यंत प्रेम हतो, तेथी गुरुराजने पोतानी विचारणा जणावी गुरुराजे पण तेमनो उत्साह वधारवा कहुँ के-''शूर-वीर पुरुषोनो ए मार्ग छे, माटे खुन्नीथी क्रियाउद्धार करी पवित्र मार्गने दीपावो अने ते द्वाराए भव्यात्माओनो उद्धार करी जय विजयने पामो " आ प्रकारे गुरुराजना आज्ञिर्वाद्यी वि. सं. १५६४मां उपाध्याय श्रीपार्श्वचंद्रजीए किया उद्धार कर्यो शुद्ध उपदेशने आपता साधुमार्गमां विचरनारा थया.

आचार्यपदः — सर्वत्र तेमनो महिमा दृद्धि पामवा लाग्यो. वि० सं० १५६५ मां विचरता जोधपुर नगरमां पथार्या देशनाशक्तिने थारण करनार, अत्यंत मनोहर मृतिमान अने पवित्र चारित्रधर्मथी शोभता गुरुराजने देखी त्यांना महाराजा पण अत्यंत प्रेमी बन्या. श्रीसंघने पण आनंदनो पार रह्यो नहि. श्रीसंघनी विनती अने आग्रहथी वि० सं० १५६५ मां आचार्यपद थारण कर्युं. दिनप्रतिदिन शुद्ध प्ररुपकपणाने लड्ड अने शुद्ध आचरणाने लड्ड तेमनी ख्याति वथवा लागी अने पोताना हृदयमां भव्योनो उद्धार करवानी लागणीओ पण वधवा लागी. श्रीसिद्धान्त-आगमोना गुर्जरभाषामां वालाव-बोध अर्थ कर्या विना सर्वत्र भव्यात्माओने आगमवाणी श्रवणनो लाभ नहि थड्ड शके तेथी सृत्र-सिद्धान्तोना अर्थ टीका-वृत्तिने अनुसारे करवा प्रयत्न आदर्यो अने ओली बुद्धिवालाथी न समजाय एवा आगमोना वालाववोध कर्या,

के जेथी सामान्य बुद्धिवाळा साधु मनिराजो पण ते वांची भव्यात्माओने संभळावा समर्थ थया, अने श्रावको पण केटलाक सांभळी आगमवाणीना जाणकार थवा लाग्या के जेथी आगममां साधुमार्ग शुं बतावेल छे अने हालमां साधुओ एम केम चाले छे. ए बीना जाणवामां आवी, तेथी शिथिला-चार्यो परथी धर्मप्रेमनी वृत्तिओ तेओनी ओछी थवा लागी अने शिथिलाचारिओने शुद्धप्ररुपक तरफ द्वेष उत्पन्न थयो. आ पवित्र आचार्यने जोइ बीजा गच्छोमां पण जागृति आवी. सुत्रमार्गनी प्रवृत्ति तरफ आकर्षीया अने केटलाकोए क्रिया उद्धार करी शिथिलाचारने छोडयो. जोके सात पेढी सरखी तो कोइनी चालती नथी तोपण तरतमां आ मोटामां मोटो लाम आचार्यश्री पार्श्वचंद्रखरिजीए ते समयमां मेळवेल हे ते समयमां सर्वने जाग्रत करनार आ पवित्र आत्मा इता. वळी तेमणे भव्यात्माओना उद्धारने माटे अनेक ग्रन्थ, पकरण, क़लक, सज्झाय, स्तवन, चर्चाओ, पटो अने विचारो वगेरेनी रचना करी लख्या छे. मारवाड जोधपुर पट्टीमां वसनारा म्रुणोतगोत्रीय रजपुतोने महाराजा मालदेनी संमतिथी जैन धर्मी श्रावको बनाव्या. जे मुणोतगोत्रीय श्रावको हालमां पण मारवाडमां विद्यमान छेः रजपुतोने जैनधर्मी श्रावक बनावनारा आ छेल्ला आचार्य थया छे. मालवामां घणा श्रावकोने शुद्ध धर्मनां जोड्या. नवसें चंडाळोने समजावी चंडालकर्मथी ग्रक्त कराव्या.

५०० घर जैनधर्मी कर्या, अमदावादमां मरकीना रोगने अटकावी शांति फेलावी खंभातमां गौवध वंधकराव्यो. विरमगाममां धर्मेचचीनी अंदर उ० विद्यासागरना अभिमानने जतारी श्रावकोने शुद्धमार्गे चडाव्याः काठीयावाडमां कपासी गोत्रीयने शुद्धजैनधर्मी कर्याः म्रसिंदाबाद, कलकत्ता, बुरा-नपुर विगेरे अनेक स्थलोए पोताना तप-संयमना प्रभावथी श्रीजैनधर्मने दीपाव्यो. मारवाड, मेवाड, मालवा, पूर्व, दक्षिण, गुजरात अने काठीयावाड विगेरे अनेक देशोमां विचर्या. वि. सं. १५९९ वरसे सलक्षणपुर मध्ये चतुर्विध श्रीसंघे आचार्य श्री पार्श्वचंद्रसूरीश्वरजीने युगप्रधानपदे स्थापन कर्या अने तेमना विद्वान शिष्य मुनिराज श्रीसमरचंद्रजीने उपाध्या-यपदे स्थापन कर्या. इवे युगमधान श्रीपार्श्वचंद्रसूरीश्वरजी पोताना शिष्य समुदाय सहित गामानुगाम विचरवा लाग्या. वि. सं. १६०४ नी सालमां पोताना शिष्य उपाध्याय श्री समरचंद्रजीने आचार्यपदे स्थाप्याः एम अनेक श्रुभ कार्यो पोताने करवा योग्य तेमणे कर्यों हे. पोतानी जींदगीमां हेवट सुधी शुभ प्रयत्नपूर्वक स्व आत्म उद्धार करवा सारु अनेक तपो कर्या छे. ध्यानावस्थामां आत्मस्मरण करतां अनेक रात्रिओ सावधानीपणामां गुजारी छे.

स्वर्गगमन-निस्वालशहृदयथी सत्यथर्मनो महिमा वधारता गामानुगाम विचरता मारवाड देशमां जोधपुर नगरे पथार्या भावुक आत्माओने आनंदनो पार रह्यो नही. गुरु-

राजना दर्शन करी, तेओश्रीना मुखकमलयी प्रकाश पामती पवित्र सिद्धांतनी वाणी सांभळी पोताना आत्माने भाग्यशाळी मानवा लाग्या. श्रीगुरुदेवनी पासे वत-नियम ग्रहण करी पालन करवा तत्पर थया. आचार्य भगवान पोते पंडितवीर्ये आत्मरमणतामां तलालोन थयाः त्यारपछी बाह्य शरीरनी चेष्टाओथी, शुतज्ञाननी पबलताथी अने पोताना जात अनु-भवथी स्वआयुष्य अरुप जाणी पोताना आश्रित चतुर्विध श्रीसंघने ज्ञांतिनो उपदेश आप्यो, पोत-पोताना आत्मक-ल्याण माटे सावधान रहेवा सचना करी अने सर्वने मैत्री प्रमोद भावना धारण करी प्रेमपूर्वक वर्तवानी भलामण करी. श्रीचतुर्विधसंघसमक्ष सर्वे जीवोने खमावी. अहारे पाप स्थानोने आलोवी पंचमहाव्रत, पंचाचार, अष्टपवचनमाता, दशविधयतिधर्मे, सत्तर प्रकारे संयम अने शीलांगरथना स्व-रूपने चिंतवी धारण करी भत्तपच्चरुखाण नामना अणस-णने उच्चरवा शकस्तवादिके देवबंदन करी, पौताना परमो-पकारी गुरुदेवने नमस्कार करी अणक्षण ग्रहण कर्युः सुश्राव-कोए श्रीजिनाल्योमां पूजा-प्रभावनाओ शरु करी, दीन, इःखी, अने अनाथोने दान अपाया, भावुक आत्माओ श्री आचार्य भगवानना छेल्ला दर्शनने माटे देश-परदेशयी खबर मलतां जल्दी त्यां आव्या चार शरणने ग्रहण करी पंच पर-मेष्टीना घ्यानमां तलालीन थया थका विरुक्षं १६१२ ना मागसर सुदी त्रीज रविवारनी मध्य रात्रे ७५ वर्षन् सर्व

आयुष्य पूर्ण करी समाधिपूर्वक आ औदारिक शरीरने छोडी स्वर्गवासी थया. परमग्रुरुदेवना विरह्थी अनुयायीवर्गने घणो आघात थयो. पवित्र भूमिमां चंदनादि उत्तम पदार्थीथी आ-चार्यदेवना बरीरनो रडता हृदये सुश्रावको तरफथी अग्नि संस्कार करवामां आच्यो अने तेज स्थानके एक शिखरवंधी देहरी करवामां आवी, तेमां सुरीश्वरदेवनी पादुकानी स्था-पना प्रतिष्ठा विधिपूर्वेक करवामां आधी. अट्टाइ महोत्सव. शांतिस्नात्र विगेरे बहु धामधूमथी थयाः बीजा गाम-नगरोमां पण अहाइ महोत्सवो गुरुदेवनी चरणपादुकानी स्थापनाओ, गुरुदेवनी मुर्तिनी स्थापनाओ विधिपूर्वक करवामां आवी. ते हाल पण वर्णे स्थाने पादकाओं विद्यमान छै अने पूजाय पण छे तेमज परमगुरुदेवनी मृत्तिओ पण केटलाक स्थानेछे अने केटलाक स्थाने सुगुरुदेवना पवित्र नामाक्षरोना यंत्रो मकरा-णाना आरस पत्थरमां कोतराएला पण पूजाय छै. आ टुंक बीना जणावेल है, विशेष जाणवानी इच्छावाला-महानुभा-बोए तेओश्रीना जीवनचरित्रथी बीना जाणवी.

चोथो ग्रन्थ श्रीसप्तसपदीशास्त्र-गुजराती भाषानुवाद -आ सप्तपदीशास्त्र सर्व-साधु-साध्वीओने एक सरखो रोते उपयोगी तथा स्वपर आत्महित करता थशे एम जाणी तेमज साध्वीचंदनश्री वगेरेनी खास मेरणाथी में पोतानो बुद्धिना अनुसारे सुगम अर्थ (भाषानुवाद) तैयार करेल छे तेमां कोइ पण जग्याए सुत्रथी विरुद्ध के मूल ग्रन्थकारना आञ्चय विरुद्ध ललाण थयुं होय तो तेनुं मिथ्यादुष्कृत आएं छुं अने उपरोक्त चारे ग्रन्थो सुधारवा छतां तेमां द्रष्टिदोषथी अथवा मेसदोष संवंधी कोइ पण भूलो रही गयेल होय, तेने सुधारी वांच-वानी भलामण करी विरसुं छुं.

# हे.-परमपूज्य आचार्यवर्य श्रीभ्रातृचंद्र सूरीश्वरजीना शिष्य-सागरचंद्रस्ररिः

प्रॉगघा. । वि० सं०१९९५ नानी बजार, मोटो उपाश्रय.∫ ब्रितीय श्रावण सुद३ गुरुवार.

### -: अनुक्रमणिका :-

Ę	श्रीसप्तपदीशास्त्र		•••	•••	पृष्ठ	१–१३५
2	उत्सवति इस्काइन	TET	विचारगर		वस १	205-210/

३ श्री स्थापना पञ्चाशिका ... ... पृष्ठ १७९-१८३

४ श्री सप्तपदीशास्त्र-गुजराती भाषानुवाद ... १८४-२६३ यगप्रधान श्रीपार्श्वचंद्रसरीश्वर दादानो छंद ... २६४

### ग्राद्विपत्रक

			-				
गनु र	रीटी	। अशुद्ध	शुद्ध	पानु	स्रीर्ट	ो अशुद्ध	शुद्ध
१२	Ę	सक्रंति सद्धि	सक्ट्रंति	80	ર	पमाइ	पमाई
१६	१८	सद्धि	सुद्धि	६०	२	यारति	यारेति
१६	२१	गंत्	गंतुं १८	દુષ્ટ	२२	द्यपे	द्युपे
રૂંવ	१६	१९	१८	દ્દં		माद	मादा
४१	રક	शावत	शावर्त्त :	દુહ	१९	दुक्णे	दुख्खे
40	१३	आचार्या	आचार्यो	દ્રંહ	११	दुक्णे भीसणो	भीसणो
48	२१	पूर्वा	पूर्वी			'सयंजप'	
લ્છ	२१	श्रेत	श्रुत	ও২	१९	सर्व	सर्वे
48	१	स्ताकं	स्तोकं	इथ	G	तस्सविही	0
५९ ।	9	स्ताकं म(स)रइ	समरइ	•		अक	अक
५९			मुक	હલ	१४	बच	वच

गनु लीटी अशुद्ध	গুৱ	पानु लीटो अशुद्ध	গুর
७६९ पडिक	पडिक	८९ ४ पडिक	पडिक
७६ १२ सक	सक	९१ २४ एश्च	पश्च
७६१७ पडिक	पडिक्क	९३ १९ पश्च	पञ्चदश
७९ ४ पणु	पण	९६ १४ पडिक	पडिक
८०९ खाम	खामि	९६ १६ सुतुत्तं	सुनुत्तं
८२२ पाढं	पाठं	९६ १९ जंब्रुस्ररि	जंबु−सूर
८२३ कारो	क्कारो	९६ २२ याइ	या
८३७ याउ	याऊ	९७ १७ हवउ	हवउपच्छा
८३७ सुयं	स्सुयं	९८३ अन्नंच	0
८३८ साहु	साहू	९८ ११ साहुव्व	साहुब्व ।
८३ १८ क्लिस	खित्त	१०२ २३ अणंगपवि	ठ्टस्सवि
८३१८ <i>,,</i> ८४४ इकिके	" इकिके	उद्देसी जाव	ापवत्तइ १,०
_	_	१०४ २१ वाउ	वाओ
८५३ पडिक	पडिक	१०४ २२ उवएसा	
८६३ मणिउ	भणिओ	१०५१ उस्सगो	उस्सग्गे
८६३ सेसा	सेसो	१०६६ वादरं	
८६ १० चउसु	चउत्थं	१०९ ३ शब्दा	शब्दो
८६ १३ पुच्छइ	पुत्थयं	१०६ २० धर्मा	धर्मी
८६ १८ राउनहो	साहुवंदणो	१२९ ४ नाव	नानव
८७ १२ स्कंध	खंध	१३१ ११ मुणीणं मु	_
८७ १२ सुया	सुए	१३२१ मिच्छ	मिच्छा
८७ १३ सुद्धं	सिद्धं	१३२१ अविरइ	
८७ २२ सीउ	सोऊ	१३४ ११ स्त्रत्रार्था	
" " ध्थाउ	ध्थाऊ	१८० १८ तंव	तंच
८८ ४ किहवि	कयावि	२८० १९ अहयं	
८८ १७ पडिक	पडिक	१८० २१ वितनावेण	
८८ २० भणिय	भणियं	१९७ ७ पूचक	पूर्वक
८९ ४ जध्ये	होइ जध्थे	१९७७ अञ्चा	आशा

### आचार्य श्री भ्रात्चंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं.

परमगुरुदेव श्रीपार्श्वचन्द्रयुरीश्वर विरचितं— श्री सामाचारी समाश्रितं—

# श्री सप्तपदी शास्त्रम्.

मूळ-बीरिजणं निमिज्जं, अमिरद्निरिंद्पणयपयज्ञ्यळं ।
साहूण सामायारि, सुयाणुसारेण बुच्छामि ॥ १ ॥
गच्छिद्विईं संभोगा-संभोगविहिं सुणीण दिणविरयं ।
पंचपिडकमणविहिं, उदयितिहीए सरूवं च ॥ २ ॥
सहुाणुवहाणविहिं, उवएसविहिं सुयाणुसारेण ।
सुगुरूण वयणवयणं, सोज्जणमहं पवक्षामि ॥ ३ ॥
इति दारगाहादुगं ॥

( अथ गच्छस्थिति:-)

गणहरइकारसमं, गणनवगं आसि वीरनाहस्स । सत्तर्षं च गणाणं, सत्तगणी वायणं दिति ॥ ४ ॥ दो दो एगेगस्स य, गणस्स गणहारिणो जुगप्पवरा । दितिय वायणमेवं, गणगणहरसंखमाणंति ॥ ५ ॥ मेण्ण वायणाण्, गणभेज तेसिमिकसंभोगो । भणिज दसास पदमो. निसीहजुण्णीज तह बीज ॥ ६ ॥

### २ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

श्री द्ञाञ्चतस्कंधेऽष्टमाध्ययने-''तैणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स नवगणा इकारसगणहरा हुथ्था से केणहेणं भंते ! एवं बुचैति-समणस्स भगवओ महावीरस्स नव-गणा इकारसगणहरा हुथ्था? समणस्स भगवओमहावीरस्स जेहे इंदभुई अणगारे गोयमगुत्तेणं पंचसमणसयाइं वाएइ, मिड्सिमए अग्गिभुई अणगारे गोयमगुत्तेणं पंचसमण सयाई वाएइ, कणी-यसे अणगारे बाउभुई गोयमगुत्तेणं पंचसमणसयाई वाएइ, थेरे अज्जवियते भारहाएगुत्ते पंचसमणसयाई वाएइ, थेरे अज्जसु-हुम्मे अग्गिवेसायणेगुत्तेणं पंचसमणसयाई वाएइ, घेरे मंडिय-पुत्ते वासिहेनुत्तेणं अध्धुहाई समणसयाई वाएइ, थेरे मोरियपुत्ते कासवगुत्तेणं अध्युद्धाई समणसयाई वाएइ, धेरे अर्कपिए गोय-मगुत्तेणं थेरे अयलभाया हारियायणे ग्रुतेणं पत्तेयं एते दृश्चि-वि थेरा तिन्नि २ समणसयाई वाएंति, थेरे अज्ज मेइडजे-थेरे अज्ज पभासे एते दुनिवि थेरा कोडिन्नागुत्तेणं तिन्नि २ समण सयाई वाएंति. से तेणहेणं अज्जो एवं बुर्चति समणस्य भगव-ओ महावीरस्स नवगणा इकारसगणहरा हुथ्था सन्वे एते सम-णस्स भगवओ महावीरस्स इकारसवि गणहरा दुवालसंगिणी चउदस पुविणो सम्मत्तराणिपिडगधारमा रायगिहे नगरे मा-सिएणं भत्तेणं अपाणएणं कालगया जाव सबदुक्खपहीणा ॥

थेरे इंदभूई थेरे अज्ज सुहुम्मेय सिद्धिगए महावीरे पच्छा दु-न्निविथेरा परिनिव्युया,जे इमे अज्जत्ताए समणा निग्मंथा बिह्-रंति एएणं सब्वे अज्जसहुम्म अणगारस्स आवचिज्जा, अव-

### आचार्य श्री आतृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ३

सेसा गणहरा निरवचा बुच्छिन्ना." अयं वाचनाभेदाद्गणभेदवि-चारः मूळसूत्रोक्तः कचिद्दृत्तौ समाचारीभेदाद्गणभेदस्ततः केचिदिति परूपयंति गणे २ भिन्न २ सामाचार्योऽभूवन भिन्न-सामाचार्या परस्परमसंभोगित्वं चेति ।

### ( अथ संभोगासंभोगविधिः-)

तत्र श्रीनिज्ञीथचूर्ण्येक्षरः णि छिख्यंते - " सिरिघरसिव-पाहुडेयसंभ्रुत्ते " इति वचनात्-" सीसो पुच्छति कति पुरि-सयुगे एकसंभोगो आसी कंमि वा प्रशिसलुगे असंभोगो पयहो केण वा कारणेण ततो भगंति बद्धमाणसामिस्स सीसो सुधम्मो तस्स जंबुणामा तस्स वि प्यभवो तस्स सिञ्जंभवो तस्स सीसो जसभद्दो जसभद्दस्य सीसौ संभुओ संभुयस्स थुलभद्दो थुलभद्दं जाव सन्वेसि इकसंभोगो आसी थुळभइस्स दो सीसा अञ्जमहागिरी अञ्जस्रहथ्थीय पीतिव-सेण एकओ विदृरंति" इत्यादि जाव अञ्जमहागिरीसिरिघरा-थयणे आवासिओ,अञ्जसहध्यी सिवघरे आवासिओ,ततो राया सैपई अज्जसहर्ध्य पञ्जुवासेति, प्वयणभत्तीए अप्पणो विसए अणि पिंडिऊण भणति तुब्धे साहुणं आहारं पाउग्गं देह अहं-मोई दाहामि अज्झ सुहथ्थी सीसाणुरायेण साह गिन्हमाणे सातिज्ञ्ञति, नोपडिसेहति तं अज्ञ्जमहागिरी जाणिज्ञा अज्ञ सुहर्षिय भणति, अज्झो कीस रायपिंड पडिसेवह। ततो अज्झ मुह्थ्यिणा भणियं, जहा राया तहा पयाण एस रायपिंडो तेल्लि-ना तिर्छं घयगोलियाउ घयं दोसियाउ वच्छाई पूड्या भक्ख-

Ş

भोडझं एवं साहूणं अडझ महागिरिवरो अडझसुहर्धिथ भणति, अडझप्पभितं तुमं मम असंभोगिओ, एवं पाहुडं जायं इत्यर्थः। एथ्य पुरिसे असंभोगो उपको॥"

एवं श्रीवीरे विजयमाने नवगणेष्विप एक संभोगित्वात् सामाचारीभेदो नावबुध्ध्यते पुनर्गीतार्था मध्यस्था वदंति तदेव प्रमाणं । सांप्रतीन साधूनामेकगणत्वं विद्योषतो दर्शयति-

मूळ-संपइ विहरंत मुणी, सब्वे सीसा मुहम्मसामिस्स । अवसेसा निरवचा, बुच्छिन्ना गणहरा दसवि ॥ ७ ॥ सृत्राक्षराणि पूर्वे लिखितान्यवर्गतव्यानि ।

मूळ-एएण कारणेणं सुद्दम्म सामिस्स गच्छमणुक्रगा । अन्तुत्रमसंभोगा भिन्नायारा कहं हुंति ॥ ८ ॥

असंभोगिनः सुत्रोक्तिन्यायेनाचारहीना एवोच्यंते, नतु सुद्धाचाराः सामाचारीभेदेनैवासंभोगिनः । यदुक्तं-श्री स्था-नांगे द्वितीयाध्ययनस्य प्रथमोद्देशकस्य पान्ते ''दोदिसाओ अभिगिष्झ कष्पति निग्गंथाण वा निग्गंत्थीण वा पद्यावित्तए । पादीणं चेव उदीणं चेव,एवं मुंडावित्तए,सिक्सावित्तए,उवहावि-त्तए, संभ्रंडिझत्तए," इति वचनात् । अत्र संभोगः श्रीस्त्रकृदंगे त्रयोविंशत्यध्ययनेपि वर्तते, संभोगिनः सुद्धाचाराः ।

अन्यसंभोगिनो यथा-श्रीपार्श्ववीरापत्यसाधवः परस्परं श्रीआ-

### आचार्य श्री आतृचंद्रस्वरि प्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ५

चारांगवचनात् सामाचारी भेदतः छुद्धा असंभोगिनो न भवंति, ये हीनाचारा ज्ञानदर्शनचारित्रेस्त एव असंभोगिनः इत्यर्थः ।

अथासंभोगः-श्रीस्थानांगे तृतीयस्थानस्य तृतीयोहे-शके-" तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं संभोगियं विसंभोगियं करेमाणे णातिक्रमित, तं०-सयं वा दहुं 'सह्दस्स बा निसम्म, तर्च मोसं आउट्टति चउत्थं नो आउट्टति''

(अत्र वृत्तिलेशः-'साहंमियं' ति समानेन धर्मण चरतीति साधर्मिकस्तं सम-एकत्र भोगो-भोजनं सम्भोग:-साधनां समान सामाचारीकतया परस्परस्पध्यादिदानग्रहण-संज्यवहार सक्षणः स विद्यते यस्य स साम्भोगिकः तं. विस-म्भोगो-दानादिभिरसंब्यवहारः स यस्यास्ति स विसम्भो-गिकस्तं कुर्वन् नातिकामति-न लङ्कयत्याज्ञां सामायिकं वा बिहितकारित्वादिति, स्वयमात्मना साक्षात् दश्चा सम्भोगिकेन क्रियमाणामसंभोगिकदानग्रहणादिकामसमाचारी,तथा 'सदढ-स्सं निश्रदा श्रदानं यस्मिन अस्ति स श्रादः श्रदेयवचनः कोऽप्यन्य: साधस्तस्य वचनिमति गम्यते 'निशम्य' अध-धार्य, तथा 'तचं' ति एकं द्वितीयं यावत् तृतीयं 'मोसं' ति मुषावादं अकल्पग्रहणपार्श्वस्थदानाहिना सावधविषयप्र-तिज्ञाभङ्खक्षणमाश्रित्येति गम्यते, 'आवर्त्तते ' निवर्त्तते तमालोचयतीत्यर्थः, अनाभोगतस्तस्य भाषात् प्रायश्चित्तं चास्यो-चितं दीयते. चतर्थं त्वाभित्य प्रायो नो आवर्त्तते-तं ना होचयति, तस्य दर्पत पव भावादिति, आहोचनेऽपि प्राय-श्चित्तस्यादानमस्येति, अदश्चतुर्थासम्भोगकारणकारिणं विस-म्भोगिकं कर्ननातिकामतीति प्रकृतम् , उकंच-

### ६ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

"पगं व दो व तिन्नि व, आउट्टंतस्स होइ पिन्छतं॥ आउट्टंतेऽवि तओ, परिणे तिण्हं विसंभोगो॥१॥" इति

पतच्चूणिं:—"स संभोइओ असुद्धं गिण्हंतो चोइओ भणइ-संता पडिचोयणा, मिच्छामि दुक्कडं, ण पुणो पयं करि-स्तामो, पवमाउट्टो जमावश्रो तं पायच्छितं दाउं संभोगो । पवं वीयवारापिव, पदं तह्यथारापिव, तह्यवाराओ परओ चडत्थवाराप तमेबाइयारं सेबिऊण आडटूंतस्सवि विसं-भोगो " इति, ॥)

# पुनस्तत्रैव पंचमाध्ययने--

" पंचिह ठाणेहिं समणे णिग्गंथे साहम्मितं संभोतितं विसंभोतितं करेमाणे णातिक्ष्मिति, तं०-सिकिरितठाणं पिट्टिसेवित्ता भावति १ पिटिसेवित्ता णो आछोएइ २ आछोइत्ता णो पहनेति ३ पहनेत्ता णो णिविसति ४ जाई इमाई थेराणं ढितिपकष्पाई भनंति ताई अतियं चिय २ पिटिसेवेति से हंदऽहं पिटिसेवािम किं मं थेरा करिरसंति १ " ५।

( वृत्तिः — साम्भोगिकं एकभोजनमण्डलीकाविकं विसाम्भोगिकं नण्डलीवाद्यं कुर्वन्नातिकामित आक्वामिति गम्यते, उचितत्वाद्वितं, सिक्किएं न्यस्ताबादग्रुभकर्मवन्धयुकं स्थानं न अकृत्यविशेषलक्षणं प्रतिषेषिता भवतीत्येकं, प्रतिषेष्य गुरुषे नालोच्यति न निवेद्यतीति विसीयं, आलोच्य गुरुषि प्रप्रायश्चितं न प्रस्थापयित कर्तुं नारभत इति तृतीयं, प्रस्थाप्य न निवेद्याति न समस्तं प्रवेद्यायत्यवा ' निवेद्यः परिभोग' इति वचनान्न परिभुक्के नासेवत इत्यर्थः इति चतुर्थं, यानी सुप्रसिद्धत्या प्रत्यक्षाणि ' स्थिषराणां ' स्थिषरकः

### आचार्य भी भातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० सुं. ७

शिपकानां 'स्थितो ' समाचारे ' प्रकल्प्यानि प्रकल्पनीयानि योग्यानि विशुद्धपिण्डद्याय्यादीनि स्थितिप्रकल्प्यानि अथवा स्थितिश्च-मासकल्पादिका प्रकल्प्यानि च-पिण्डादीनि स्थितिप्रकल्प्यानि तानि 'अश्यंचिय अश्यंचिय ' ति अति-क्रम्यातिक्रम्येत्यर्थः, प्रतिषेवते तदम्यानीति गम्यते, अथ सङ्घाटकादिः साधुरेषं पर्यालोचयति-यथा नैतत्प्रतिषेवितु सु-चितं गुक्तों याद्यो करिष्यति, तत्रेतर आह-'से' इति तद-कल्प्यजातं 'हंदे ' ति कोमलामन्त्रणं चचनं हमित्यकारप्र-श्रूषादृदं प्रतिषेवामि कि मम 'स्थिवराः' गुरवः करिष्य-नित, १ न किश्चित्ते रुष्टरिप मे कर्तुं शक्यते इति बलोपद-श्रुनं पश्चममिति ॥)

पुनस्तत्रैव नवमाध्ययने-

" नविं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे संभोतितं विसंभोतितं करेमाणे णातिकमति, तं०-आयरियपिडणीयं उवडझायपिड-णीयं थेरपिडणोयं कुछ० गण० संघ० नाण० दंसण० चरि-चपिडणीयं."

(वृत्तः—'नवर्षि ठाणेषि समणे' इत्यादि, अस्य च पूर्वस्त्रेण सहायमाससम्बन्धः-पूर्वस्त्रेत्रे पुद्गला वर्णितास्तक्षिः शेषोद्याश्व कश्चिष्ल्रमणभावसुपगतोऽपिधमा वार्यादीनां प्रत्य-तीकतां करोति, तं च विसम्भोगिकं कुर्वन्नपरः सुन्नमणो नाज्ञामतिकामतीतोहाभिधीयत इत्येवं सम्बन्धस्यास्य व्या-क्या, सा च सम्बन्धत पत्रोकेति.)

एभिरसरैराचारवैपरीत्येनासंधोगित्वं प्रतिपादितं नतु धुद्धसाधूनां सामाचारीभेदेनासंधोगित्वं संभवति ॥ अथ साधूनां गणनिश्रां विना धर्मो न प्रवर्तते-

### ८ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

मुळ-पणनिस्साठाणाई, समणाणं जिणवरेण भणियाई॥ 
ढाणंगे गणनिस्सा, चारिणो साहुणो तेणं॥ ९॥ 
श्रीठाणांगे पंचमज्झयणे—

" धम्मं चरमाणस्स पंच णिस्साठाणा पं० तं०-छक्काए गणे राया गिइवती सरीरं "

(वृत्तः — 'धम्म' भित्यादि, धम्मे-श्रुतचारित्ररूपं, णमित्य-लङ्कारे. चरतः-सेवमानस्य पंच निश्रास्थानानि-आलम्बनस्था-नानि उपग्रहहेतव इत्यर्थः, वृद्कायाः-पृथिव्यादयः, तेषां च संयमोपकारिताऽऽगमप्रसिद्धा, तथादि-पृथिबोकायमाश्रि-त्योक्तम्—

" ठाणनिसीयतुयदृण, उचाराईण गहणनिक्खेत्रे ॥ घटुगडगळगळेत्रो, पमाइ पञ्जोयणं बहुहा ॥ १ ॥ अञ्चलायमाश्चिम्य—

परिसेयपियणहत्याइ, भोयणे चीरधोयणे चेव ॥
आयमणभाणधुवणे, पमाइ पओयणं बहुद्दा ॥ २ ॥
[स्थानं निषीदनं त्वायत्तेनं उचारादीनां प्रदणे
निक्षेपे घट्टके डगले लेपो बहुधेवमादिप्रयोजनं पृथव्याः ॥१॥
परिषेकः पानं द्वस्तादिधायनं चीरधावनं चेव
आचमनं भांडधायनं यहुधेवमादिप्रयोजनमद्भिः ॥ २ ॥ ]
तेजःकायं प्रति—
ओयण वंजणपाणग, आयामुसिणोदगं च कुम्मासो ॥
डगलगरक्वसुइय, पिष्पलमाई य उच्छोगो ॥ ३ ॥

दृर्पण बत्थिणा वा, पओयणं होड्ज वाउणा मुणिणो ॥ गेळत्रस्मिव होड्जा, सचित्तमोसे परिहरेड्जा ॥ २ ॥

वायकायमधिकत्य---

# आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० सु.

अोदनं व्यंजनं पानकं आचामं उष्णोदकं च कुल्माषादिः डगलकाः भस्य सन्धिश्च पिष्पलकमादि उपयोगः ॥ ३ ॥ इतिकेन भस्त्रया प्रयोजनं भषेत्रायुना मुने: ग्लानत्वेऽपि अवेत् सचित्तमिश्रौ परिहरेत् ॥ ४ ॥ ] बतस्पति प्रति— संथारपायदंडग, खोमियकप्पा य पीठफलगाइ॥ ओसहभेसज्जाणि य, एमाइ पश्रोयणं तहसु ॥ ५ ॥ त्रसकाये पञ्चित्रियतिरश्च आश्चित्योक्तं---चम्मद्रि दंतनहरोम, सिंग अभिलाइलगणगोमते ॥ सीरदहिमाड्याणं, पंचेंहियतिस्यपरिश्रोगे ॥ ६ ॥ संस्तारकपात्रदण्डक श्लीमिककार्पासपीठफलकादि औषधमेषज्यानि चैवमादि तरुष प्रयोजनं ॥ ५ ॥ चम्मास्थिद्नतनखरोमश्रंगाम्लान (अव्यादि) गोमयगोमुन्नै: **भीरदध्या**दिकैः पंचेन्द्रियतिर्यक्परिभोगः ॥ ६ ॥ ] पवं विकलेन्द्रियमनुष्यदेवानामध्यपग्रहकारिता वाच्या, तथा गणी-गच्छः तस्य चोपप्राहिता-' एकस्स कक्षो धम्मो' इत्यादि गाथापुगादवसेया, तथा-" गुरुपरिवारी गच्छो, तत्थ वसंताण निज्ञरा विङ्ला ॥ विणयाउ तहा सारण,-माईहिं न दोसपदिवत्ती ॥ १ ॥ अन्नोन्नावेक्खाए. जोगंमि तहिं तहिं पयदंतो ॥ नियमेण गच्छवासी असंगपयसाहगो नेओ ॥ २ ॥ " इति. [गुरुपरिवारो गच्छस्तत्र वसतां विपुला निर्जरा विनयात्तया सारणादिभिनं दोषप्रतिपत्तिः ॥ १ ॥ अन्योऽन्यापेक्षया योगे तत्र तत्र अवर्त्तमानः गच्छवासी नियमेनासंगपदसाधको होयः ॥ २ ॥ ।

### १० श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम.

तथा राजा-

नरपतिस्तस्य धर्म्भसहायकत्वं दुष्टेभ्यः साधुरक्षणाद्, उक्तं च लोकिकैः—

"शुद्रलोकाकुले लोके, धर्म्म कुर्युः कथं हि ते। श्वान्ता दान्ता अहंतार,-श्रेद्राजा तात्र रक्षति ॥ १ ॥ तथा 'अराजके हि लोकेऽस्मिन, सर्वतो विद्युते अयात्। रक्षार्थमस्य सर्वस्य, राजानमस्जत् प्रभुः॥ २ ॥" इति तथा गृहपतिः-इारयादाता, सोऽपि निश्रास्थानं, स्थानदानेन

संयमोपकारित्वात्, तदुक्तम् -

"धृतिस्तेन दत्ता मतिस्तेन दत्ता, गतिस्तेन दत्ता सुखं तेन दत्तम् ॥ गुणश्रीसमालिङ्गितेभ्यो वरेभ्यो,

मुनिभ्धे मुदा येन दत्तो निवास: "॥१॥

तथा " जो देइ उवस्तयं जद्दवराण, तवनियम क्रोगजुत्ताणं॥ तेणं दिन्ना बत्यन्नपाण,-सयणासणिवगण्या ॥ १ ॥ " इति [यो ददान्युपाश्रयं यतिवरेभ्यस्तपोनियमयोगयुकेभ्यः ॥ तेन दत्ता वस्त्रात्रपानशयनासनिवकल्याः ॥ १ ॥ ] तथा शरीरं-कायः, अस्य च धम्मोंपप्राहिता स्फुटैव, यतोऽवाचि-

" द्यरीरं धर्मसंयुक्तं, रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥ द्यरीराच्छ्रवते धर्मः, पर्वतात् सिळ्ळं यथा ॥ १ ॥" इति भवति चात्रार्या —

" धर्मी चरतः साधो-लोंके निश्रापदानि पश्चेत ॥ राजा गृहपतिरपर:, षट्काया गणदारीरे च ॥ २ ॥" इति द्येषं सुगमं, श्रमणस्य निश्रास्थानान्युक्तानिः.)

एभिरक्षरैर्गणः प्रमाणं । गणगच्छयोरेकार्थिकत्वं प्रसिद्धं ।

## आचार्य श्री आतृचंद्रस्रिर ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ११

मूळ-ठाणांगे ववहारे, गणिहिई धम्मवयण वयणेणं । चडभंगे सुपसथ्यं, गणिहिई धम्मणुङझणयं ॥ १० ॥ यतः-स्थानांगे चतुर्थाध्ययने-

"चत्तारि पुरिसजाया प॰ तं०-धम्मं नाममेगे जहित नो गणसंदितिं ४."

वित्तः-धर्मं त्यजत्येको जिनाझाक्यं न गणसंस्थिति स्वगच्छकृतां मर्यादां, इद किश्चिदाचार्यैः तीर्थकरानुपदेशेन संस्थितिः कृता यथा नास्माभिर्महाकल्पायितशयश्रुतमन्यगणसरकाय
देयमिति, पर्व च योऽन्यगणसरकाय न तह्दाविति स धर्मेम त्यज्ञति न गणस्थिति, जिनाझाननुपालनात्, तीर्थकरोपदेशो देवं-सर्वेभ्यो योग्येभ्यः श्रुतं दातव्यमिति प्रथमो, यस्तु ददाति सद्वितीयः, यस्त्वयोग्येभ्यः तह्दाति स तृतीयः, यस्तु श्रुताव्यवच्छेदाये तद्द्यवच्छेदसमर्थस्य परिच्यद्य स्वकीयदिग्वन्धं कृत्वा श्रुतं ददाति तेन न धर्मों नापि गणसंस्थितस्यकेति स चतुर्थं इति ॥]

एवं व्यवहारस्रुत्रेपि 🛚

मूळ-अहवा धम्म विरुद्धं, गणिवितिं उिश्वकण धम्मस्स । अणुसरणे जे मुणिणो, वहंति न ते गरहणिज्ञा ॥११॥ यदक्तं-श्रीगच्छाचार प्रकीणैके-

" अत्थेगे गोयमा पाणी, जे उम्मग्गपर्हिष् । गच्छंमि संवसित्ताणं, भमइ भवपरंपरं ॥ २ ॥ तम्हा निउणं निहालेउं, गच्छं सम्मग्गपहियं । वसिज्ज तत्थ आजम्मं, गोयमा! संजष् सुणी ॥७॥"

[सन्त्येके गौतम ! प्राणिनो ये उन्मार्गप्रतिष्ठिता: । गच्छे समुख्य आम्यन्ति भवपरम्पराम् ॥ २ ॥ तस्मान्निपुणं निभाल्य सन्मार्गप्रस्थितं गच्छं । तत्राजनम बसेत् गौतम ! संयतो मुनिः ॥ ७ ॥ ] इति वचनात्

मूल-जे पुण पुबाइमं, गणिटितिं छंडिऊं न सकंति । नऊ निर्दिति सुयम्मं, जिणआणाराहगा तेवि ॥१२॥ यदुक्तं-व्यवहारहृत्तौ-

''जं जीयमसोहिकरं, न तेण जीएण होइ ववहारो । जं जीयं सोहिकरं, तेणड जीएण ववहारो ॥ १ ॥ जं जीयमसोहिकरं, पासध्य पमत्त संजयाइतं । जइवि महाणा इत्रं, न तेण जीएण ववहारो ॥ २ ॥ जं जीयं सोइकरं, संवेग परायणेण दंतेण । एगेणिव याइत्रं,तेणड जीएण ववहारो ॥३॥' इतिवचनात् सर्व पत्राणि ५?? तन्मध्ये पत्रे ५०० प्रमिते पुनः— ''जा जस्स टिई जा जस्म, संटिइ पुन्वपुरिसकयमेरा ॥ स्रो तं अइक्कमंतो, अणंत संसारिओ होइ ॥ १ ॥ जा जिणवरेहिं भणिया, गोयममाईहिं धोरपुरिसेहिं । सा सच्च चिय मेरा, पालेयन्वा पयत्तेणं ॥ २ ॥ '' इति पूर्वाचार्यवचनात्

मूल-जिण भणियगच्छमेरा, गोयममाईहिं सम्ममाइना । सा नोर्ह्वयेयन्या, महानिसीहंमि भणियमिणम् ॥१३॥

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १३

यतः–श्रीमहानिशीथे–''दुष्पसद्दं जाव गच्छ मेरा नाइकमेयबा-'' इति वचनात् ॥

#### अथ साधूनामाचार:-

मूळ-सम्मदंसणरत्ता, उज्झत्ता चरण करण गुण गहणे।
आगम मग्गणुलग्गा, भव भय भीया मुणी धना ॥१४॥
सिरिवीरिजिणिदेणं, गोयमपम्रहाण एवमाइटं।
बारसवास सएहिं, गएहिं पन्नास अहिहेहिं॥ १५॥
साहूणं अनुन्नं, भेज होही न इथ्य संदेहो।
मह सासणंमि जाणह,महानिसीहंमि भणियमिणं॥१६॥

मह सासणीम जाणह,महानिसाहिम भाणयमिण ॥१६॥ यदुक्तं-श्रीमहानिश्चीये-

"से भयवं केवइएणं कालेणं प(हे) यहे कुगुरू हो हैति ?
गोयमा ! इजय अद्धतेरसण्हं वाससयाणं साइरेगाणं समइक्तंगणं परं भिवस्संति । से भयवं केणं अट्टेणं ? गोयमा !
तेकालं इड्डीरस सायगारवसंगए ममीकार अहंकारग्गीए अंतो
संपञ्जलितवोंदी अहमहंति कयमाणसे अमुणिय समय सब्भावे गणी भविहेंति । एएणं अट्टेणं सो एवं विहे तकालं गणी
भविस्संति, गोयमा ! एगंते णं नो सब्वे !! '' इति वचनात् ॥
मूल-तेणं संपइ दीसइ, पिहु पिहु गच्छेम्र भिन्न आयारो ।
तथ्यवि जं जिणवयणाणु,-सारंज तं प्रमाणंति ॥ १०॥

किन्द्रइ गच्छायारो, भन्नइ नियनिय गुरूहिं आइन्नो । नहु सुर्त्तं दृक्षिञ्झइ, भृक्षिञ्झइ तेहिं जिणधम्मो ॥ १८ ॥

यदुक्तं-श्रीगच्छाचार पकीर्णके—

''विहिणा जोउ चोएइ, सुत्तं अत्थं च गाहए।
सो घण्णो सो य पुण्णो य, स बंधू सुक्खदायगो॥१॥ २५॥
स एव भव्बसत्ताणं, चक्खुभूए विश्वाहिए।
दंसेइ जो जिणुहिहं, अणुहाणं जहिहंअं॥२॥ २६॥
तित्थयरसमो सुरी, सम्मं जो जिणमयं पयासेइ।
आणं अइक्कमंतो, सो कापुरिसो न सप्पुरिसो॥३॥ २७॥
जइवि न सकं काउं, सम्मं जिण भासिजं अणुहाणं।
तो सम्मं भासिज्ञा, जह भणिअं खीणरागेहिं''॥४॥ ३३॥
इति वचनात्॥

[विधिना यस्तु प्रेरयति सूत्रमर्थे चावगाइयति । स धन्यः स च पुण्यम्य स बन्धुमोक्षदायकः ॥ २५ ॥

स एव भन्यसस्थानां चक्षुर्भृतो व्याख्यातः।
दर्शयति यो निनोद्दिष्टमतुष्ठानं यथास्थितम्॥ २६॥
तीर्थकरसमः स्रियों जिनमतं प्रकाशयति।
आज्ञामतिकाम्यन् स कापुरुषो न सत्पुरुषः॥ २९॥
यथपि न शक्यं कर्न्नु सम्यग् जिनभाषितमनुष्ठानम्।
तथाऽपि सम्यग् भाषेत यथा भणितं श्लोणरागैः॥ ३३॥]
मूल-जे पुण गच्छायारं, मिन्नय हीलंति सुत्त आयारं।
ते हीलंति जिणाणं, नियगच्छं चेत्र मसंति॥१९॥
सुत्तत्थ गंथ निष्णुति संगहणी प्रयणस्स पंचंगी।
प्राणुसारिणो सन्वे, गंथा अध्या प्रमाणं मे ॥२०॥

# आचार्य श्री आतृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १५

यदुक्तं-श्रीसमवायांगे, नंदीसूत्रे च पाक्षिकसूत्रे च
"स सुत्ते स अत्थे सग्गंथे स निज्ञुत्तिए स संगहिणीए''

इति वचनात्॥

मळ-अंगाणं वित्तीस्र. टाणे टाणे परूवियं एयं।

सुत्ताणुवाइ सव्वं, तं सव्वं पुव्वस्रीहिं ॥ २१ ॥
यहुक्तं-श्री भगवती हत्ती-''यदेवमतमागमानुपाति तदेव ग्राह्यमितरत्पुनरुपेक्षणीयमिति'' वचनात् ॥
अन्यहत्तिष्वपि ''सुत्रानुगतो योह्यर्थः सोस्माद्ग्राह्यो न चेतरः''॥
इस्मादि नवांगीहत्तिकारकश्रीअभयदेवस्रीद्ववचनात् ॥

सांप्रतं वर्तमानसाधूनां सर्वेषां सुधर्मस्वाम्यनुगतोन्वयस्त-तस्तदुक्ता सामाचारी प्ररूपते—

मूळ-सिरिवीरतिथ्थनाहस्स, पयभत्तो पंचमोय गणहारी । जा तेण समाइहा, सामायारीय सा सुद्धा ॥२२॥

यदुक्तं-श्री उत्तराध्ययने--

''सामायारिं पन्वक्लामि, सन्बदुक्लविमोक्लणिं । जं चरित्ताणं निग्गंथा, तिन्ना संसारसागरं ॥१॥ पढमा आवस्सिया नागं, विड्या य निसीहिया । आपुच्छणा य तह्या, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥२॥ पंचमा छंदणा नाम, इच्छाकारोय छट्टओ । सत्तमो मिच्छकारो य, तहकारो य अट्टमो ॥३॥ अब्सुट्टाणं नवमं, दसमा उवसंपया । एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेह्या ॥४॥'' इति वचनात् ॥

मुळ-बाहि उवस्सयाउ, अवगाहाउव भणह आवस्सियं। निक्खममाणोय सया, निसीहियं कुणइ पविसंतो ॥२३॥ काउसर्गं च तवं, सज्झायं किंचि कज्झमन्नं वा। कुणमाणो आपुच्छइ, गुरुंति आपुच्छणा तइया ॥२४॥ चितिय कज्झंतरए, अन्नं वा किंचि कज्झम्रववन्नं । तस्स य करणे पुणरवि, पुच्छइ पडिपुच्छणा एसा ॥२५॥ आहार वत्थमाई, दन्वेहिं जहक्रमं निमंतिज्झा । गुरु साहम्मियवम्मं, विषएणं छंदणा एसा ॥२६॥ कथ्यवि किंचिवि क्खलियं,सीसाणं जाणिऊण सुहगुरुणो । धम्मियचोयणपुर्वं, सारंति पुणो निवारंति ॥२७॥ इच्छामो हियसिक्खं, सारणकरणेण णुग्गहो अम्हं । विहिड एवं भणणे, इच्छाकारो भवे एसो ॥२८॥ हा दुहक्यं एयं, निर्दिता अप्पणो अणायारं । मिच्छाकारो य भवे, भणंति जं दुकडं मिच्छा ॥२९॥ सज्झायंमि निउत्ता, वेयावचंमि तहय असंमि । कज्झे गुरूहिं सीसा, तहत्ति एयं पवज्झंत्ति ॥३०॥ दृहणब्सुहाणं, अंजलिकरणं च अभिमहं गमणं। रयहरणेणं सद्धि, पायाण पमज्झणं विहिणा ॥३१॥ कंबलि दंडम्गहणं, आसणस्यणं च विणयकम्भं च । नवमा सामायारी, गुरुपुआ नामओ भणिया ॥३२॥ गच्छंतरंभि गंतु, नाणद्वायरियपायमुलंभि । एवतियं कालमहं, चिहिस्सं अंतिए तुम्हं 📭 ३॥

इय भणिऊणं चिद्वइ, एसा उवसंपया समायारी । दसहा जिणिंदभणिया, सद्दृहियव्वा पयत्तेणं ॥३४॥ एयं सामायारिं, विद्विणा गच्छंमि जो पवत्तेइ । सो आयरियो सुगुरू, सयं तरइ तारए अबं ॥३५॥ जोड प्पमाय दोसेणं, आलस्सेणं भएण य । सीसवग्गं न चोएइ, तेण आणा विराहिया ॥३६॥

( अथ मुनीनां दिनचर्या- )

मुणिमंडलीए जिट्टो,-ठवणायरियं जयं पमुञ्जेह । सेसा अणुक्रमेणं, गुरूण विणयं परंजंति ॥४४॥ पच्छा दुक्लमासमणे, दाऊं उवहिं च दंह(म)प्रजंतं। पदिलेहिऊण सन्वं, दाऊण पुणो खमासमणं ॥४५॥ भयवं च पमज्जिमिय वसहिं. इय भणिय सुद्ध जयणाए । मिउदंड पुच्छणेणं, भणिएणं तइय अंगंमि ॥४६॥ पंचट्टाणे पंचण्ड,-मणंतरेणं च पुत्तियं वयणे । दाउं रयरक्खहा, मुणिणो वसहिं पमर्जिति ॥४७॥ सोहिय कर्जं जीवे, उद्धरिक्षणं च छप्पयाउय। साहणं च समप्पिय. विभक्तिऊणं सुगुरु वयणो ॥४८॥ सेसं परिट्टवित्ता, विद्युद्ध भूमीइ जंतुरहियाए । इरियं पडिकमित्ता, आलोएयंति गुरु पुरुओ ॥४९॥ आपुच्छिकण गुरुणो, वसहिं समताउ जाव हत्थसयं। अवलोइऊण नाऊं, वसही सुद्धा इय भणंति ॥५०॥ काले पवेऊणं, सज्झायं पठविति विहिप्रव्वं । पंचविहं सङ्झायं. गुरुणुश्वाया पक्रव्वंति ॥५१॥ ता जाव होड ऊणो, चडत्थ भागेण पोरिसीकाळो । गुरुळहुकमेण ळहुओ, सीसो उद्वित इय भणइ ॥५२॥ भयवुग्घाडा पोरिसि, इरियापिडक्समण पुत्रगं विणया । इक खमासमणेणं, हवंति सन्वेवि उवउत्ता ॥५३॥ उद्वित आसणाउ, पिहु पिहु भणंति कयखमासमणा। संदिसिय भंडगाइ, बीए भंडं पडिलेहेमि ॥५४॥

## भाचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि प्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १९

यदुक्तं-श्रीउत्तराध्ययने, २६ अध्ययने--"पोरिसीए चउडभागे. वंदिचा ण तओ गुरुं। अपडिकमित्ता कालस्स भायणं पडिलेहए ॥२२॥" मुळ-एयं भणित वयणं, भंडयपडिलेहणं तह कुणंति । भायण निहिसययाणं, उवगरणाणं च सत्तण्हं ॥५५॥ गतः-"पत्तं पत्ताबंधो. पायद्ववणं च पायकेसरिया । पडलाइं रयत्ताणं, गुच्छउ पायनिज्जोगो ॥१॥" यहकं-श्री उत्तराध्ययने. २६ अध्ययने-"ग्रहपोत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छयं । गोच्छगळइयंग्रुळिओ. वत्थाइं पहिलेहए ॥२३॥ उद्दं थिरं अतुरियं, पुन्वं ता वत्थमेव पहिलेहे । तो बिइयं पष्फोडे, तइयं च प्रणो पमज्जिज्जा ॥२४॥ अणचावियं अवस्तियं, अणाणुवंधिं अमोसर्ति चैव । छपुरिमा नव खोडा, पाणीपाणिविसोहणं ॥२५॥ आरभडा संमदा. वज्जेयवा य मोसली तइया। पप्फोडणा चउत्थी. विक्खिता वेइया छट्टी ॥२६॥ पसिदिल-पळंब-लोला, एगा मोसा अणेगरूवधुणा । क्रुणइ पमाणि पमायं, संकिए गणणोवगं क्रज्जा ॥२०॥ अणुणाइरित्तपडिलेहा, अविवचासा तहेव य । पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाणि ॥२८॥ पहिलेहणं क्रणंतो, मिहो कहं कुणइ जणवयकहं वा। देइ व पचक्खाणं, वाएइ सयं पहिच्छइ वा ॥२९॥

पुढवी आउकाप, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं । पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहगो होइ ॥३०॥

पुढवी आउकाए, तेऊ वाऊ वणस्सइ तसाणं । पडिलेहणा आउत्तो, छण्हं पि आराहओ होइ ॥३१॥" इतिश्री उत्तराध्ययनवचनात्—

(अत्र बृत्तिलेश:—प्रतिलेखनाविधिमेषाद-'प्रुखविश्वकां' प्रतीतामेष 'प्रतिलेख्य' प्रतिलेखयेत् 'गोच्छकं' पात्रकोपिर-बर्स्युपकरणं, ततश्च 'गोच्छगल्डर्-अंगुल्डि' ति पाक्रतरबाद-क्गुलिभिर्लातो-गुद्दीतो गोच्छको येन सोऽयमङ्गुल्लिलात-गोच्छकः 'बल्लाणि' पटलकरूपाणि 'प्रतिलेखयेत्' प्रस्तावा-स्प्रमाजयेदित्यर्थः ॥२३॥

इत्थं तथाऽविस्थतान्येव परलानि गोच्छकेन प्रमुक्य पुनर्यत्कुर्यात्तदाह-'ऊर्ध्व' कायतो बद्धतक्ष, तव कायत उत्कुरुकुत्त्वेन स्थितत्वात्, वक्षतक्ष, तिर्यक्षप्रसारितवक्षत्वात्, 'स्थिरं' दृढग्रहणेन 'अत्वरितम्' अद्युतं स्तिमितं यथाभवन्येवं 'पृष्वे' प्रथमं 'ता' इति तावद् 'बस्थं' परलक्षरूपं, जाता-वेकबचनं, परलक्षक्रमेऽिप सामान्यवाचकबद्धशब्दाभिधानं वर्षाक्तपादिप्रत्युपेक्षणायामप्ययमेव विधितित ख्यापनार्थम्, पवशब्दो मिन्नक्षमस्ततः 'पडिलेहि'त्ति 'प्रत्युपेक्षेतेव' आरतः परतश्च निरीक्षेत्रैव न तु प्रस्फोटयेत्, अथवा बिन्दु-लोपाद् 'पदम्' अग्रुना ऊर्घादिप्रकारेण प्रत्युपेक्षेत न त्वन्य-थेति भावः, तत्र च यदि जन्तुन पश्यति ततो यतनयाऽ न्यत्र सङ्क्रमयति, तददर्शने च 'तो' इति 'ततः' प्रत्युपेक्ष-णादनन्तरं द्वितोयमिदं कुर्यात् यदुत परिशुद्धं सत् प्रस्को-टयेत्-तत्प्रस्फोटनां कुर्यादित्पर्थः, तृतीयं च पुनरिदं कुर्यात्—

## आचार्य श्री भातृचंद्रसृरि ग्रग्थमाळा पुस्तक ५० मुं. २१

यदुत प्रमृज्यात्, कोऽर्थः ?-प्रत्युपेश्य प्रस्फोटच च हस्त-गतान् प्राणिनः प्रमृज्यादित्यर्थः, ॥२४॥

कथं पुनः प्रस्फोटयेश्ममृङ्याहेश्याह-'अनिर्तितं प्रस्फोटनं प्रमार्जनं वा कुर्षतो बस्नं वपुर्वा यथा निर्तितं न भवित 'अविद्धितं' यथाऽऽत्मनो वस्नस्य च बिह्नतमिति मोटनं न भवित 'अविद्धितं' यथाऽऽत्मनो वस्नस्य च बिह्नतमिति मोटनं न भवित 'अणाणुवंधि'न्ति 'अनुवृद्धि' अनुवृद्धिन-नैरन्तर्य- हस्मणेन युक्तमनुवन्धि न तथा, कोऽर्थः ?-अलक्ष्यमाणिवभागं वथा न भवित, 'आमोसिह्धं'न्ति सुत्रत्वाद्यामर्श्वत्त्वध्यान भवित, तथा किमित्याह'छप्पुरिम'क्ति पट्पूर्वाः पूर्व क्रियमाणतया तिर्यक्कृतवस्त्रमन्द्रभोटनात्मकाः कियाबिद्यां येषु ते पट्पूर्वाः, 'नवस्त्रोद्ध' क्रियमाणतया तिर्यक्कृतवस्त्रमन्द्रभोटनात्मकाः कर्त्तव्या इति दोषः 'पाणौ' पाणितहे 'पाणिनां' कुन्ध्वादिस्त्वानां विद्योधनं पाणौं' पाणितहे 'पाणिनां' कुन्ध्वादिस्त्वानां विद्योधनं पाणिनाणिक्रमार्जनं वा कर्तव्यं ॥२५॥ प्रतिलेखनादोषपरिद्यारार्थमाह—

आरभटा विपरीतकरणमुच्यते त्वरितं वाऽन्यान्यवस्त्रप्रद्यणेनासौ भवति, संमर्दनं समर्दा रूढित्वात्स्त्रीलिङ्गता
वस्त्रान्तः कोणसंचलनमुपधेर्वा उपरि निषद्नम्, वर्जयितव्येति सर्वत्र संबध्यते, 'वः' पूरणे 'मोसलि'ति तिर्यपूर्ध्वमधो वा घट्टना नृतीया, 'प्रस्फोटना' प्रक्षेंण रेणुगुण्डितस्येव वस्त्रस्य झाटना चतुर्थी, विक्षेपणं विक्षिन्ना पञ्चमीति
गम्यते, रूढित्वाच स्त्रीलिङ्गता, सा च प्रत्युपेक्षितवस्त्रस्यान्यत्राप्रत्युपेक्षिते क्षेपणं, प्रत्युपेक्षमाणो वा वस्त्राञ्चलं यदूर्ध्व
क्षिपति, वेदिका 'छठ्ठ'ति यष्ठी, प्रवमेते षड्दोषाः प्रतिलेसनायां परिद्यत्तेच्याः ।।२६॥

तथा प्रशिथिलं नाम दोषो यदद्दमनिरायन्तं वा वसं ग्रह्मते. प्रस्ताने याह्नवसम्बर्धान प्रत्यपेश्यमाणवस्रकोणानां लम्बनं लोलो यद्भूमी करे वा प्रत्युपेश्यमाणवस्त्रस्य लोल-नममीषां ह्रन्द्वः एकामर्शनं एकामर्शा प्राग्यत् स्त्रीलिङ्गता, मध्ये गृहीत्वा ग्रहणदेशं याषदुभयतो वस्त्रस्य यदेककालं संघर्षणमाक्षणम्, 'अनेगरूषधुणे'ति अनेकरूपा चासौ सङ्ख्यात्रवातिक्रमण्यो यगपदनेक्यस्राप्रतो वा धुनना च प्रकम्पनारिमका अनेकरूप्यनना, पठचते च 'अणेगरूबध्य' ति तत्र च धुनं कम्पनमन्यत्प्राग्यत् , तथा यत्करोति प्रमाणे-प्रस्फोटादिसङ्ख्यालक्षणे प्रमादम्-अनवधानं यच शङ्किते-प्रमादत: प्रमाणं प्रति शङ्कोत्पत्तौ गणनां कराङ्गुलिरेखा-स्पर्शनाधिनैकद्वित्रिसङ्ख्यात्मिकामुपगच्छति-सप्याति गण-नोपगं यथाभवत्येयं गम्यमानत्वात्यस्फोटनादि क्रयात्, सम्भा-बने लिख, सोऽपि होषः, सर्वत्र पूर्वस्त्रतादनुषन्यं वर्जनिकया योजनीया, एवं सानन्तरोक्तवोषैरिकता सदोवा प्रत्यपेक्षणा, बियका त निर्देषित्यर्थत उक्तम ॥२७॥

साम्प्रतं त्वेनामेव भङ्गक्षनिदर्शनद्वारेण साक्षात्सदोषां निर्दोषां च किश्चिद्विरोषतो बकुमाइ-अण्णाइरित्तं सि ऊना सासायतिरिक्ता ऊनातिरिका न तथा अनुनातिरिका प्रति- छेखा, इह च न्यूनताधिक्ये स्फोटनाप्रमार्जने वेळां चाश्चित्य वाच्ये, 'अविषचासंति विविधो न्यत्यासो-धिपर्यासो यस्यां सा विन्यत्यासा न तथा अविन्यत्यासा-पुरुपोपधिविषयी- सर्वादत कर्त्तन्येति रोषः, अत्र च त्रिभिविरोषणपद्रेर्ष्टौ भङ्गाः स्विता भवन्ति, पतेषु च कः शुद्धः को वाऽशुद्धः इत्याह-प्रथमपद्म् इहैवोपद्दिग्ताधभङ्गस्य 'प्रशस्तं' निर्दो- वत्या श्लाच्यं शुद्धमिति यावत, रोषाणि तु प्रक्रमात्यदानि वत्या श्लाच्यं शुद्धमिति यावत, रोषाणि तु प्रक्रमात्यदानि व्रतीयादि भङ्गात्मकान्यप्रशस्तानि, तेषु न्युनताचन्यतमदोष-

# आचार्य श्री ब्रातृचंद्रसृरि प्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. २३

सम्भवात् , ततः प्रथमभङ्गानुपातिन्येव प्रतिलेखना विधेये-त्युक्तं भवति ॥२८॥

पर्वविधामत्येनां कुर्वता यत्परिहर्त्तव्यं तत् काक्रोपदे-ब्रुमाह-प्रतिलेखनां कुर्वन 'मिथः कथां 'परस्परसंभाषणात्मिकां करोति, जनपद्दक्यां वा, स्त्र्यादिकथोपलक्षणमेतत्, दद्दाति बा प्रत्याख्यानमन्यस्मे, वाचयति -अपरं पाठयति, स्वयं प्रति-च्छति वा आलापादिकं गृह्णांत, य इति गम्यते, ॥२९॥

स किमित्याह, 'पुढवी'ति स्पष्टं, नवरं 'पुढवी आउक्षाय' ति पृथिब्यप्काययोः 'प्रतिलेखनाप्रमत्तो' मिथः कथादिना तश्रानवहितः सन् वण्णामपि, आस्तामेवैकादोनामित्यपि-शब्दायः, विराधकश्चैवं प्रमत्तो हि कुम्भकारशालादौ स्थितो नलभृतघटादिक्षमपि प्रलोठयेत्, तत्तस्तक्कलेन मृद्गिनवीज-कुम्ध्वादयः प्रशब्दन्ते, प्रलावनातः विराध्यग्ते, यत्र चाप्ति-स्तत्रावर्यं वायुरिति पण्णामपि द्रव्यतो विराधकस्यं, भाव-तस्तु प्रमत्तत्याऽन्यवाऽपि विराधकस्यमेव, तद्नेन नीवर-भार्यत्यास्रतिलेखनायास्तत्काले च प्रमादक्षनकस्येन हिंसाहे-तुत्वान्मिथः कथादीनां परिहार्यत्वयुक्तम् ॥३०॥)

इय आगमवयणाउ करेइ।

मूळ-पडिलेहणाच विहि रिसि,-मिभनाळणं च काळवेळाए । वंदिज्झ चेंड्याई, भत्तीइ विहार टाणंमि ॥५६॥ तयभावे पुट्युत्तर, दिसिम्मि होऊं टवित्तु टवणं च । अणुओगदारस्रुत्ते, भणियाण दसण्ह-मझयरं ॥५७॥ यतः-श्रीअनुयोगदारस्रुत्ते—

"से किंतं ठवणावस्सयं ?, २ जण्णं कहकम्मे वा पोत्थ-कम्मे वा चित्तकम्मे वा लेप्पकम्मे वा गंथिमे वा वेडिमे वा पूरिमे वा संघाइमे वा अक्खे वा वराहए वा एगो वा अणेगो वा सन्भावठवणा वा असन्भावठवणा वा आवस्सएत्ति ठवणा ठविज्ञए से तं ठवणावस्सयं"

(बृत्ति:-अथ किं तत् स्थापनाषश्यकमिति प्रश्ने सत्याह-' ठबणावस्सयं जण्ण' मित्यादि, तत्र स्थाप्यते अमु-कोऽयमित्यभित्रायेण कियते निर्वर्त्यत इति स्थापना-काम्न-कर्मादिगतावश्यकवत् साध्वादिरूपा सा चासौ आवश्यकः तद्वतोरभेदोपचारादावश्यकं च स्थापनावश्यकं, स्थापना-लक्षणं च सामान्यत इदम्-" यनु तद्यैवियुक्तं तद्भिप्रायेण यश्च तत्करणि। लेप्यादि कर्म्म तत्स्थापनेति कियतेऽल्पकालं च ॥१॥ " इति, विनेयानुष्रहार्थमत्रापि व्याख्या-तु शब्दो नामलक्षणात स्थापनालक्षणस्य भेदस्यकः स चासावर्यम तद्यों-भावेग्द्रभावावश्यकादिलक्षणस्तेन वियुक्तं-रहितं यद्व-स्त 'तद्दभिप्रायेण' भावेन्द्राधभिप्रायेण 'कियते' स्थाप्यते तत् स्थापनेति सम्बन्धः, किंबिजार्थं यदित्याह-'यस तत्करणि' तेन-भाषेग्द्रादिना सह करणि:-सादृश्यं यस्य (तत्) तत्कः रणि-तत्सदृशमित्यर्थः, च शब्दात्तद्वरणि चाक्षादि वस्तु गुद्धते, असद्शमित्यर्थ:, कि पुनस्तदेवंभूतं वस्तिवत्याह-'लेप्यादिकम्मेति' लेप्यपुत्तलिकादीत्यर्थः, आदिशब्दात् काष्ट्रपत्त सिकादि ग्रह्मते, अक्षादि वाडनाकारं, कियन्तं कालं तत् कियत इत्याह-अरुपः कालो यस्य तद्रुपकालम्-इत्यरकालमित्वर्थ:, च शब्दाबावत्कथिकं च शाश्वत-प्रतिमादि, यत्पुनभविन्द्राचर्थरहितं साकारमनाकारं बा तद्दर्शभिमारोण कियते तत् स्थापनेति तारपर्यमित्या-र्योर्थः ॥१॥ इदानीं प्रकृतमुच्यते-'जं णं'त्ति 'ण'मिति बाक्या-लक्षारे, यतकाष्ट्रकर्मणि वा चित्रकर्मणि वा वराटके वा पकौ

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि यन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. २५

वा अनेको वा सञ्जायस्थापनया वा असञ्जावस्थापनया वा 'आवस्सरित' आवश्यकतहतोरभेदोपचारासहानिह गृद्यते, तत्रभको वा अनेको वा. कयंभताः ? अत उच्यते-आवश्यक-कियाबानावश्यकियाबन्तो वा 'ठबणा ठिवजाइति' स्थाप-नारूपं स्थाप्यते-क्रियते, आवृत्या बहुबचनान्तत्वे स्थापनाः रूपाः स्थाप्यन्ते क्रियन्ते, तत् स्थापनावश्यकमित्यादिपदेन सम्बन्ध इति समुदायार्थः । काष्ट्रकम्मोदिष्वावश्यकक्रियां कुर्व्बन्तो यत स्थापनारूपाः साध्वादय: स्थाप्यन्ते ततु स्था-पनायदयकमिति तात्पर्यम् । अधुना अवयवार्थे उच्यते-तत्र क्रियत इति कर्मे काष्ठे कर्म काष्ठकर्म-काष्ठनिकुट्टितं रूपक-मित्यर्थः, 'चित्रकर्म' चित्रलिकातं कपकं 'पोत्यकम्मेव'ति अत्र पोरथं-पोतं कस्त्रमित्वर्थः, तत्र कर्म्म-तत्पद्भवनिष्पक्ष धीडिह्निकासपकमित्यर्थः, अथवा पोत्यं-पुस्तकं तच्चेह संपूट-करूपं गृद्यते,तत्र कम्मै तनमध्ये वर्लिकालिखितं रूपकमित्यर्थः, अथवा पोरथं-ताइपत्रादि तत्र कर्म-तच्छेदनिष्पनं रूपकं, 'सेप्यकर्मा' लेप्यक्रपकं, 'प्रन्थिमं' कौदालातिद्याद प्रन्थि-समुदायनिष्पादितं ऋपकं, 'वेष्टिमं' पुष्पवेष्टनक्रमेण निष्पन्न-मानन्दपुरादि प्रतीतरूपम्, अथवा पकं द्यादीनि वा वस्त्राणि बेष्ट्यन कश्चित रूपकं उत्थापयति तहेष्टिमं, 'परिमं भरिमं' पित्तलादिमयप्रतिमावत् 'संघातिमं' बहुवस्रादिखण्ड संघात-निष्पनं कञ्चुकवत् , 'अक्षः' चन्दनको 'बराटकः' कपर्दकः, अत्र वाचनान्तरे अन्यान्यपि दन्तकर्मादिपदानि दृश्यन्ते ताभ्यप्युक्तानुसारतो भावनीयानि, वाद्यब्दा: पश्चान्तरस्रचकाः, यथासम्भवमेवमन्यत्रापि, पतेषु काष्टकर्मादिषु आवश्यककियां कुर्वेन्तः पकादिलाध्वादयः सद्भावस्थापनया असद्भावस्था-पनया वा स्थाप्यमाना: स्थापनावश्यकं तत्र काष्ट्रकर्माविष्धा-कारवती सद्भावस्थापना, साध्वाचाकारस्य तत्र सद्भाचात्.

अक्षादिषु त्वनाकारवती असद्भावस्थापना, साध्याणाकारस्य तत्रासद्भावादिति, निगमयब्राह-'सेतमित्यादि' तदेतत् स्था-पनावश्यकमित्यर्थः ॥३१॥)

एभिरक्षरैःस्थापनाईतः संस्थाप्य वंदते तद्विधिमाह—
मूल-काव्यं-छेदग्गंथ महानिसीहपवरे तिकालिए चेइए
वंदिज्ञा भणियं थवं थुइविहि काऊण भावुज्जुओ ।
नायाधम्मकहाउ बीयतइ उवंगंमि पन्नतिए

जंबुद्दीव विवाहनाम पुरुष उत्तं जहा आगमे ॥५८॥ उक्तं च-श्री रायपसेणो उपांगे जीवाभिगमे च —

"अष्टसयिमुद्धनन्थजुत्ते हिं अत्यज्जते हिं अपुणक्ते हिं महा-वित्ते हिं संयुणइ २ ता सत्तद्व पयाई पद्योसकड़ २ ता वापं जाणुं अंतेड़ २ ता दाहिणं जाणुं धरणितलंखि निहटु तिक्खुत्तो सुद्धाणं धरणितलंखि निवाडेड़ २ ता ईसिं पच्चुण्णमइ २ ता क-रयलपरिगाहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कटु एवं वयासी— नमोत्थुणं अरहेताणं जाव संपत्ताणं, वंदड़ नमसइ २ ता ॥"

(अत्र वृत्तिलेशो यथा - 'अठ्ठसयित्युद्धगंथजुतेहि'नित विशुद्धो निर्मलो लक्षणदोषरहित इति भाषः यो प्रम्थः-शब्दसंद्भेश्तेन युक्तानि, अष्टशतं च तानि विशुद्धप्रम्थयुक्तानि च तैः अर्थयुक्तैः अर्थसारेरपुनहक्तेभेद्दावृत्तैः, तथाविश्वदेषलिध-प्रभाव पषः, संस्तौति संस्तुत्य थामं जातुं अश्वति इत्यादिना विधिना प्रणामं कुर्वन प्रणिपातदण्डकं पठति॥)

इति वचनात् ॥ एवं ज्ञाताधर्मकथांगे भगवत्यंगे जंबुद्वीप-श्रक्तरों च सुर्याभोषमया पूजा चैत्यवंदनादि सर्व ज्ञातव्यम् ॥

## आचार्य भी भातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. २७

मुळ-उद्धृद्विएहिं थुइउ, सक्कथयं तहय उवनिविद्वेहिं। भणिकण काउम्सम्गांतर. थुइ लोगाइ थुइ रहियं ॥५९॥ एवं सुयाणुसारा, विहिणा चियवंदणं च कायव्वं। जं अक्षहावि दीसइ, गच्छायरणाइ तं नेयं ६०॥ अट्टथुइ पंच सक्कथव, काउस्सम्मलोग सन्वार्ड । सिद्धंतो थुइ पाढो, सुत्ते चिइ वंदणं न इमं ॥६१॥ नाणाऽविरयसुरेसु, चेइय सद्दो न संमड समए। नाणस्स सुरसुरीणं. नह अरिहत्तंपि संभवड ॥६२॥ चेइय वंदण समए, एएसि इध्य नध्यि अहिगारो । पहमोवंगे अंगे, तहए तह पंचवंगंमि ॥६३॥ भणिउं काउम्सम्मो, परिछत्तं दसविहंमि परिछत्ते । पिछत्तिय खयदाणे. किमागयं इत्थ पिछत्तं ॥६४॥ यत:-श्री औपपातिकोषांगे, १ स्थानांगे, २ भगवत्यंगे, ३ च-"से किं तं पच्छित्ते पच्छित्ते दसविहे पन्नते तंजहा-आळो-यणारिहे पडिक्रमणारिहे तदुभयारिहे विवेगारिहे विजस्सम्गा-रिहे तवारिहे छेदारिहे मुलारिहे अणबट्टप्वारिहे पारंचियारिहे" इति ।। पंचर्म प्रायश्चित्तं काथीत्सर्गः सत् देववंदनाधिकारे कथं स्यादिति पुनर्गीतार्था निरीहा वदंति तदेव प्रमाणं । मूल-सुत्तुत्तं मुत्तूणं, पुवायरियेहिं एयमायरियं । केणावि कारणेणं. तत्तं त त एव जाणंति ॥६५॥ जे प्रण आगमविहिणा. देवे वंदंति भावसद्धीए। तैसिं च हीलणा जा. सा कि ज़त्तत्ति तं भणह ॥६६॥

वंदित्तु चेइयाई, मज्झन्हे पोरिसीए तइयाए।
पत्ताइ भत्तपाणं, गवेसए दोसरहियं तु ॥६७॥
गोयर चरिया काले, काउस्सगंग करित्तु उवओगं।
भयवं भे कहिऊण, भत्तं पाणं गहिस्सामि ॥६८॥
यतः-श्री व्यवहारहृत्ती गोचरीकाले उपयोगविधिरुक्तोस्ति—
मूल-आवस्सइत्ति भणिए, गुरुणो विय आइसंति तेसि इमं।
आउत्तं गहियव्वं, जह गहियं पुत्तसाहृहिं॥६९॥
यदुक्तं—''तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए।
छण्हं अण्णयरागंमि, कारणंमि सम्रुटिए ॥३२॥
वेयणवेयावचे इरियट्टाए य संजमद्वाए।
तह पाणवत्तियाए छद्रं पुण धम्मचित्ताए॥३३॥ ''

( बृक्तः—'तइप' इत्यादि सुगमं, नवरमौत्सर्गिकमेतत्, अन्यथा हि स्थिवरकिएकानां यथाकालमेव भक्तादिगवेषणं, तथा चाह-'सइकाले चरे भिक्खु'ति, (स्मृतिकाले चरेद् भिक्छुः) षण्णां कारणानाम् 'अन्नयरायं मि'त्ति अन्यतरस्मिन् कारणे 'समुस्थिते' संज्ञाते, न तु कारणोत्पित्तं विनेति
भावः, भोजनोपलक्षणं चेह भक्तपानगवेषणं, गुरुग्लानार्षयंमन्यथाऽपि तस्य सम्भवात्, तथा चान्यत्र भोजन पवैतानि
कारणान्युक्तानि, तान्येव षट् कारणान्याह—'वेयण वेयावचे'
ति, सुब्ब्यस्ययाद् वेदनाद्याब्दस्य चोपलक्षणस्यात्स्नुन्पिपासाज्ञानितवेदनोपद्यमनाय, तथा श्रुत्पिपासाभ्यां (परिगतो) न
गुर्वादिवयावृत्यकरणक्षम इति वैयावृत्याय, तथा 'इंचें'सि
ईर्यासमितिः सेव निर्जरार्थिभिरध्यमानतयाऽर्थस्तस्मे, 'चः'
समुखये, कथं नामासौ भवस्विति १, इत्रया हि श्रुत्पिपा-

### आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. २९.

साभ्यां पीडितस्य चक्षुभ्यांमपद्यतः कथिमवासौ स्यादिति ? तथा संयमार्थाय कथं नामासौ पालियतुं शक्यतामिति ?, आकुलितस्य दि ताभ्यां सचिताद्वारे तिव्रधात एव स्यात् , तथा 'पाणवत्तियाप'ति पाणप्रस्ययं जीवितनिमित्तम् , अविधाना द्यारं पाणवत्तियाप'ति पाणप्रस्ययं जीवितनिमित्तम् , अविधाना द्यारमनोऽपि पाणोपक्रमणे दिसा स्याद् , अत पवोक्तम्— "मावियजिणवयणाणं ममत्तरिद्याण निष्य हु विसेसो । अप्पाणंमि परंमि य तो वज्जे पीडमुभओऽवि" ॥१॥ वष्ठं पुनिरदं कारणम्-यदुत धर्मिवन्तायं च, भक्तपानं गवेषये-दिति सर्वत्रानुवर्तते, अत्र च धर्मचिन्ता-धर्मध्यानचिन्ता मृतधर्मचिन्ता वा, इयं द्युभयक्षपाऽपि तदाकुलितचेतसो न स्यात् , आर्त्तध्यानसम्भवात् .)

इति-श्री उत्तराध्ययन वचनात् ॥ यद्यपि तृतीयपौरुष्यां भक्तपानग्रहणग्रुकं तन्मगधदेशापेक्षया ज्ञातन्यं गीतार्थाः स्वेत्रकालाद्यपेक्षयान्यत्रापि पवर्तते तत्र न दोषः ॥ मृत्र-आहारं गिन्हिज्जा, उग्गम उप्पायणेक्षणामुद्धं । आदाय सबभंडं, जावदं जोयणं गच्छे ॥७०॥ अथ भोजनविधिमाह यतः-श्रीदश्रवैकालिकपंचमिपण्डेषणाध्ययने— "सिआ अ गोयरग्गअो, इच्छिज्जा परिश्चतुअं (श्रुंजिडं) । कुटुगं भित्तिमृत्रं वा, पिहलेहित्ताण फासुअं ॥८२॥ अणुत्रवित्त मेहावी, पिहन्छकंमि संबुहे । हत्थगं संपमिज्जित्ता, तत्थ श्रुंजिज्ज संजप ॥८३॥ तत्थ से श्रुंजमाणस्स, अठिअं कंटओ सिआ । त्राक्रहसकरं वापि, अन्नं वावि तहाविहं ॥८४॥

#### ३० श्रीसामाचारी समाधितं-श्रीसप्तपदी दासम्.

तं उक्खिवित्तु न निक्खिवे, आसएण न छड्डए । इत्थेण तं गहेऊण, एगंतमवक्रमे ॥८५॥

एगंतमवक्कमित्ता, अचित्तं पडिलेहिआ । जयं परिठविज्ञा, परिठप्प पडिक्कमे ॥८६॥ "

(बुल्ल:-प्रवासपानग्रहणविधिमभिधाय भोजनविधिमाह-'सिआअ' ति सुत्रं, 'स्यात' कदाचिद 'गोचराग्रगतो' ग्रामान्तरं भिक्षां प्रविष्ट इच्छेत्परिभोक्तं पानादि पिपासाचभिभृतः सन्, तत्र साध्यसत्यभावे 'कोष्ठकं' शुन्यचट्टमठादि 'भित्तिमूलं बा' कुढ्यैकदेशादि, प्रस्युपेश्य चक्षुषा प्रमृत्य च रजोहरणेन 'प्राप्तकं' बीजादिरहितं चेति सूत्रार्थः ॥८२॥ तत्र 'अणुन्नवि' सि सुत्रं, 'अनुकाप्य' सागारिकपरिहारतो विश्रमणव्याजेन तत्स्वामिनमयग्रहं 'मेथाबी' साधुः 'प्रतिच्छन्ने' तत्र कोष्ठकादौ 'संवृत्त' उपयुक्तः सन् साधुरीर्यामितिक्रमणं कृत्वा तद्नु 'हस्तकं' मखबिखकारूपम्, आदयेति वाक्यदोषः, संप्रमुल्य विधिना तेन कार्य तत्र भुक्षीत 'संयतो' रागद्वेषावपाकृत्येति सत्रार्थः ॥८३॥'तस्य'ति सत्रं, 'तत्र' कोष्ठकादौ 'से' तस्य सा-धोर्भुञ्जानस्य अस्यि कण्टको वा स्यात्, क्यंचिव्यृहिणां प्रमा-द्वोषात . कारणगृहीते पद्गल प्वत्यन्ये, तृणकाष्ठशर्करादि चापि स्यात . उचितभोजनेऽन्यद्वापि तथाविधं वदरकर्कटका-दीति सुत्रार्थ: ॥८४॥ 'तं उक्खिवितु' इति सुत्रं, 'तद' अस्थ्या-दि उत्थित्य हस्तेन यत्र कचिन्न निक्षिपेत् , तथा 'आस्येन' मुखेन नोज्झेतु, मा भूक्रिराधनेति, अपितु हस्तेन गृहीत्वा 'तद' अस्थ्यादि प्रकान्तमवकामे दिति सुत्रार्थः ॥८५॥ 'पगत'ति स्रत्रं, पकान्तमबक्रम्य अचित्तं प्रत्युपेक्ष्य यतं प्रतिष्ठापयेत्, प्रतिद्वाप्य प्रतिकामेदिति, भाषार्थः पूर्वषदेवेति सुत्रार्थः॥८६॥)

# आचार्य श्री त्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ३१

"सिआ य भिष्खु इन्छिजा, सिज्जमागम्म भुतुञ्ज । सपिंडपायमागम्म, उंडुअं पडिलेहिआ ॥८७ ॥ विणएणं पविसित्ता. समासे ग्रहणो मुणी। इरियावहियमादाय. आगओअ पहिक्रमे ॥८८॥ आभोड़त्ताण नीसेसं, अईआरं जहक्मं। गमणागमणे चेव, भत्तपाणे व संजए ॥८९॥ उञ्जुपस्रो अणुद्धिगो, अद्धित्वत्तेण चैअसा । आलोए गुरुसगासे. जं जहा गहिअं भवे ॥९०॥ न सम्ममालोइअं हुज्जा, पुन्वि पच्छा व जं कहं। पुणो पडिकमे तस्स, बोसहो चिंतए इमं ॥९१॥ अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहण देसिआ। मुक्लसाहण हेउस्स, साहुदेहस्स धारणा ॥९२॥ णग्रकारेण पारित्ता, करित्ता जिणसंथवं । सञ्झायं पद्ववित्ताणं, वीसमेज्ज खणं सुणी ॥९३॥ बीसमंतो इमं चिते, हियमहं लाभमस्सिओ। ज़इ में अणुग्गहं कुजा, साह हुजामि तारिओ ॥९४॥ साहवो तो चिअत्तेणं, निमंतिज्ञ जहक्कमं । जड़ तत्थ केड इच्छिजा, तेहिं सद्धि तु भुजए ॥९५॥ अह कोइ न इच्छिजा, तओ भ्रंजिज एकओ। बालोए भायणे साइ, जयं अप्परिसादियं ।१६॥"

(बृत्तिः—वस्तिमधिकृत्य भोजनविधिमाइ-'सिआय'ति सुत्रं, 'स्यात्' कदाचित् तदःयकारणाभावे सति भिश्चरिच्छेत् 'श्रुट्यां' बसतिमागम्य परिभोक्तं, तत्रायं विधि:-सह पिण्डपा-तेन-विश्वसमुदानेनागम्य, बसतिमिति गम्यते, तत्र बहिरै-बोन्द्रकं-स्थानं प्रत्युपेक्ष्य विश्विना तत्रस्थः पिण्डपातं विश्वोध-येदिति सुत्रार्थ: ॥८७॥ तत ऊर्ध्व 'विणएण'ति सुत्रं, विशोध्य पिण्डं बहि: 'विनयेन' नैषेधिकी नमः क्षमाश्रमणेभ्योऽञ्जलि करणलक्षणेन प्रविष्य.बसतिमिति गम्यते, सकाशे गुरोः मुनिः, गुरुसमीप इत्यर्थः, 'ईर्यापथिकामादाय' "इच्छामि परिक्रमिउं इरियावहियाए" इत्यादि पठित्वा सुत्रं, आगतश्च गुरुसमीपं प्र-तिकामेत्-कायोत्सर्गे कुर्यादिति सुत्रार्थः ॥८८॥ 'आभोइताप'ति स्रत्रं, तत्र कायोत्सर्गे 'आभोगयित्वा' ज्ञात्या नि:शेषमितचारं 'यथाक्रमं' परिपाटचा, केत्याह-'गमनागमनयोश्चैव' गमने गच्छत आगमन आगच्छतो योऽतिचारः तथा 'भक्तपानयोख' भक्ते पाने च योऽतिचारः तं 'संयतः' साध: कायोत्सर्गस्थो हृद्दे स्थापयेदिति सुत्रार्थः ॥८९॥ विधिनोत्सारिते चैतस्मिन् 'उच्जूप्पन्न'ति सुत्रं, 'ऋजूप्रज्ञः' अकुटिलमतिः सर्वत्र 'अनु-ब्रिग्नः' श्रदादि जयात्प्रशान्तः अव्याक्षिप्तेन चेतसा, अन्य-त्रोपयोगमगच्छतेत्यर्थः, आलोचयेदगुरुसकादो, गुरोनिवेदये-दिति भावः, 'यद्' अञ्चनादि 'यथा' येन प्रकारेण इस्तदा (धाव) नादिना गृहीतं भवेदिति सत्रार्थः ॥९०॥ तदन च 'न संग्रं'ति सुन्नं, न सम्यगालोचितं भवेत सुक्षमम् अज्ञानात-अनाभोगेनाननुस्मरणाहा, पूर्व पश्चाहा यत्कृतं, पुर:कर्म पश्चा-त्कर्म वेत्यर्थः, 'पुनः' आलोचनोत्तरकालं प्रतिकामेत् 'तस्य' स्रध्मातिचारस्य 'इच्छामि पडिक्रमिउं गोअरचरिआए. इत्यादि सत्रं, पठित्वा 'व्युत्सृष्टः' कायोत्सर्गस्यश्चन्तयेदिदं-वक्ष्यमाणस्रक्षणमिति स्त्रप्रार्थः ॥९१॥ 'अहो' निणेहिं सूत्रं, 'अहो' विस्मये 'जिनैः' तीर्थकरैः 'असावद्या' अपापा 'वृत्तिः' बर्त्तना साधुनां दक्षिता देशिता वा 'मोक्षसाधनहेतोः' सम्यग्-

# आचार्य श्री आत्चंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ३३

दर्शनक्षानचारित्रसाधनस्य साधुदेहस्य 'धारगाय' संधारणार्थ-मिति सुत्रार्थः ॥९२॥ ततश्च-'णमोकारेण' ति सुत्रं, नमस्कारेण पारियत्वा 'नमो अरिहंताण' मित्यनेन, ऋत्वा जिनसंस्तवं "स्रोगस्सुरुजोअगरे" इत्यादिरूपं, ततो न यदि पूर्वं प्रस्था-पितस्ततः स्वाध्यायं प्रस्थाप्य मण्डल्युपजीवकस्तमेष कुर्यात् याबदन्य आगच्छन्ति, यः पुनस्तदन्यः क्षपकादिः सोऽपि प्रस्थाप्य विश्वास्येत 'क्षणं' स्तोककालं मुनिरिति सञ्जार्थः ॥ ९३ ॥ 'वीसमत' ति सुत्रं, विश्राम्यन्निदं चिन्तयेत परि-णतेन चेतसा.-' हितं ' कल्याणप्रापकमर्थ-बक्ष्यमाणं, किबि-शिष्टः सन् !-भावलाभेन-निर्जरादिनाऽधों ऽस्येति लामाधिकः. यदि 'मे ' मम अनुग्रहं कुर्युः साधवः प्राप्तुकपिण्डयहणेन ततः स्यामहं तारितो भवसमुद्रादिति सुत्रार्थः ॥ ९४ ॥ एवं संचिन्त्योचितवेलायामाचार्यमामन्त्रयेदः, शोभनं. नोचेद्वकव्योऽसी भगवन्! देहि केभ्योऽप्यतो यहातव्यं, ततो यदि ददाति सुन्वरम्, अथ भणति त्थमेष प्रयच्छ, अश्रान्तरे-' साहवो ' ति सूत्रं, साधूरततो गुर्वनुङ्गातः सन् ' चिम्रतेणं ' ति मनः प्रणिधानेन निमन्त्रयेत 'यथाक्रमं' ययारत्नाधिकतया, महणौचित्यापेक्षया बालादिक्रमेणेत्यन्ये. यदि तत्र 'केचन' धर्मबान्धवाः 'इच्छेयुः' अभ्युपगच्छेयुस्तः तस्तैः सार्धे भुञ्जीत उचित्तसंत्रिभागदानेनेति स्त्रनार्थः ॥९५॥

'अह कोइ'ति स्रुत्रं, अथ किश्वनेच्छेत् साधुस्ततो भुक्षीत 'पकको' रागादिरहित इति, कथं भुक्षीतेत्यक्षाह-'आहोके भाजने' मक्षिकाषपोद्दाय प्रश्लापधाने भाजन इस्पर्थः 'साधुः' प्रव्रजितः 'यतं' प्रयत्नेन् तत्रोपयुक्तः 'अपरि-द्यादं' इस्तमुखाभ्यामनुज्ञ्ञन् इति स्रुत्रार्थः ॥९६॥

तित्तगं व कडुअं व कसायं, अंबिलं व महुरं लवणं वा !

एअलद्धमन्त्य पउत्तं, महुचयं व भ्रुंजिज्ञ संजए ॥९७॥

(धृत्ति:—भोज्यमधिकृत्य विशेषमाह-'तित्तगं घ'ति स्त्रं, तित्तकं वा पलुक्षवालुङ्कादि, कटुकं वा आर्ष्रकतीमनादि, कषायं बहादि, अन्लं तकारनालादि, मधुरं क्षीरमध्वादि, लवणं वा प्रकृतिक्षारं तथाविधं शाकादि लवणोग्कटं वाऽन्यत्, पतित्तकादि 'लब्धम्' आगमोक्तेन विधिना प्राप्तम् 'अन्यार्थम्' अक्षोपाङ्गन्यायेन परमार्थतो मोक्षार्यं प्रयुक्तं तत्साध-कमितिकृत्या मधुवृतमित्र च सुञ्जीत संयतः, न वर्णाचर्यम्, अथवा मधुवृतमित्र 'णो वामाओ हणुआओ दाहिणं हणुअं संचारेक्तं ति स्वार्थः ॥९९॥)

मूल-संजोइणाई मंडलि,-दोसेहिं पंचिहं तु जो रहियं।
ग्रंजिज्ञा सुद्धमणो, सो समणो होइ नायव्यो ॥७०॥
यत:-(श्री उत्तराध्ययन २६ सामाचारी अध्ययने)—
''निग्गंथो घिइमंतो निग्गंथीवि न करिज्ञ छिहं चेव।
ढाणेहिं तु इमेहिं अणहक्कमणा य से होइ॥ १३॥

आयंके उवसम्मे तितिक्खया वंभवेरगुत्तीसुं । पाणिदयातवहेर्ज सरीरबुच्छेयणद्वाष् ॥३४॥ "

( वृत्तिः—'निर्मन्यः' यतिः धृतिमान् धर्मचरणं प्रति 'निर्मन्या' तपस्विनी साऽिष न कुर्योक्कतपानगवेषणमिति प्रक्रमः, षड्भिष्टीय स्थानेः 'तुः' पुनर्ये 'पिषः' अनन्तरं बश्यमाणेः, किमित्येश्वमत आह-'अणह्क्षमणह्'ति स्वत्रत्वाद् 'अनितक्रमणं' संयमयोगानामनुह्यद्वेनं, चश्चद्दो यस्माद्यें, यस्मात् 'से'ति तस्य निर्मन्यस्य तस्या चा निर्मन्यतायाः (स्थ्याः) 'भवति' जायते, अन्यया तद्दिकमणसम्भवात् । षद् स्थानान्येषाह-आतङ्को-ज्वरादिरोगस्तिसम्, 'उपसर्ग' मिति

## आचार्य श्री आतृचंद्रस्रि अन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. ३५

स्वजनादि: कश्चिदुपसर्गमुन्निष्क्रमणार्थं करोति, विमर्शादिहैतोवां देवादिः, ततस्तिस्मन सित, उभयत्र तन्निवारणार्थमिति गम्यते, तथा तितिक्षा सहनं तथा हेतुभूतया, क विषये इत्याह ब्रह्मचर्यगुप्तिषु, ता हि नान्यथा सोहुं शक्याः, तथा 'पाणिद्यातवहेड'ति 'प्राणिद्याहेतोः' वर्षादौ निपतत्य-प्कायादिजीवरक्षाये तपः-चतुर्थादिरूपं तद्वेतोधा, तथा शरीरस्य व्यवच्छेदः-परिहारस्तदर्थं च उचितकाले संलेख-नामनश्चनं वा छुर्वन, भक्तपानगवेषणं न द्व्यादिति सर्वन्न योष्ट्यं, कारणत्वभावना चामीषां प्राग्वत्,)

मूळ-काउण थंडिलाए, सुद्धि सिद्धंत भासियं तु पुणो । तणडगल्लउग्गहेणं, उचाराई परिठवई ॥७१॥

यतः-( श्री उत्तराध्ययने २४ अध्ययने )— "अणावायमसंस्रोष, परस्सऽणुवघाइष् ।

समे अज्झुसिरे वावि, अचिरकालकयंमि य ॥१७॥

विच्छिने दूरमोगाढे, णासने विलविज्ञए । तसपाणवीयरहिए, उचाराईणि वोसिरे ॥१९॥ ''

(वृत्तिः—स्याविशेषणपद्भानार्धे, तानि यादशे स्थ-ण्डिले व्युत्सृजेत्तदाह अनापाते असंलोके, कस्य पुनरयमा-पातः संलोकश्चेत्याह-'परस्य' स्वपक्षादेः, गमकत्वाचाभयम्न सापेश्चरवेऽपि समासः, उपधातः-संयमात्मश्ववचनवाभात्मको विषते यत्र तदुपधातिकं न तथाऽनुपधातिकं तस्मिन्, तथा 'समे' निम्नोन्नतःवयितं 'अशुषिरे वाऽपि' तृणपणिमा-कोणें 'अचिरकालकृते च' दाहादिना स्वल्पकालनिर्वित्ति, चिरकालकृते हि पुनः संमृह्णेन्स्येव पृथ्वीकायादयः, 'विस्तीणें' क्षयन्यतोऽपि हस्तप्रमाणे 'वृरमदगाढे' जघन्यतोऽप्यधस्ता-

चतुरङ्कुलमिक्तीभृते 'नासन्ने' प्रामारामादेई रविति 'विल-वर्जिते'मृषदादिरम्धरहिते वसप्राणाश्र द्वीन्द्रियादयो बीजानि च-काल्यादीनि, सकलैकेन्द्रियोपलक्षणमेतत्, तैस्तवस्थैरा-मन्तुकैश्च रहितं-चर्जितं वसप्राणबीजरहितं तस्मिन्, स्थ-ण्डिल इति शेषः, 'उचारादीनि' उक्तरूपाणि 'ब्युग्सृजेत' परिष्ठापयेत्।)

इति श्रीउत्तराध्ययनवचनात् । अयं भावः श्रीआवश्यकतृत्तौ ।।
मूळ-उदीणाभिम्रहो होऊं, दिवसे रत्तीइ दाहिणाभिम्रहो ।
उचारं पासवणं, परिठिवज्जा जयं साहू ॥७२॥
पत्ताई पोरिसीए, तुरियाई सम्रुट्टिऊण वंदित्ता ।
दाऊण खमासगणं, पडिपुन्ना पोरिसी भणइ ॥७३॥
एवं मुणितु सच्वे दुखमासमणे दिहीइ दाऊणं ।
संदिसह निविखनामि, कुणंति स समंडिनक्खेवं ॥९४॥
वंदित्तु विणयपुच्वं, पच्छा साहू कुणंति सज्झायं ।
बाहिरमंगपविट्टं, कालियमुकालियं वावि ॥७५॥
यतः (श्री उत्तराध्ययन २६ अध्ययने )—
"चज्र्योए पोरिसीए, निविखवित्ताण भायणं ।
सज्झायं च तओ कुज्जा, सबभावविभावणं ॥३६॥ "

(बृक्तिः- इत्थं बिहृत्योपाश्रयं चागत्य गुर्वाहोचनादि-पुरस्सरं भोजनादि कृत्या यत्कुर्यातदाह-चतुर्थ्यो पौरुष्यां निक्षित्य प्रत्युपेक्षणापूर्वकं बध्वा भाजनं पात्रं स्वाध्यायं ततः कुर्यात् सर्वभावा-जीवादयस्तेषां विभावनं (कं)-प्रकाशकं सर्वभावविभावकं, पठ्यते ुच 'सन्बदुक्खिवमोक्खणं 'ति प्राग्वतः,)

# **भाचार्य श्री त्रातृचंद्रस्**रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ३७

# इति उत्तराध्ययनवचनात्-

मुल्ल-घडिया दुमेण ऊषा, पोरिसी जाव ताव काऊणं, सञ्झायं गुरुपुरओ, पडिकभित्ता तओ पच्छा ।७६॥

कालं पडिकमित्ता, कुणंति पडिलेहणं विणयपुन्वं । पुत्तिदेहं पाउं,-च्छणं च तत्तो रयहरणं ॥७७॥

दुत्थोभवंदणेहिं, अंगप्पडिलेहणं तओ कुज्ञा । तत्थ य तणुसंबद्धं, पडिलेहित्ता पमर्ज्जति ॥७८॥

दाउं च खमासमणं, बसही पमज्जणं तओ कुज्जा । पाभाइएण विहिणा, जावय इरियापडिक्कमणं ॥७९॥

यत: ( श्री उत्तराध्ययन २६ अध्ययने )-

''पोरिसीए चउन्थाए, वंदित्ताण तओ गुरुं। पटिकमित्ता कालस्स. सिज्जं त पटिलेहए।।३०॥"

( वृत्ति:—पौरुष्याः प्रक्रमाचतुर्थ्याः चतुर्भागे-चतुर्थाद्ये द्येष इति गम्यते, बन्दित्वा 'ततः' इति स्वाध्यायकरणा-दनन्तरं 'गुरुम्' आचार्यादि प्रतिक्रम्य कालस्य 'द्याय्यां' दस्ति 'तुः' पूरणे प्रतिलेखयेत् , )

इति उत्तराध्ययने ।।

मूल-दाऊण छोभवंदण,-भेगंति भणंति इच्छ कारेणं । संदिसह मज्झ भयवं, पिंडलेहणयं पिंडलेहेमि ॥८०॥ ठत्रणायरियस्स तओ, विषयं कुज्जा पमज्जणा पमुहं । पंचनमुकारेणं, ठावित्ता तं जहाद्वाणे ॥८१॥

गुरुणो ठवणायरिङ, गुरूष सेसाण जाण सो चैव । तस्स य पुरुओ सच्बं, पमाणमाहू अणुट्ठाणं ॥८२॥

यतः-"ग्ररु विरहंमिय ठवणा, गुरुवएसो व दंसणत्थं च । जिणविरहंमिय जिणविंब, सेवणा मंतर्ण सहलं ॥१॥" इति पूर्वाचार्यवचनातु ॥

मूल-तत्तो पञ्चल्लाणं, करंति दाऊण बारसावनं । वंदणयं सुयभणियं, नाऊण विहिं सुगुरुवयणा ॥८३॥

यतः-(श्री समनायांगे)--''दुवालसावते कितिकम्मे प. तं-दुओणयं जहाजायं, कितिकम्मं बारसावयं । चउसिरं तिसुत्तं च, दुपवेसं एगनिक्सप्रणं ॥१॥''

(वृत्ति:—'दुबाळसाव से किई कम्मे'ति ह्राद्शावर्ते कृतिकर्म-बन्दनकं प्रज्ञसं, ह्राद्शावर्त्ततामेवास्यानुषदम् शेषांभ्र
तद्धमानिभिधित्सुः रूपकमाह-'दुओणये' त्यादि, अवनितरवनतम्-उत्तमाङ्गप्रधानंप्रणमनिमत्यर्थः, ह्रे अवनते यस्मिस्तदृह्यद्यनतं, तप्रकं यदा प्रथममेव 'इच्छामि खमासमणो बंदिउं
जावणिज्ञाप निसीहियाप'ि अभिधायाव्यहानुज्ञापनायावनमतीति, द्वितीयं पुनर्यदाऽवग्रहानुज्ञापनायवावनमतीति, वया
जातं-ध्रमणत्यभवन्यस्य प्रथमित्रव्य योगिनिष्क्रमणळक्षणं
च, तत्र रजोदर्यमुज्ञविज्ञावोळपट्टमात्रया भ्रमणो जातो
रचितकरपुटस्तु योग्या निर्मत प्रवंभत एव वन्दते तद्व्यतिरेकाद्वा यथाजातं भण्यते, कृतिकर्म-वन्दनकं 'वारसावयं'ति
हादशावन्तः-सुत्राभिधानगर्भाः कायव्यापारविशेषाः यतिजनप्रसिद्धा यर्दिमस्तद् ह्रादशावन्ते, तथा 'चउसिरं'ति
वत्वारि शिरांसि यर्दिमस्तज्ञनुःश्चिरः प्रथमप्रविष्टस्य क्षामणा-

### आचार्य श्रो भ्रातृचंद्रसृरि प्रन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. ३९

काले शिष्याचार्यशिरोद्वयं पुनरिप निष्कस्य प्रविष्टस्य द्वय-मेवेति भावना, तथा 'तिगुत्तं ति तिस्मिर्भुतिभिर्गुतः पाटा-न्तरेऽपि तिस्मिः (श्रद्धाभिः) गुप्तिभिरेवेति, तथा 'दुपवेसं' ति द्वौ प्रवेशो यस्मिस्तद् द्विप्रवेशं तत्र प्रथमोऽवश्रहमनु-श्वाप्य प्रविशतो द्वितीयः पुनर्निर्गत्य प्रविश्वत इति, 'प्गनि-क्समणं'ति एकं निष्क्रभणमवश्रहादाष्ठरियक्या निर्गच्छतः, द्वितीयवेलायां द्वावश्रहान्न निर्गच्छति, पादपतित एत्र सूत्रं समापयनीति,)

-इति सुत्रवचनात् ॥ ''द्वितीयं वंदनकं पादपतित एव समापयति" इति श्री अभयदेवसुरिकृतवृत्तिवचनात् !! आवश्य-कनिर्युक्ती-''बाहिरखिर्त्तमि द्विज्ञ.अणुक्नवित्ताण जग्गहं पविसे । उगाई खित्तं पविसे, जाव सिरेणं फुसे पाए ॥१॥'' इति वचनात मूल-उम्महमज्झे चिट्टइ, गुरुपयफासं विणावि उद्धिटिउ । जो साह तस्स भवे, गुरूण आसायणा नुगं ॥८४॥ भणियाय विध्यरेणं. तित्तीसं ताऊ मूल सुत्तंमि । दस पुत्र सुय क्वंधे, अन्नध्यवि नाम पत्तेणं ॥८५॥ आवस्सयंमि तइए. अज्झयणंमिय एणो तहा चरुथ्यंमि । अंगंमि तइय तुरिए, दसमंमि समासओ एवं ॥८६॥ पवयणभणियकमेणं, पायपडिएण बीयदंदणयं। दायद्वं जं अन्नं, गच्छायरणाइ तं नेयं ॥८७॥ डट्टिन पमज्जंतो, जग्गहबाहिंमि निक्खपंतीय । आवस्सियं भणंतो. किरियाएसं च मग्गेड ॥८८॥

कयपचक्खाण किरिज, वंदणपुट्वं तु संदिसावित्ता । उहोवगगह उवहिं, तो पडिलेहंति अवसेसं ॥८९॥ आयरिए वंदित्ता, वसहिं पवेएमि थंडिलाई पुणो । पिंडलेहेम्रुत्ति भणित्ता, कुणिति सोहिं तु वसहीए।।९०।। बारस बारस चिय. पासवण्डारकालगहणाणं । तीसं च मंडलाई. पहिलेहिता पमन्जंति ॥९१॥

(यचपि उपदेशमालादौ त्रिणि कालमंडलानि कर्षिः तानि संति तथापि प्रत्यक्षतः सर्वेपि साधवः पद् मंडलानि कर्षाणा दृश्यंते पादोषिकार्द्धरात्रिकयोर्दक्षिणोत्तरयोर्वेरात्रिक प्राभातिकयो: पूर्वपश्चिमयोमेडलिकिविकरणात् । अथ पट लिखितानि संति )

॥ आ कोंदानी बिना लखेल पानानी कांबीमां के॥ मूल-इरियं पडिकमित्ता, पुन्वुत्तविहीइ कालवेलाए। वंदित् चेइयाईं, गोयरचरियाइ (झो) घोसंति ॥९२॥ आयरिय उवज्झाए, साह वंदंति छोभवंदणया । एगखमासणेणं, तो देवसियं पडिक्रमणं ॥९३॥ ठावेमित्ति भणित्ता. उद्धितया हत्थगहियस्यहरणा । पहिवन्नजोगग्रहा. भणंति उस्सगगग्रताई ॥९४॥

॥ अथ प्रतिक्रमणविधिः—सूत्र-निर्धेक्ति-प्रमुखग्रंथ-भाषितो लिख्यते. श्रीउत्तराध्ययने-२६ अध्य० " पासवणुचारभूमिं च, पडिलेहिज जयं जई । काउस्सम्मं तओ कुज्जा, सन्वदुक्खविमुक्खणं ॥३८॥

## आचार्य श्री श्रातृचंद्रसृति ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ४१

देसियं च अईयारं, चिंतिज्ञ अणुपुन्नसो ।
नाणंमि दंसणे चेव, चिरत्तंमि तहेव य ॥३९॥
पारियकाउस्सम्मो, वंदित्ता य तओ गुरुं ।
देसियं तु अईयारं, आलोइज्ञ जहक्षमं ॥४०॥
पिंडकिमित्ताण निस्सल्लो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
काउस्सम्मं तओ कुज्ञा, सन्वदुक्खविम्रुक्खणं ॥४१॥
पारिय काउस्सम्मो, वंदित्ताण तओ गुरुं ।
युइ मंगलं काउणं, कालं संपिडलेह्ण ॥४२॥"

( वृत्तिः--'पासवणुचारभूमि च'ति, भूमिशब्दस्य प्रत्ये-कमभिसम्बन्धात् प्रश्रवणभूमि उचारभूमि च प्रत्येकं द्वादशः स्यण्डिलारिमकां च शब्दान्कालभूमि च स्थण्डिलच्यारिमकां प्रतिलेखयेत 'जयं'ति 'यतम्' आरमभाद्रपरतं यथा भवति यतमानो वा यतिः, एवं च सप्तविज्ञातिस्यण्डिलप्रत्युपेक्षणाः नन्तरमावित्योऽस्तमेति कायोत्मर्गं 'ततः'प्रथवणाविभमिप्रति-लेखनादनन्तरं कुर्यात्सर्वदःखिमोक्षणं, तथात्वं चास्य कर्मा-पचयहेतस्वात ॥२८॥ उक्तं हि-"काउस्सरगे जह सदियस्स भन्जंति अंगमंगाई। तह भिदंति सविहिआ अट्टविहं कम्म-संघायं ॥१॥" ति तत्र च स्थितो यत्क्रयात्तदाह-'देसियं'ति प्राकृतत्वाद्वकारस्य लोपे दैवसिकं 'चः' पूरणे 'अतिचारम्' अतिक्रमं 'चिन्तयेत्' ध्यायेत् 'अणुष्ट्यसो'त्ति आनुपूर्ट्या-क्रमेण, प्रभातमुखवस्त्रिकाप्रत्यपेक्षणातो यावदयमेव कायो-रसर्गः, कि विषयमतीचारं चिन्तयेदित्याह-'ज्ञाने' ज्ञानविषय-मेवं दर्शने चैव चारित्र तथैव च ॥२९॥ पारितः-समापितः काथोत्सर्गो येन स तथा चन्दित्वा प्रस्तावाद द्वादशावत-बन्दनेन 'तत' इत्यतीचारचिन्तनादनन्तरं 'गुरुम्' आचार्या-

दि 'देसियं'ति प्राग्यद् देवसिकं 'तुः' पूरणेऽतीचारम् 'आलोचयेत्' प्रकाशयेद् गुरूणामेव 'यथाकमम्' आलोचनसेवनान्यतरानुलोम्यकमानतिकमेण ॥४०॥ 'प्रतिकम्य' प्रतीपमपराधस्थानेभ्यो निवृत्य, प्रतिकमणं च मनसा भावशुद्धितो
याचा तत्स्वपाठतः कायेनोत्तमाङ्गनमनादितः, 'निःशाल्यः'
मायादिशल्यरहितः, सृचकत्वात्स्वनस्य वश्दनकपूर्वे क्षमियन्वा च वश्दित्या द्वादशावर्त्तवन्दनेन 'ततः' इन्युक्तिष्ठेरनन्तरं 'गुरुम्' आचार्यादिकं 'कायोत्सर्गं' चारित्रदर्शनश्रुतक्षानशुद्धिनिम्नव्युत्सर्गत्रयलक्षणं, जातावेकषचनं, 'ततः' गुरुचन्दनादनन्तरं कुर्वात्सर्वदु:खिम्मोक्षणम् ॥४१॥ 'पारिये'
त्यादि पृषांद्वे व्याख्यातमेव, स्तुति मङ्गलं च सिद्धस्तपक्रपं
कृत्वा पाठान्तरं चा-'सिद्धाणं संयवं किचे'ति सुगमं, 'कालम्'
आगममतोतं 'संपहिलेहप'ति संप्रत्युपेक्षते, कोऽर्थः !—
प्रतिजागितं, उपलक्षणत्वाद् गृह्वति च, पतद्गतश्र विधिरागमादवसेयः ॥४२॥)

हत्तावयमेवार्थः ॥ पुनः श्रीभद्रवाहुस्वामिकृतावश्यक-निर्युक्ती पंचमाध्ययने-

''ते पुण स सूरिएचिय, पासवणुचारकालभूमीउ।
पेहिता अत्थमए, वंतुस्सग्गं सएठाणे ॥?॥
जा देवसियं दुगुणं, चिंतेइ गुरू अहिंडउचिट्टं।
बहुवा बारा इयरे, एगग्रुणंता विचितंति ॥२॥
पवइयाणवचिट्टं, नाऊण गुरूबहुं बहु विहीयं।
कालेण तदुचिएणं, पारेइ यथोवचिट्टोवि ॥३॥
नम्रुकारचउवीसग,-किइकम्मालोवणं पडिकमणं।
किइकम्मं दुरालोइय,-दुप्पडिकंतेय उस्सग्गो॥४॥

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ४३

एस चरितुस्सगो, वंदणसुद्धीय तइयउ होइ । सुयनाणस्स चउत्थो, सिद्धाण थुइ य किइकम्मं ॥५॥

सुवनाणस्य चंडत्या, तसद्धाण युइ य तिक्कम्म तर्य सुकयं आणत्तिं पिच, लोए काउण सुकयकिङ्कम्मा ।

वड्ढंति तिया थुइ च, गुरुथुइ गहणे कए तिक्ति ॥६॥" इति आवश्यकबृहदृत्वचौ आवश्यकचूर्णौ च विस्तरतीयमेवार्थः॥ अय श्रीहरिभद्रसूरिकृत पंचवस्तुकग्रंये विस्तरेण विधिः-

(भ्री उत्तराध्ययने आवश्यकित्युँकौ च कालमंडलानां चिकमिति संख्या नास्ति अत्र वर्तते प्ररूपणाकरणयोरंतरं-दृष्ट्वा विचारणा) (आ बीना लखेल पानानी कांबीमां छे) गाथा-एमेव य पासवणे, वारस चउवीसयं तु पेहिना।

कालस्स य तिन्नि भवे, अह सुरो अत्यसुवयाई १४४२॥ (वृत्तिः-एकमेब च 'प्रश्नवण' इति प्रश्नवणविषया द्वादश, इत्यं चतुर्विशक्तिं तु प्रत्युपेक्ष्य भुवां इति मन्यते, कालस्य च तिस्रो भवन्ति प्रत्युपेक्षणीयाः, अधात्रान्तरे सूर्यः अस्त-मप्यातीति गार्थायः ॥४२॥ )

गाथा-इत्थेव पत्थवंमी, गीओ गच्छंमि घोसणं कुणइ। सज्झायादवचताण, जाणणद्रा सुसाहणं २४४३।

(बृत्तिः अत्रैष्ठ प्रस्ताचे 'गीत' इति दीतार्थः गण्छे घोषणां करोति स्वाध्यायाषुवयुक्तानां सतां झापनार्थे सुसा-ध्नामिति. गाथार्थः ॥४३॥)

कथमित्याह-

गाथा-कालो गोअरचरिअं थंडिछा बस्थपत्तपडिलेहा । संभरउ सो साहू जस्स व जं किंचि णाउन्तं ॥४४४॥ थंडिछत्तिदारं गयं ॥

( वृत्तिः—कालो गोचरचर्या स्थणिडलानि वश्चपात्रप्रस्युः पेक्षणा, सर्वाण्युक्तस्डरूपाणि संस्मरतु स साधुः, यस्य वा यत्किश्चिदनपयुक्तं पुनः कालोऽत्येतीति गाथार्थः ॥४४॥ )

सम्बन्धमभिधाय आवश्यकविधिमाहगाथा-जइ पुण निवाधाओ आवासं तो करिति सब्वेऽवि ।
सब्हाइ कहण वाधाययाए पच्छा ग्ररू टंति ॥४४५॥

(बृत्तिः—अत्रान्तरे यदि पुन: 'निव्यधातः' प्रकारत-क्रियाविष्नाक्षावः 'आवश्यकं' प्रतिक्रमणं तत: कुर्वन्ति सर्वेऽपि सद्द गुरुणा, 'श्रावकादिकथनव्याधातत्या' श्रावकविष-धर्मपदार्थकयनविद्यभाषेन पश्चाद् गुरवस्तिष्ठन्ति आवश्यक इति गाथार्थ: ॥४५॥)

गाथा-सेसा उ जहासत्ति आपुच्छिताण ठंति मट्टाणे । स्तरयसरणहेर्जं आयरिज ठिजंमि देवसिजं॥४४६॥

(वृक्तिः— दोपास्तु साधवः 'यथाद्याक्त्या' यथासामध्येनापृच्छ्य प्रश्नाहैत्वाद् गुइमिति गम्यते तिष्ठन्ति स्वस्थाने
यथारनाधिकतया, कायोत्समेंगेगेति भाषः, किमर्थमित्याह'स्त्र्वार्थस्मरणहेतो'रिति स्त्र्वार्थानुस्मरणाय, आचार्थे स्थिते
व्याक्षेपोत्तरकालं कायोत्समेंग 'देवसिक'-मिति दिवसेन
निष्पत्रमतिचारं चिन्तयन्तीति गार्थार्थः ॥४६॥ उत्सर्गापचादमाह-)

गाथा-जो हुज्जउ असमस्यो वालो बुड्हो व रोगिओ वावि सो आव्स्सयजुत्तो अच्छिज्ञा णिज्ञरापेही ॥४४७॥

(वृत्तिः —यो भवेदसमर्थः –अज्ञको वालो वृद्धो वा रोजितो वापि सोऽप्यावश्यकगुकः सन् यथाज्ञक्येव तिष्ठेत निर्जरापेक्षी तेत्रवेति गाथार्थः ॥४९॥)

गाथा-एत्थ उ कयसामइया पुट्यं ग्रुरुणो अ तयवसाणंमि । अइआरं चिंतंती तेणेव समं भणंत्तऽण्णे ॥४४८॥

प्रविचार्यैः क्रत्रापि कायोत्सर्गाधिकारेपि बंदनमुक्तं वर्तते तदत्र नास्ति तेन वंदनकत्रयमत्र प्रमाणिकृतं ॥ आ कांबीमां हेरे.

(वृत्ति:--'अत्र पुनः' आवश्यकाधिकारे अयं विधिः यदत-कृतसामायिकाः पूर्व-कायोत्सर्गावस्थानकाले. 'तदवसाने' सामायिकोचारणावसाने, अतिचारं चिन्तयन्ति दैविसिकं तेनैव गुरुणा समं-सार्द्ध, सामायिकमपि उच्चारय-न्तीति भणित अन्ये आचार्यदेशीया इति गाथार्थः ॥४८॥ ते चैवं भणस्तीत्याह-)

गाथा-आयरिओ सामाइयं कड्ढइ जाए तहद्रिया तैऽवि। ताहे अणुपेहंती गुरुणा सह पर्न्छा देवसिञ्ज ॥४४९॥

( वृत्ति:--आचार्यः सामायिकमाकर्षति-पठति उज्जानय-तीत्यर्थः यदा 'तथास्थिताः' कायोत्सर्गस्थिता एव तेऽपि साधवः तदा 'अनुप्रेक्षन्ते' चिन्तयन्ति सामायिकमेव गुरुणा सह, पश्चाहैयसिकं चिन्तयन्तीति गाथार्थः ॥४९॥)

गाथा-जा देवसिअं दुगुणं चितेइ गुरू अहिंडिओ चिट्टं ।

बहुवावारा इअरे एगगुणं ताव चितिति ॥३५०॥

दृष्टिप्रतिलेखना प्रतिलेखना उच्यते अपरं भूपमार्जना इति बंदनके बारद्वयं सा कर्तव्याकायप्रमार्जनावत् । आ कांबीमां हे.

(वृत्तिः—यावद् दैवसिकीं द्विगुणां चिन्तयति गुरुर-हिण्डित इतिकृत्वा चेष्टां, बहुव्यापारा 'इतरे' सामान्यसाधवः एकगुणां ताविचन्तयन्तीति गाथार्थः ॥५०॥ गाथा-महणंतगपडिलेहणमाईअं तत्थ जे अईआरा । कंटकवग्गुवमाए धरंति ते णवरि चित्तंमि ॥४५१॥

(वृत्ति:— मुखयस्त्रिकाप्रत्युपेक्षणायां चेष्टां 'तत्र' चेष्टायां येऽतिचारा: कण्टकमार्गोपमयोपयुक्तस्यापि जाता धारयन्ति तान नवरं चेतसोति गाथार्थ: ॥ ५१ ॥ किंबिशिष्टाः सन्त इत्याह-)

गाथा-संदेग समावण्णा विसुद्धचित्ता चरित्तपरिणामा । चारित्तसोहणट्टा पच्छावि कुर्णति ते एअं ॥४५२॥

(वृत्ति:—'संवेगसमापका' मोक्षसुखाभिळावमेबातुगताः 'विशुद्धचित्ता' रागादिरहितचित्ताः 'चारित्रपरिणामादि'ति चारित्रपरिणामात् कारणात् 'चारित्रशोधनार्थे' चारित्रनिम्मेळीकरणाय 'पश्चातु' दोषचित्तधारणानन्तरं कुर्वन्ति 'ते' साधवः पतद्-वक्षयमाणमिति गाथार्थः ॥५२॥)

गाथा-नम्रुकार चडवीसग कितिकम्माऽऽछोअणं पडिकमणं । किइकम्म दुराछोइअ दुपडिक्कंते य उस्सग्गा ॥४५३॥ ( सुअगाहा )

( बृत्तिः— नमस्कारग्रहणात् 'नमोऽरहंताणं'ति भणंति, चतुर्षिद्यातिग्रहणाङ्कोकस्योघोतकरं पठन्ति, कृतिकर्ममग्रहणा-द्वन्दनं कुर्धन्ति, आलोचनग्रहणादालोचयन्ति, प्रतिक्रमणग्र-हणास्प्रतिक्रामन्ति, तद्नुकृतिकरमं कुर्वन्ति, दुरालोचित-दुष्प्रतिक्रान्तविषयं कायोरसंगं च कुर्वन्ति, सुचा गाथा समा-सार्थः ॥५३॥ व्यासार्थे त्वाह-)

गाथा-उस्सग्गसमत्तीए नवकारेणमह ते उ पारिति । चडवीसगंति दंडं पच्छा कडढंति उवउत्ता ॥४५४॥

( वृत्तिः—अधिकृतोत्सर्गसमाप्तौ सत्यां 'नमस्कारेण' 'नमोऽरहंताण' मित्येतावता 'अय' अनन्तरं 'ते' साधव:

### आचार्य श्री धातृचंद्रसृरि प्रन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. ४७

पारयश्ति, चतुर्विशतिरिति दण्डं पश्चात् पठन्त्युपयुक्ताः सन्त इति गायार्थः ॥५४॥ )

गाथा-संडंसं पडिलेहिअ उवविसिअ तओ णवरं मुहपोत्ति । पडिलेहिउं पमज्जिय कायं सब्वेऽवि उवउत्ता ॥४५५॥

(बृत्तिः संदंशं प्रस्युपेक्ष्य प्रमुख्योपविषय ततस्तु नवरं 'मुद्दपोत्ति' मुख्यख्यिकां प्रत्युपेक्ष्य प्रमुख्य च कायं सर्वेऽप्यु-पयुक्ता: सन्त इति गाथार्थः ॥५५॥ ) ततः किमित्याद्द-गाथा-किइकम्मं वंद्णगं परेण विणएण तो परंजीति ।

सबप्पगारसुद्धं जह भणिञं वीअरागेहिं ॥४५६॥

( घृत्तिः — कृतिकम्मे वन्दनं परेण विनयेन 'ततः' तद-नन्तरं प्रयुञ्जते, कथमित्याद-सर्वप्रकारशुद्धं उपाधिशुद्धमि-त्यर्थः, यथा भणितं 'वीतरागैः' अर्दद्धिरिति गायार्थः ॥५६॥ प्रसङ्गतो वन्दनस्थानान्याद-)

गाथा-आलोयण वागरणस्स पुच्छणे पूअणंमि सङ्झाए । अवराहे अ गुरूणं विणयोमुलं च वंदणयं ॥४५७॥

(वृत्ति:—आलोचनायां तथा व्याकरणस्य प्रश्ने तथा पृज्ञायां तथा स्थाध्याये तथाऽपराधे च कचिद्गुरोर्विनयमूळं तु वन्दनमिति गाथार्थः ॥ ५७ ॥ )

गाथा-वंदित्तु तओ पच्छा अद्धावणया जहक्रमेणं तु । उभयकस्थरियर्छिमा ते आलोअंति उवजत्ता ॥४५८॥

(वृत्तिः—वन्दित्वा ततः पश्चादद्धांवनता: सन्तो यथा-क्रमेणैव उभयकरधृति छङ्गा इति, छिङ्गे-रजोहरणं, 'ते' साघवः आछोचयन्ति उपयुक्ता इति गायार्थः ॥५८॥ किं तदित्याह-) गाथा-परिचितिएऽइआरे सुहुमेऽवि भवण्णवाउ उविग्गा । अह अप्पसुद्धिहेउं विसुद्धभावा जओ भणियं ॥४५९॥

(वृत्तिः—परिचिन्तितानितचारान् 'सुक्ष्मानिप' पृथि-ज्यादिसङ्घट्टनादोन्, कथश्चिदापिततान् वादरानिप, भवाणी-वादुद्विन्नाः सन्तः अथात्मशुद्धिनिमत्तमालोचयन्तीति वर्तते विशुद्धभावाः सन्तः, यतो भणितमर्दद्धिरिति गाथार्थः ॥५९॥ किं तदित्याद्ध-)

गाथा-विणएण विणयमुर्छं गंत्णायरिअपायमुर्छमि । जाणाविज्ञ सुविहिओ जह अष्पाणं तह परंषि ॥४६०॥

(वृत्तः-विनीयतेऽनेन कर्मेति विनयः-पुनस्तद्कः रणपरिणामः तेन 'विनयमुळं' संवेगं 'गत्त्रा' प्राप्य 'आचा-र्यपादमुळे' आचार्योन्तक एव झापयेत् सुविद्दिनः-साधुर्य-थाऽऽत्मानं तथा परमि विस्मृतं समानधार्मिकमिति गाथार्थः ॥६०॥ आळोचनागुणमाह-)

गाथा-कयपाबोऽवि मणूसो आलोइअनिदिओ गुरुसगासे । होइ अइरेगलहुओ ओहरिअभरोब भारवहो॥४६१॥

(वृत्तिः-कृतपापोऽपि सन् मनुष्यः आस्टोचितनिन्दितो 'गुरो: सकादो' आचार्यान्तिक पत्र भवति अतिरेकस्रष्टुः, कम्माङ्गीकृत्य, अपद्वतभर इव भारवद्यः कश्चिदिति गाथार्थः ॥ ६१ ॥ कथमेतदेवमिति, अत्रोपपत्तिमाद्द-)

गाथा-दुष्पणिहियजोगेहिं बडझइ पार्व तु जो उ ते जोगे । सुष्पणिहिए करेई झिज्जइनं तस्स सेसंपि ।।४६२॥

( वृत्ति:--दुष्प्रणिहितयोगेः मनोबाङ्गायलक्ष्रणेर्वध्यते पापमेव, यस्तु महासस्वस्तान योगान् मनःप्रभृतीन सुप्रणिहितान करोति श्लीयते 'तत्' दुष्पणिहितयोगोपात्तं पापं 'तस्य' सुप्रणिहितयोगकर्तुः, द्येषमि भवान्तरोपात्तं श्लीयते प्रणिकानप्रकर्पोदिति गायार्थः ।। इसा )

## आचार्य श्री ब्रातृचंद्रसुरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ४९

गाथा-जो जत्तो उप्पज्जइ वाही सो विज्ञिएण तेणेव । खयमेइ कम्मवाहीचि नवरमेवं सुणेअव्वं ॥४६३॥

(वृत्ति: — यो यत उत्पचते व्याधिस्तैलादेः स वर्ष्णितेन तेनेय क्षयमेति, कर्म्मव्याधिरपि नवरमेवं मन्तव्यो निदानवर्जनेनेति गाथार्थः ॥६३॥ ततश्च-)

गाथा-उप्पण्णा उप्पण्णा माया अणुमग्गओ निहंतहा । आलोअणनिद्णगरहणाहिं न पुणो अ वीअं च ॥४६४॥

(वृत्ति:—उत्पन्नोत्पन्ना माया अकुरालकमोदियेन अनु-मार्गतो निष्टन्तव्या स्वकुरालवीर्येण, कथमित्याह-आलोचन-निन्दागर्हाभि:, न पुनश्च ब्रितीय वारं तदेव कुर्यादिति गाथार्थ: ॥६४॥)

गाथा-तस्स य पायच्छित्तं जं मग्गविक गुरू उवइसंति । तं तह अणुचरिअव्वं अणवत्थपसंगभीएणं ॥४६५॥

(वृत्ति: - 'तस्य च' आसेषितस्य प्रायधित्तं यन्मार्गिविद्वांसो गुरव उपदिशन्ति स्वानुसारतः तत्त्वा अनुचरि-तव्यमनवस्थाप्रसङ्गभीतेन, प्रसङ्गध 'पक्षेण क्यमकक्क' मित्या-दिना प्रकारेणेति गाथार्थ: ॥६५॥ प्रकृतमाह-)

गाथा-आलोइजण दोसे गुरुणो पडिवन्नपायछित्ताओ । सामाइअपुवर्भ ते कहिंदति तओ पडिकमणे ॥४६६॥

( वृत्तिः---आळोच्य दोषान गुरो: नतः प्रतिपन्नप्राय-श्चित्ता पष, किमित्याह-सामायिकपूर्वकं 'ते' साधवः 'पठन्ति' अनुस्मरन्ति प्रतिक्रमणमिति गाथार्थः ॥६६॥ )

गाथा-तं पुण पयंपएणं सुत्तत्थेहिं च घणिअम्रुवर्डता । दंसमसगाइ काए अगणिन्ता धिइबळसमेआ ॥।४६७॥

(वृत्तः-तत्पुनः-प्रतिक्षमणं पदं पदेन पटन्ति स्त्रा-र्थयोश्च तत्प्रतिबद्धयोरत्यन्तमुण्युक्तः भाषप्रणिधानेन दंश-मशकादीन् काये लगतोऽप्यगणयन्तः सन्तो धृतिबल्लसमेता इति गायार्थः ॥६९॥)

गाथा-परिकड्ढिऊण पच्छा किइकम्मं काउ नवरि खामंति । आयरिआई सब्वे भावेण सुए तहा भणिञ्रं ॥४६८॥

( वृत्ति:—पर्याकृष्य प्रतिक्रमणं पश्चात् कृतिकर्ममे बन्दनं कृत्वा नवरं 'क्षमयन्ति' मर्पयन्ति, कान् ? इत्याह-आचार्या-दीन, गुणवन्तः सर्वे साधवः 'भावेन' सम्यक् परिणत्या, श्रुते तथा भणितमेतदिति गाथार्थः ॥६८॥ )

गाथा--आयरिअ उवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे अ। जे में केंद्र कसाय। सब्वे तिविहेण खामेमि । ४६९॥

(वृत्ति:--आचार्यापाध्याये शिष्ये समानधार्मिके कुले गणे च तत्परिणामवशात् ये मम केचन कषाया आसन् सर्वे।स्निविधेन क्षमयामि तानाचार्योदीनिति गायार्थः ॥६९॥)

गाथा-सबस्स समणसंघस्स भगवओ अंजिल सिरं काउं। सन्वं खमावडता लमामि सबस्स अदयंपि ॥४७०॥

(वृत्तिः—सर्वस्य श्रमणसङ्घस्य भगवतः सामान्यरूपस्य अञ्जिल्लि सिरसिकृत्वा सर्वे श्रमयित्वा श्लमे सर्वस्य सङ्घस्या-हमपीति गाथार्थः ॥७०॥ तथा—)

गाथा-सबस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो । सन्वं खमावहत्ता खमामि सबस्स अहयंपि ॥४७१॥ (बृत्तिः-सर्वस्य जीवरादोर्महासामान्यरूपस्य भावतः'

### आचार्य श्री ञ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ५१

प्रणिधानेन धर्म्म-निहितनिज्ञित्तः सन् सर्वे क्षमयित्वा क्षमे सर्वेजीवरादोरहमपीति गाथार्थः ॥७१॥)

गाथा-एवंविहपरिणामा भावेणं तत्थ नवरमायरियं । खामंति सबसाह जइ जिडो अन्नहा जेट्टं ॥४७२॥

( वृत्तिः — एवंविधपरिणामाः सन्तः 'भावेन' परमार्थेन तत्र नवरमाचार्ये प्रथमं क्षमयन्ति सर्वे साधवः यदि ज्येष्ठो-ऽसौ पर्यायेण, अन्यथा' ज्येष्ठे असति ज्येष्ठमसाविष क्षम-यति, जिभाषेत्यन्ये, शिष्यकादिश्रद्धाभङ्गनिवारणार्थे कदा-चिदासार्यमेवेति गाथार्थः ॥९२॥)

गाथा-आयरिय उवज्झाए काऊणं सेसगाण कायव्वं । उप्परिवाडीकरणे दोसा सम्मं तहाऽकरणे प्र४०३॥

(वृत्ति:—आचार्योपाध्याययोः कृत्वा क्षमणमिति गम्यते, श्रेषाणां साधृनां यथारत्नाधिकतया कत्तेव्यं, उत्परिपादी-करणे, विपययकरण इत्यर्थः, 'दोषाः' आज्ञादयः सम्यक् तथा अकरणे विकलकरणे च दोषा इति गाथार्थः ॥७३॥)

गाथा-जा दुचरिमोत्ति ता होइ खामणं तीरिए पडिकमणे। आइण्णं पुण तिण्हं गुरुस्स दोण्हं च देवसिए ॥४७४॥

(वृत्ति:—यावत् 'ब्रिचरम' इति ब्रितीयश्च स चरमश्च क्षमणापेक्षया, पतावतो भवति क्षमणं, 'तीरिते प्रतिक्रमणे' पठिते प्रतिक्रमणे इत्यर्थः आचरितं पुनस्रयाणां गुरोर्द्वयोश्च शेषयोर्देविसक इति गार्थाथः॥७४॥ आचरितकल्पप्रवृत्तिमाह-)

गाथा-धिइसंवयणाईणं मेराहाणि च जाणिउं थेरा । सेहअगीअत्थाणं ठवणा आइण्णकत्पस्स ॥४७५॥

(बृत्तिः—धृतिसंहननादीनां हानि मर्यादाहानि च झात्वा 'स्थविरा' गीतार्थाः शिष्यकागीतार्थयोविपरिणाम-निवृत्त्यर्थे स्थापनां कुर्वन्तीति स्थापना आचरितकल्पस्येति गार्थाथः ॥७५॥ अहवा—)

गाथा-असदेण समाइण्णं जं कत्थइ केणई असावज्जं । न निवारिअमण्णेहि अ बहुमणुमयमेअमाइण्णं ॥४७६॥

(बृत्ति: - अश्वेत समाचरितं 'यत्' किश्चिद् कचित् द्रव्यादो केनचित् प्रमाणस्थेन असाधद्यं प्रकृत्या न निवारि-तम् अन्येश्च गीतार्थेश्चारत्थादेष, इत्यं बहुनुमतमेतदाचरितमिति गाथार्थ: ॥७६॥)

गाथा- खामित्तु तओ एवं करिति सन्वेऽवि नवरमणवज्जं । रेसिम्मि दुरालोइअ दुष्पडिकंतस्स जस्समां ॥४७८॥

(वृत्तिः—क्षमियत्वा 'ततः' तदनन्तरं 'एवम्' उक्तेन प्रकारेण कुर्वन्ति सर्वेऽपि साधवः, नवरमनवर्य-सम्यगित्यर्थः, रेखे दुरालोचितदुष्प्रतिकान्तयोः, तन्निमित्तमिति भाषः, कायोत्सर्गमिति गाथार्थः ॥७८॥ अत्रापि कायोत्सर्गकरणे प्रयोजनमाद्द — )

गाथा-जीवो पमायबहुलो तन्भावणभाविञ्रो अ संसारे । तत्थिव संभाविज्ञइ सुहुमो सो तेण उस्सग्गो ॥४७९॥

(वृत्तिः---क्रीकः प्रमादबहुलः 'तद्भावनामावित एव' प्रमादभावनाभावितस्तु संसारे, यतश्चेवमतोऽभ्यासपाटवात् 'तत्रापि' आलोचनादौ सम्भाव्यते सृक्ष्मः 'असौ' प्रमाद: ततश्च दोष इति, तेन कारणेन तद्भयाय कायोत्सर्ग इति गाथार्थ: ॥९९॥)

## भाचार्य श्री भ्रातृचंद्रस्रिर प्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ५३

गाथा-चोएइ इंदि एवं उस्सर्गामिवि स होइ अणवत्था। भण्णइ तज्जयकरणे का अणवत्था जिए तस्मि ?॥४८०॥

(वृत्ति:—चोदयित शिक्षकः-इन्त यथेवं कायोत्सर्गेऽपि सः-सुक्ष्मः प्रमादो भवति, तत्रश्च गत्रापि दोषः, तक्जयाया-परकरणं, तत्राप्येष पत्र वृत्तान्त इत्यनवस्था, पत्रशाङ्कवाह-भण्यते प्रतिवचनं-तक्जयकरणे' अधिकृतसुक्षमप्रमादजयकरणे प्रस्तुते काऽनवस्था जिते'तक्षिम्,स्वस्प्रमाद इति गायार्थः॥८०॥)

गाथा-तत्थिव अ जो तओवि हु जीअइ तेणेव ण य सया करणं। सन्वोवि साहुजोगो जंखलु तत्पचणीओति ॥४८९॥

( वृत्तिः—'तत्रापि च' इतरकायोत्सर्गे यः पृत्रोक्षयुक्त्या पिततः सुक्षमः प्रमादः 'तकोऽपि' असायपि 'जीयते' तिर-स्क्रियते यदितरेण ततुत्तरकाळभाविना कायोत्सर्गेण तत्रापि यः असावपीतरेण, स्यादेतद्, एवं सदा कायोत्सर्गकरणा-पित्तिरित्याशङ्क्रवाद न च सदा करणं, कायोत्सर्गस्येति गम्यते, कुत इत्याद-सर्वोऽपि 'साधुयोगः' सृत्रोक्तः अमणव्यापारः यस्मात्, खलुशब्दो विशेषणार्थः भावप्रधान इत्यर्थः 'तत्प्रत्यनीक' इति सक्षमप्रमादप्रत्यनीकः, अत पत्र भगवदुक्तानु पृथ्यं विद्यितानुष्ठानयन्तो विनिर्ज्ञित्य प्रमादं वीतरागा भवन्ति, इत्यं जैयताया पत्र तस्य भगवद्भः ज्ञातत्त्वा (ज्ञापितत्वा)-त्, अत्र बहु वकव्वम्, इत्यर्ल प्रसङ्गेन इति गार्थार्थः ॥८१॥)

गाथा-एस चरित्तुस्सम्मो दंसणसुद्धीए तइअओ होइ । सुअनाणस्स चउत्थो सिद्धाण थुई य किइकम्मं ॥४८२॥ ॥ सुचामाहा ॥

(वृत्तिः--पष चारित्रकाशित्सर्गः, तदा (या) दर्शन-

शुद्धिनिमित्तं तृतीयो भवति, प्रारम्भकायोत्सर्गापेक्षया तस्य तृतीयत्वम्, श्रुतज्ञानस्य चतुर्थः, प्रवमेव सिद्धेभ्यः स्तुतिश्च तद्तु 'कृतिकर्म्म' बन्दनमिति स्रचागाथासमासायः ॥८२॥ अवयवार्थमाद्य—)

गाथा-सामाइअपुद्यगं तं करिति चारित्तसोहणनिमित्तं । पिअधम्मवज्जभीरू पण्णासस्सासगपमाणं ॥४८३॥

(वृत्तिः — सामायिकपूर्वकं 'तं' प्रतिक्रमणोत्तरकालभा-विनं कायोत्सर्गे कुर्वन्ति चारित्रशोधननिमित्ते, किविशिष्टाः सन्त इत्याह-प्रियधम्मविद्यभीरयः पश्चाशदुच्य्यासप्रमाणमिति गायार्थः ॥८३॥ )

गाथा-ऊसारेऊण विहिणा सुद्धचरित्ता थयं पकड्ढिता । कड्ढिति तओ चेइअवंदणदंडं तउस्सगं ॥४८४॥

(बुन्तः—उत्सार्य 'विधिना' 'णमोऽरहंताण' मित्यभिधानलक्षणेन शुद्धचारित्राः सन्तः 'स्तवं' लोकस्योधोतकररूपं प्रकृष्य, पठित्वेत्यर्थः, 'कर्षन्ति' पठन्तीत्यर्थः, 'ततः' तदनन्तरं चैत्यवन्दनदण्डकं कर्षन्ति, ततः कायोत्सर्गं कुर्वन्तीति गायार्थः ॥८४॥ किमर्थमित्याह—)

माथा-दंसणसुद्धिनिमित्तं करेंति पणवीसमं पमाणेणं । उस्सारिकण विहिणा कडुंडति सुअत्थयं ताहे ॥४८५॥

( वृत्तिः—दर्शनशुद्धिनिमित्तं कुर्वन्ति पश्चिव्धव्युच्युं।सं प्रमाणेन, उत्सार्थ विधिना पूर्वाकेन कर्पन्ति धतस्तवं ततः 'पुक्खरवरेत्यादिलक्षणिमिति गार्थार्थः ॥८५॥ )

गाथा-सुअनाणस्सुस्सग्गं करिंति पणवीसगं पमाणेणं । सुत्तइयारविसोहणनिमित्तमह पारिउं विहिणा ॥४८६॥

### आचार्य श्रो भ्रातृचंद्रसृरि प्रन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. ५५

(वृत्तिः — श्रुतज्ञानस्य कायोत्सर्ग कुर्वन्ति पश्चविज्ञास्युः च्र्ष्ट्वासमेव प्रमाणेन सत्रातिचारविज्ञोधननिमित्तम्, 'अथ' अनन्तरं पारियत्वा विधिना पूर्वोक्तेनेति गायार्थः ॥८६॥ ) गाथा – चरणं मारो दंसणनाण अंगं तु तस्स निच्छयओ । सारम्मि अ जङ्अव्वं सुद्धी पच्छाणुपुव्वीए ॥४८७॥ ( व्याख्या – कण्टवा । किमित्याह — )

गाथा-सुद्धसयलाइआरा सिद्धाणथयं पढंति तो पच्छा । पुत्रभणिष्ण विहिणा किइकम्मं दिंति सुरुणो उ ॥४८८॥

( वृत्तिः - शुद्धसकलातिचाराः सिद्धानां सम्बन्धिनं स्तवं पठन्ति 'सिद्धाण' मित्यादिलक्षणं, ततः पश्चात् पूर्वे भणितेन विधिना 'कृतिकर्म्म' बन्दनं ददति, 'गुरवेऽपि' (गुरोस्तु) आचार्यायैवेति गाथार्थः ॥८८॥ किमर्थमित्येतदाह - )

गाथा-सुक्तयं आणत्तिपिव लोए काऊण सुक्तयिकड्कम्मा । वट्टंतिओ थुईओ सुरुथुइगहणे कए तिण्णि ॥४८९॥

(बृत्तः--सुक्रतामाक्षामित्र लोके कृत्वा कश्चिक्रिनीतः सुक्रुतकृतिकम्मासिन्नवेदयित, प्यमेतद्पि द्रष्टन्यं, तदनु काय-प्रमार्ज्ञनोत्तरकालं, वर्द्धमानाः स्तुतयो रूपतः शब्दतश्च, गुरु-स्तुतिग्रहणे कृते सति 'तिस्नः' तिस्रो भवन्तोति गायार्थः ॥८९॥ पतदेवाह--)

गाथा-युइमंगलम्म गुरुणा उचरिए सेसगा थुई विंति । चिट्ठंति तओ येवं कालं गुरुपायमूलम्मि ॥४९०॥

( वृत्तिः—स्तुतिमङ्गले 'गुरुणा' आचार्येणोचारिते सति तत: दोषाः साधव: स्तुतीः ब्रुवते, ददत्तीत्पर्थः, तिष्ठन्ति

'ततः' प्रतिकान्तानन्तरं स्ताकं कालम् , क्वेत्याह-'गुरुपादः मुले' आचार्यान्तिके इति गार्थार्थः ॥९०॥ ) इतिवचनात् ॥ मुल-आवस्सय चुण्णीए, हरिभदेहिं कयाइ वित्तीए !

पिडकमणविद्दी एसो, भिणाउ भिणाउ समासेण ॥९५॥ वंदणतियं भिणायं, इह देसिय राइयंमि पिडकमणा । पंचम अज्झयणंमिय, तुरिए चत्तारि भिणायाणि ॥९६॥

तत्रविचारणा-सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च । सुयकेवलिणा रइयं, अभिन्नदसपुविणा रइयं ॥१॥

इतिमलभारिश्रीहेमसूरीणां शिष्येण विरचितायां संब्रहिण्यां ।। श्री आचारांगे चतुर्थाध्ययने—'' नाणीवयंती अदुवावि एगे एगे वयंती अदुवावि नाणी'' इति वचनात् केवलिचतुर्देश-पूर्वविदां वचनानि समानानि तथा नंदीसुत्रे—'' तउविपरं भिन्नेसु भयणा'' इति वचनात् ॥

मूळ-एवं सुयवयणेणं, चउदशपृत्तीण केवलीणं च । भणियं सुत्तं भन्नः, तं अन्तुन्नं च अविरुद्धं ॥९७॥

( आवश्यक छघुवृत्ती यहद्वृत्ती च तथा जोर्णनिर्युक्ति-पुस्तकेपि प्रक्षेपगाथा बहुला उक्ता परःशताः अत श्यमपि ताधगेव संभाव्यते परस्परिक छत्वात्। पुनर्गीतायां वर्दति तदेव प्रमाणं ) आ बीना पानानी कांबीमां छे.

यदुक्तं-श्रीआवश्यके-ऊपपातिके च-''इणमेव निग्गंथं पावयणं सर्वे अणुक्तरं केवलियं पहिषुकं नेयाउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धि-

# आचार्य श्री भात्चंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ५

मगं मुत्तिमगं निव्वाणयगं अवितहप्तविसंधि सव्वदुक्खण्यही-णमगं गं इतिवचनात् अविसंधीति पूर्वापरविषद्धस्वितिस्यर्थः।। मूल-दीसइ इषं विरुद्धं, तम्हा एगस्स भासियं नेयं। दण्हं मयंतर्रमिय, स्रयाणुगं तं चिय पमाणं॥९८॥

अत्र भगवती द्वां यत्पूर्वोक्तं तदेव ज्ञातन्यं केवलिनां मतमेक-मेवेत्यर्थः।। गाथा-''चत्तारि पहिकारणे, किइकम्मा तिनि हूंति सञ्झाए । पुन्वण्हे अवरण्हे, किइकम्मा चलद्स हवंति ॥१ः" इति श्रीआवश्यक निर्धेक्तिचतुर्थाध्ययने (येन चतुर्देश बंदनान्यु-

इति श्रीआवश्यक नियुक्तिचतुर्थोध्ययने (येन चतुर्देश वेदनान्यु-क्तानि तेन त्रथिस्त्रग्नद्वंदनकश्चक्रतंथा अथवाणीद्वता न वेति विचारणीयं) र आ वीना बुक्तकती कांबीमां छे )

मृल-पाउसिय अड्ढरत्तं, कालढुगं होइ अड्ढरत्तंमि । वेरत्तियं च तइयं च, तइय पाभाइयमिच्छ दुरियं च ॥९९॥

कालचउकंमि जड, पत्तेयं तिनि २ किइकम्मा ।
पत्तेयं पत्तेयं किइ-कम्मा सज्झाए इत्तिया चैव ॥१००॥
पिंडकमणदुगे अट्टय, पचक्खार्णमि होइ सायमिमं ।
ित्तीसं किइकम्मा, मिलिया सच्चे इय हवंति ॥१०१॥
कत्थ य तिलीसं चिय, कत्थय चउदस दिणंमि राइए ।
इय अंतरं गुरुतरं, दीसइ पचक्खमिणमेव ॥१०२॥
तं चैव महप्पमाणं, जं गीयत्था निरीहभावेण ।
सवियारिकण सम्मं, पवयणसुद्धं पर्स्वति ॥१०३॥

वंदणयतिगं भिषयं, बहुसु सुत्तेसु वित्तिचुन्नीसु । कहमपमाणं किज्जइ, वारिज्जइ केण तं भणह ॥१०४॥ अथवा-पच्छाउत्तं बलियं, पुचिंव चत्तारि तिन्नि पच्छाय । एएण कारणेणं, पच्छाउत्तं पमाणंति ॥१०५॥ यतः-पूर्वीक्तपरोक्तयोः परोक्तो विधिर्वलवान ॥ तथा पुनः-सामान्यशास्त्रतो नूनं तिशेषो वलवान् भवेत् । परेण पूर्ववाधो वा, प्रायशो दश्यतामिह ॥१॥ इतिवचनात ॥ तथा प्रथमपदाद् द्वितीयपदं श्रेष्टिमिति वचनात् इति पूर्वीचार्य-पणीताक्षरैः चत्वारि वंदनकानि पति पतिक्रमणे इत्यकत्वा पुनर्वेदनकत्रयविधिर्देशित इतिहेतोः प्रतिक्रयणद्वयं वंदनकत्रिक-त्रिकमेव ममाणं पुनर्गीतार्था वदंति तदेव सत्यं ॥ मूल-एवं पडिकमित्ता, कालं पाउसियं पिगण्णंति। स्रयभासियेण विहिणा, वसहिं कालं पवेयंति ॥१०६॥ पच्छा ते उवउत्ता, सज्झायं पट्टवितु सज्झायं । कुव्वंति जाव पत्तं, जाणंति य पोरिसं पढमं ॥१०७॥ अह उद्विता एगो, बहुपडिपुन्नाय पोरिसी भयवं। इय भणिय गुरुं बंदिय. कुणंति चिय वंदणं ग्रुणिणो ॥१०८॥ पडिकमिय पुन्तकालं, सज्झायं चेव अट्टरतं तु। कारुं गिणिय विहिणा, सत्तसत्थं विचितंति ॥१०९॥ धम्मज्ञाणोवगया, उवउत्ता सव्वभाव भावणिया। हियए धरंति अत्थं, जहगहियं गुरुसमीवंमि ॥११०॥

## आचार्य श्री ब्रातृचंद्रसूरि बन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ५९

अह आगर्यमि तइए, जामे तइयाइ पोरिसीए य। डाणंगंमि निदिद्रं, क्रणंति ते धम्मजागरियं ॥१११॥ चडसुंपि उत्तरगुणे, निद्दासुखंति तइयभागंमि । उत्तरअज्झयणंमिय, भणियमिणं साहुकरणिज्ञं ॥११२॥ निद्दामुक्खस्यत्यं, निद्दावक्खाणिऊण वित्तीए। मुत्तूण पढमजामं, करणिज्जं ऋत्थ सा भणिया ११३॥ जं सत्तंमिय भणियं. तस्सत्यं चेव जत्य वा म(स)रइ। वित्तिकरो तं वित्ति, सब्वेवि तहत्ति मन्नेति ॥११४॥ पुट्वावरविवरीयं, सूत्तं न हु होइ किपि कइयावि । एएण कारणेणं, निहाकरणंमि न तत्थ विही ॥११५॥ उत्तरगुणो य भणिओ, निहामुक्लो य धम्मजागरिया। तित्रंपि सुयपयाणं, अत्थो निद्दा न संभवइ ॥११६॥ तइयाइ निद्युक्तं, जह तह निद्दंति इध्य हुज्ज पयं । ता कोवि न संदेहो. मुक्खित्त पर्यमि भयणा य ॥११७॥ मुकलकरणं परिवज्जं च, अने बहुय मुक्खध्या । स्रतंमिय वित्तीए, सुईज्जंतीह जुत्तीहिं ॥११८॥ एगस्सवि सहस्सय, बहवो अध्याय संभवंतीह । समयोचियमेवथ्यं, समयविक संपर्डजंति ॥११९॥ प्रस्ततं प्रस्तयते-निहं च अकुव्वंता, राईए पोरिसीए तहयाए ।

सिढिलायारत्ति जुणे. ग्रुणिणो केण वि न भन्नेति ॥१२०॥

अर्श च सुत्तपोरिसि भणियं, किचं च जे न कुटंबित।
ते भंखति एमाइ, सिढिलायार ति लोएवि ॥१२१॥
जिणवर उवएस विही, निद्दाए निध्य अकरणे तीसे।
ता नहु दोसोऽनध्य वि सुयंमि निद्दाइपिडसेहो॥१२२॥
पवचने निषेधाक्षराणि लिख्यंते, श्रीउत्तराध्ययने २६अध्ययनेगाथा-"स्यणीए चउरोभाए, कुजा भिक्ख वियक्खणो।
तउ उत्तरगुणे कुजा, रयणी भागेमु चउमु वि ॥१॥"

उत्तरगुणस्तृतीययामे कर्तव्य इत्युक्तत्वान्निद्रा न भवत्युत्तरगुण-करणत्वान्निद्रा नोत्तरगुण इति हेतोः ॥ पुनः-श्रीउत्तराध्ययने "स्रते सुआवी पडिबुद्धजोधी" इतिवचनात् । स्रुप्तेषु द्रव्यतः श्रयानेषु भावतस्तु मोहनिद्र्या स्रुप्तेषु प्रतिबुद्धजोवी प्रतिबुद्ध एवास्ते तथा दशमाध्ययने पदे पदे "समयं गोयम मा पमायए" सशयमात्रं मा पमादीः तथाच श्रीआचारांगे लोक-विजयाध्ययने प्रथमोद्देशके—" इमं संपेहाए धीरे सुहुत्तमवि णो पमायए"

(वृत्तिः — 'इमिन्दियनेनेदमाह विनेयस्तपःसंयमादा-ववसीदन् प्रत्यक्षमावापक्षमार्यक्षेत्रादिकमन्तरमक्षसरमुपद-र्याप्रिक्षीयते-तदायमेवम्भूोऽवसरोऽनादौ संसारे पुनरतीव सुदुर्लभ पवेति, अतस्तमवसरं 'संप्रेश्य' पर्यालोच्य धीरः सन्मुहुर्त्तमप्येकं नो 'प्रमाद्येत्' प्रमादवद्यगो भ्यादिति, सम्प्रेश्येत्यत्र अनुस्थारलोपरलान्दसत्वादिति, अन्यद्व्यला-क्षणिकमेवं ज्ञातीयमश्मादेव देतोरवगन्तव्यमिति, आन्तमौं-

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ६१

हूर्त्तिकत्वाच छाद्मस्थिकोपयोगस्य मुहुर्त्तमित्युक्तम्, अन्यथा समयमप्येकं न प्रमादयेदिति धाच्यं, तदुक्तम्-"सम्प्राप्य मानुषत्वं संसारासारतां च विज्ञाय । हे जोष ! किं प्रमादान्न चेष्टसे द्यान्तये सततम् ? ॥१॥ ननु पुनरिदमतिदुर्लभमगाः धसंसारजलधिविश्रष्टम् । मानुष्यं खद्योतकति छिल्लताबिलः सितप्रतिमम् ॥२॥ इत्यादि, )

पुनः-श्री आचारांगे स्रोकविजयाध्ययने चतुर्थोद्देशके—

" अरुं कुसलस्स पमाएणं, संतिमरणं संवेहाए भेजर-धम्मं संवेहाए, नार्लं पास अरुं ते एएहिं " (सू. ८५)

वृत्तिः - ( ' अलम् ' इत्यादि, ' अलं ' पर्यातं, कस्य !-'कुदालस्य' निपुणस्य सृक्ष्मेक्षिणः, केनालं !-मध्यविषयकषाय-निद्राविकथारूपेण पञ्जविधेनापि प्रमादेन, यतः प्रमादो दुःखाधभिगमनायोक्त इति । )

श्री आचारांगे लोकविजयाध्ययने षष्ठोद्देशके '' सएण विष्पमाएण पुढो वयं पक्कटबइ, ''

(वृत्तः - पुनर्राप मृहस्यानर्थपरम्परां दर्शयितुमाह'सपण' इत्यादि, स्वकीयेनात्मना कृतेन प्रमादेन-मचादिना
'विविध' मिति मचविषयक्षणयिक्षणानिद्राणां स्वभेद्ग्रहणं तेन पृथग्-विभिन्नं त्रतं करोति, यदिवा पृथु विस्तीणें
'वय' मिति वयन्ति-पर्यटन्ति प्राणिनः स्वकीयेन कर्म्मणा
यस्मिन् स वयः-संसारस्तं प्रकरोति, पकैकस्मिन् काये दीर्घकालमबस्थानाद्, यदिवा कारणे कार्यापचारात् स्वभीयेन
नानाविधप्रमादकृतेन कर्म्मणा वयः-अवस्थाविशेषस्तमेकेनिद्रयादिकललार्बुदादितदहर्जातवालादिन्याधिगृहोतदारिद्यदोर्भाग्य न्यसनोपनिपातादिक्षपं प्रकर्षण करोति-विधत्त हति।)

श्री आचारांगे तृतीयाध्ययने— "सुता अमुणी, सया मुणिणो जागरंति" (सु १०६)

(अत्र वृत्तिः—"अस्य चानन्तरस्त्रेण सम्बन्धो बाच्यः, स चायम् इह दुःखी दुःखानामेवावर्त्तमनुपरिवर्त्ततः इत्युक्तं, तिहर्दाणि थावसुमा अक्षानिनो दुःखिनो दुःखानामेवावर्तमनुपरिवर्त्तने इति, उक्तं च-"नातः परमहं मन्ये, जगतो दुःखकारणम् । यथाऽज्ञानमहारोगो, दुरन्तः सर्वदेहिनाम् ॥१॥ इत्यादि, इह सुना ब्रिधा क्रव्यतो भावतश्च, तप निद्रामाद्यन्तो द्रव्यसुनाः, भावसुन्नास्तु मिथ्यात्यज्ञानमयमहानिद्राव्यामोहिनाः, ततो ये अमुन्यः मिथ्यादृश्यः सततं भावसुन्नाः, सिद्रज्ञानानुष्ठानरहिनत्वात्, निद्रया तु भजनीयाः, मुनयस्तु सद्बोधोपेता मोक्षमार्गदचलन्त्रस्ते सत्तम् अनवस्तं 'जायति ' हिताहितप्रातिपरिहारं कुर्यते ॥)

"जागरह णरा णिर्च जागरमाणस्स वहृहए बुद्धी । जो सुअइ न सो घण्णो जो जगगइ सो सपा घन्नो ॥१॥ सुअइ सुअं तस्स सुअं संकिपखिलयं भवे पमत्तस्स । जागरमाणस्स सुअं थिरपरिचिअमण्यमत्तस्स ॥२॥ नालस्सेण समं सुऋतं, न विज्ञा सह निद्द्या । न वेरगं पमाएणं, नारंभेण द्यालुया ॥३॥ जागरिआ धम्मीणं आहम्मीणं तु सुत्तया सेआ । वच्छाहिवभगिणीए अकहिंसु जिणो जयंतीए ॥४॥ सुयइ य अयगरभूओ सुअंपि से नासई अमयभूअं । होहिइ गोणब्भूओ नर्टुमि सुष् अमयभूष ॥५॥ "

### आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ६३

तदेवं दर्शनावरणीयकम्मेविषाकोदयेन कचित्स्वपन्निष यः संविग्नो यतनावांश्च स दर्शनमोहनीयमहानिद्रापगमाज्जाग्रद-वस्थ एवेति ।। अत्र निद्रा दर्शनावरणीयकमैविषाकोदयेनोक्ता तत्कर्म स्वत एव नत्पदेशादिति भावः ।।

श्री आचारांगे तृतीयाध्ययने चतुर्थोद्देशके-

"सङ्घओ पमत्तस्स भयं, सङ्घओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं."

(वृत्तिः—सर्वतः सर्वप्रकारेण द्रव्यादिना यद्भयकारि कम्मीपादीयते ततः 'प्रमत्तस्य' मद्यादिप्रमाद्यतो 'भयं' भीतिः, तद्यया प्रमत्तो हि कम्मीपिचनोति द्रव्यतः सर्वेरात्मप्रदेशेः क्षेत्रतः षड्दिग्व्यवस्थितं काळतोऽनुसमयं भावतो हिंसादिभिः, यदिषा 'सर्वत्र' सर्वतो भयमिहासुत्र च, पतः क्रिपरीतस्य च नास्ति भयमिति, आह चः सन्वत्रो 'इत्यादि, 'सर्वतः' पहिकामुष्टिमकापायाद् 'अप्रमत्तस्य' आत्महितेषु जायतो नाषित भयं संसारापसदात्सकाशात् कम्मणो वा, अप्रमत्तता च कषायाभाषाद्भर्यात, तदभावाचाशेषमोहनीयाभावः," इतिषचनात् ॥ "कषायवत पत्र प्रमादो नाक्ष्यस्थिति ॥ )

श्री आचारांगे पंचमाध्ययने द्वितीयोद्देशके—
"पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्तो परिव्वए,"

(वृत्ति:— पमत्ते 'इत्यादि, प्रमत्तान्-विषयादिभिः प्रमादैविद्यिम्मोद्यवस्थितान् पश्य गृहस्थतीर्थिकादीन् । दृष्ट्वा च किं कुर्यादिति दर्शयति अप्रमत्तः सन् संयमानुष्ठाने परि-व्रजेदिति ॥

श्रीआचारांगे नवमाध्ययने द्वितीयोद्देशके-

"प्एहिं सुणी सयणेहिं समणे आसि पतेरसवासे। राई दिवैपि जयमाणे अपमत्ते समाहिए झाइ ॥६८॥"

( वृत्तिः—'पतेषु' पृथों केषु 'शयनेषु' ससतिषु स 'मुनिः' जगत्त्रयवेता ऋतुवद्धेषु वर्षासु वा 'श्रमणः' तप-स्युषुक्तः समना बाऽऽसीत् निश्चलमना इत्यर्थः, कियन्तं कालं यावदिति दश्यति—'पतेलसवासे'—ित्त श्रक्षेण त्रयोदशं वर्षं यावत्समस्तां रार्ति दिनमपि यतमानः संयमानुष्ठान उणुक्तवान् तथाऽप्रमत्तो—निद्रादिप्रमादरहितः 'समाहितमनाः' विद्योतसिकारहितो धर्मभ्यानं शुल्कथ्यानं वा ध्यायतीति॥) किंच्—''णिहंपि नो पगामाष्, सेयइ भगवं उद्वाष्।

क्ष्य−ाणहाय ना पंपानास्, तथ्य नगय उडास् । जग्गावह य अप्पाणं ईसिं साई य अपडिन्ने ।।६९॥''

(वृत्ति: — निद्राभष्यसावपरप्रमादरहितां न प्रकामतः सेवते, तथा च किल भगवतो द्वाद्यसु संवत्सरेषु मध्येऽ स्थिकप्रामे व्यव्यविद्यास्यां कायोत्सर्गव्यः स्थितस्यैद्यान्तर्मुहुर्ते यावत्स्वप्रदर्शनाध्यास्तिः सकृत्रिद्रा प्रमाद आसीत् ततोऽपि चोत्थायात्मानं 'जागरयति 'कुशलानुष्ठाने प्रवत्तं यति, यत्रापीषच्छय्याऽऽसीत् तत्राष्यप्रतिकः प्रतिक्षारहितो, न तत्रापि स्वापाभ्युपगमपूर्वकं शयित इत्यर्थः ॥)

श्री सत्रकृदंगे १४ अध्ययने-"सदाणि सोचा अदु भेर-वाणि, अणासवे तेसु परिवएजा। निद्दं च भिक्खू न प्रमाय कुजा, कहं कहं वा वितिगिच्छ तिन्ने ॥६॥ "

( ब्रुत्तिः -- ईर्यासमित्याग्रुपेतेन यद्विधेयं तह्शीयतुमाह-' शब्दान् ' वेणुबीणादिकान् मधुरान् श्रुतिपेशलान् 'श्रुत्वा ' समाकण्यायवा 'मेरवान् ' भयावहान् कर्णकट्टनाकण्ये शब्दान्

# आचार्य थ्री भ्रातृचंद्रस्ररि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ६५

आश्रवित तान शोमनत्वेनाशोमनत्वेन वा गृह्णातीत्याश्रवो नाश्रवोऽनाश्रवः, तेष्वनुकूलेषु प्रतिकृलेषु श्रवणपयमुपगतेषु शब्देष्वनाश्रवो-मध्यस्थो रागद्वेषरितो भृत्वा परि-समन्ताद् कृतेत् परिवजेत्-संयमानुष्ठायो भवेत्, तथा 'निद्रां च' निद्रां च' निद्रां च' मिश्रुः' सत्साधुः प्रमादङ्ग्लाञ्च कुर्यात्, पत्रवुक्तं भवति-श्रव्दाश्रविनरोधेन विषयप्रमादो निषिद्धो निद्रानिरोधेन च निद्राप्रमादः, च शब्दादन्यमपि प्रमादं विकथाक्षवायादिकं न विद्ध्यात्। तदेवं गुरुकुलवासात् स्थानश्यनासनसमितिगुपिष्वागतप्रज्ञः प्रतिषद्धसर्वप्रमादः सन् गुरोरुपदेशादेव कथं कथमि विचिकित्सां-चित्तविष्तुः तिरूपं [बि] तीर्णः-अतिकान्तो भवति, यदिवा मद्गृहीतोऽयं पश्रमहात्रतमारोऽतिदुर्वहः कथं कथमप्यन्तं गच्छेद् ? इत्येष्मृतां विचिकित्सां गुरुप्रसादाद्वितीर्णो भवति, अथवा यां काश्चिच्वविष्तुति देशसर्वगतां तां कृत्स्मां गुर्वन्तिके वसन् वितीर्णो भवति अन्येपामिष तद्यन्यनसमर्थः स्थादिति" ६).

# श्री ठाणांगे तृतीयाध्ययने २ उद्देशके—

"अज्ञोत्ति समणे भगवं महावीरे गोयमाती समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी-किं भया पाणा ? दुवलभया-पाणा समणाउसो ! १, से णं भंते ! दुक्णे केण कडे ?, जीवेणं कडे पमादेण २, से णं भंते ! दुक्ले कहं वेइज्जित ?, अप्पमा-एणं ३" (सु १६६)

(वृत्तिः—'अज्जोति'ति आरात् पापकर्मभ्यो याता भ्रायांस्तदामन्त्रणं हे आर्या! 'इतिः' प्वमभिलापेनामन्त्र्ये-तिसम्बन्धः, श्रमणो भगवान् महावीरः गौतमादीन् श्रमणान् विर्प्तन्थानेवं-वश्यमाणन्यायेनायादीदिति, 'दुक्खभय'त्ति

दुःखात् मरणादिक्षपात् भयमेषामिति दुःखभया, 'सेणं' ति तद् दुःखं 'जीवेणं कहें'ति दुःखकारणकर्मकरणात् जीवेन कृतमित्युच्यते, कथमित्याह-'पमापणं'ति प्रमादेनाञ्चानादिना बन्धहेतुना करणभूतेतेति, उक्तं च-" पमाओ य मुणिदेहि, भणिओ अठभेयओ । अन्नाणं संसओ चेव, मिच्छाणाणं तहेव य ॥१॥ रागो दोसो मइब्भंसो, धम्मंमिय अणायरो । जोगाणं दुष्पणीहाणं, अठ्ठहा विजयव्यओ ॥२॥ " इति । तच्च वेषते—क्षिष्यते अप्रमादेन, वन्धहेतुप्रतिपक्षभूतत्वादिति । अस्य च स्त्रम्य दुःखभया पाणा १ जीवेणं कहे दुक्खे पमापणं २ अपमाएणं वेइज्जई ३ त्येषंक्पप्रभ्रोत्तरत्र्योपेतत्वात् त्रिस्थानकायतारो द्रष्टव्य इति )

# श्री स्थानाङ्गे चतुर्थाध्ययने २ उद्देशके—

" चडिं डाणेहिं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा अस्सि समयंसि अतिसेसे णाणदंसणे समुष्पिज्जकामे समुष्पञ्जेजा, तं०-इत्थीकहं भत्तकहं देसकहं रायकहं नो कहेता भवति १, विवेगेणं विजसगोणं सम्ममप्पाणं भावेता भवति २, पुबरत्ता-वरत्तकाल्लसमयंसि धम्मजागरियं जागरितता भवति ३, फासु-यस्स एसणिज्जस्स उंछह्म सामुदाणियस्स सम्मं गवेसिया भवति ४, इचेएहिं चडिं डाणेहिं निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा जाव समुष्पञ्जेजा "

(बृत्ति:—'अस्मिन्नि'ति अस्मिन् पत्यश्च इषानन्तरप्रत्यास्मने समये 'अइसेसे' ति दोषाणि -मत्याद्चिश्चर्दर्शनादीनि अति क्रान्तं सर्वावयोधादिगुणैर्यत्तद्विद्योगमतिशयवत्केवलमित्यर्थः समुत्पनुकाममपीतीहैवार्थौ द्रष्टव्यः, ज्ञानादेरभिलाषाभाषात्,

### आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसुरि व्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ६७

कथियतेति शोलार्थिकस्तृन् तेन द्वितीयान विरुद्धेति, 'विवे-केने 'ति अशुद्ध।दित्यागेन 'विउस्सग्गेणं'ति कायव्युत्सग्गेण पूर्वरात्रध-रात्रेः पूर्वी भागो अपररात्रश्च-रात्रेरपरी भागः तावेव कालः स पव समयः-अवसरो जागरिकायाः पूर्वरा-त्रापररात्रकालसमयस्तस्मिन् कुटुम्बज्ञागरिकाव्यवच्छेदेन धर्मप्रधाना जागरिका निद्राक्षयेण घोधो धर्मजागरिका. भाषपत्यपेक्षेत्यथीं, यथा-" किं कयं कि वा सेसं किं कर-णिज्जं तवं च न करेमि । पुष्वावरत्तकाले जागरओ भाव-पडिलेहा ॥१॥ " इति अथवा-" को मम कालो ? किमेयस्स डचियं ? असारा विसया नियमगामिणो विरसावसाणा भोसणो मच्च ॥१॥ " इत्यादिरूपा विभक्तिपरिणामात तया जागरिता जागरको भवति. अथवा धर्म्मजागरिकां जागरिता-कर्तेति द्रष्टव्यमिति, तथा प्रगता असवः उच्छासादयः प्राणा यस्मात् स प्रासुको-निज्जीवस्तस्य एष्यते-गवेष्यते उद्रमा-दिदोषर हितयेत्येषणीयः-कल्प्यस्तस्य उञ्छल्यते-अल्पाल्पतया गृह्यत इत्यञ्छो-भक्तपानादिस्तस्य समदाने-भिक्षणे याश्चायां इत्येवंप्रकारैः-प्रतेरनन्तरोदितैरित्यादि निगमनम्, पतिस्रप-र्ययस्त्रं कण्ठ्यं।)

श्री स्थानांगे ५ अध्ययन० २ उद्देशके—

"संजतमणुस्साणं सुत्ताणं पंच जागरा पं० तं०-सदा जाव फासा, संजतमणुस्साणं जागराणं पंच सुत्ता पं० तं०-सद्दा जाव फासा।"

( वृत्ति:—' संजये 'त्यादि ' संयतमनुष्याणां ' साधूनां 'सुप्तानां' निद्रावतां जायतीति जागराः–असुप्ता जागरा इव

बागराः इयमत्र भावना शब्दादयो हि सुप्तानां संयतानां नामक्र हिवदमितहतशक्तयो भवन्ति, कम्मेवन्धाभावकारण-स्याममादस्य तदानीं तेषामभावात्, कर्म्मवन्धकारणं भवन्ती-त्यर्थः । द्वितीयस्त्रभावना तु जागराणां शब्दादयः सुप्ता इषस्ताः भस्मच्छप्ताभिवत् प्रतिहतशक्तयो भवन्ति, कर्म्मवन्धकारणं नारणस्य प्रमादस्य तदानीं तेषामभावात्, कर्म्मवन्धकारणं न भवन्तीत्यर्थः।)

श्री भगवतीसूत्रे ५ शतके ४ उद्देशके-

" छउमस्थे णं भंते ! मणूसे निद्दाएक वा पयलाएक वा!, हंता निद्दाएक वा पयलाएक वा."

( वृत्तिः—'छउमत्थे' त्यादि, 'णिहापज्जव'ति निद्रां-सुखप्रतिबोधलक्षणां कुर्यात निद्रायेत 'पयलापज्जव'ति प्रच लाम्-ऊर्द्वे स्थितनिद्राकरणलक्षणां कुर्यात् प्रचलायेत्॥)

श्री भगवत्यां १२ श्रतके २ उद्देशके—जयन्ती श्राविका
मश्राधिकारे उत्तरदानं '' अत्थेगितयाणं जीवाणं जागरियत्तं
साहू, से केणहेणं भंते ! एवं वुच्च अत्थेगइयाणं जाव साहू ?,
जयंती ! जे इमे जीवा धिम्मया धम्माणुया जाव धम्मेणं चेव
वित्तं कप्पेमाणा विहरंति एएसि णं जीवाणं जागरियत्तं साहू,
एएणं जीवा जागरा समाणा बहूणं पाणाणं जाव सत्ताणं
अदुक्खणयाए जाव अपरियाविणयाए वर्दृति, तेणं जीवा जागरमाणा अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा बहूहिं धिम्मयाहिं संजोयणाहिं संजोएत्तारो भवंति, एएणं जीवा जागरमाणा धम्मजागरियाए अप्पाणं जागरहत्तारो भवंति, एएसि णं जीवाणं

## आचार्य श्री जातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ६९

जागरियत्तं साह्, से तेणहेणं जयंती ! एवं वुचइ अत्थेगइयाणं जीवाणं जागरियत्तं साह ॥ '' अत्रहत्तिलेशः—

('जागरियत्तं'ति जागरणं जागरः सोऽस्यास्तीति जागरिकत्त्वम् वागरिकत्वम् 'धिमिया' धम्मेण-ध्रुतचारिकरणेण चरन्तीति धार्मिकाः कृत पतदेविमत्यत आह-'धम्मा-णुया' धर्म-थुतरूपमनुगच्छन्तीति धम्मानुगाः कृत पतदेविमत्यत आह-'धम्मानुगः धर्म-थुतरूप, पवेष्टो चल्लमः पृजितो वा येषां ते धमंष्टाः धर्मिणां वेष्टा धर्मिष्टाः अतिद्यवेष वा धर्ममणो धर्मिष्टाः अत पव 'धम्मक्खाई' धर्ममाख्यान्तीत्येषं द्यीला धर्माख्यायिनः अथवा धर्मात् ख्यातिर्येषां ते धर्म-प्रलोई' धर्ममपुणादेयनया प्रलोकयन्ति ये ते धर्म-प्रलोकनः 'धम्मपलङ्जण'ति धर्म प्रज्यन्ते-आसज्ञन्ति ये ते वर्म-प्रलोकनः समुदाचारः-समाचारः सप्रमोदो वाऽऽचारो येषां ते तथा, अत पत्र 'धम्मण चेष' इत्यादि धर्मेण-चारित्रश्रुत-कृषेण वृत्ति-ज्ञीविकां कल्पयन्तः-कृषीणा इति ॥)

इत्यादिवचनात् ॥ श्री दश्चैकालिके चतुर्थाध्ययने— ''जयं चरे जयं चिट्टे, जयमासे जयं सए । जयं भ्रुंजतो भासतो, पावकम्मं न वैधइ ॥८॥''

(वृत्तिः—'जयं चरे' इत्यादि, यतं चरेत्-स्त्रजोपदेशे-नेर्यासमितः, यतं तिष्ठेत्-समाहितो हस्तपादाधिक्षेपेण, यत-मासीत-उपयुक्त आकुञ्जनाधकरणेन, यतं स्वपेत्-समाहितो रात्रो प्रकामश्चयादिपरिहारेण, यतं भुञ्जानः-सप्रयोजनम-प्रणीतं वतरसिंह मक्षितादिना, एवं यतं भाषमाणः साधुभा-षया मृदु कालप्राप्तं च 'पापं कर्म' क्लिष्टमकुशलानुवन्धि श्चानाषरणीयादि 'न बश्नाति' नादत्ते, निराध्रवत्वात विहि-तानुष्ठानपरस्यादिति ॥८॥)

अत्र 'सर्यंजए'-अस्यार्थी यतनया यतमानः साधुः शयीत अत्र कश्चिदिति बदति श्रीजिनेन शयनकथनात्रिद्वोपदेशो दत्तः. इत्युक्ते सत्युच्यते ग्रयनं नैकांततो निद्रा पचलायां व्यभिचारा-दुपविष्टस्यापि निद्रेत्यर्थः । निद्रायां सप्तानामष्टानां वा कर्मणां बंधः, शबने भजना, यतः शयने इयीपथिकी क्रिया द्विसमय स्थितिकापि भवति, निद्वायामेकांततः सांपरायिक्षेव, न तत्र संश-यः। स्नुता अनेता मुक्ति गताः पुनरनन्तास्तामाप्स्यंति संख्याताः प्राप्तुदंति न कश्चित्रिद्वाणो मुक्तिंगतः न कोषि याति न कोषि-यास्यति ''आउत्तं तुयदमाणस्स'' इत्यादि सृत्रकृदंग इत्यादि । तथा श्रीभगवत्यामपि " आजत्तं तुयदमाणस्स इरियावहिया-किरियाकज्झति '' एवं निद्रायां नास्ति, शयने यतना श्रास्त्रो-क्ता ज्ञायते. परं निद्रायां यतना नावबुध्यते.यतश्रतुर्थपदे "पाव-कम्मं न बंधइ " यतनया शयानः पापकर्म न बधाति, निद्रायां सप्ताष्ट्रकर्मवंधः सूत्रोक्त एव नान्यथा । यदि साधुनां निद्रा प्रमादः कर्नेच्यतयोपदिइयते, तर्हि मद्यविषयकषायविकथा अपि कर्तव्यतया कथं न भवंत्यत्र विचारणा बह्वी वर्त्तते प्रन-रिप गीतार्था निरीहतया सुत्रोक्तनीत्या बदंति तदेव प्रमाणं नात्र विचारणा ॥ तथा पुनः सुत्रक्रदंगे पुंडरीकाध्ययने-" से भिवख जंपिय इमं संपराइयं कम्मं कज्जइ, णो तं सयं करेति णो अण्णाणं कारवेति अत्रंपि करेंतं ण समणुजाणः इति." ॥

(वृत्तिः--साम्प्रतं सामान्यतः साम्परायिककर्मोपादानः निषेधमधिकृत्याइ-यद्यपदं संपर्येति तासु तासु गतिष्वनेन कर्मणेति सांपरायिकं, तच्च तत्प्रद्वेषनिहृवमात्सर्यान्तरायाद्याः तनोपघातैर्वध्यते, तत्कर्म तत्कारणं वा न कृतकारितानुम-तिभिः करोति स भिश्चरभिधीयत इति ॥) इति सूत्रवचनात्॥

— सांपरायिककमिनिषेषः साधूनाम्चपदिष्टः निद्रायां तु सांपरायिक कम्मैंव भवति, शयने तस्य भजना । तथा श्रीमहा-निशीथे-" ण दिवा त्यदिक्जा दुवालसं" अत्र दिवाशयनमपि निषिद्धं निद्रायां कि वक्तव्यं, रात्रौ तु कारणे संस्तारककर-णविधिरस्ति, तत्र शयनयतना अत्र गीतार्था एव साक्षिणो भूत्वा यद्वदंति तहेव प्रमाणं ॥

मूळ-निद्दाविहि उवएसा, इतियमित्तासु स्रुत्तवित्तीसु ।
नहु अध्यि जिणवराणं, छउमस्थाणं कुतो भणिओ॥१२३॥
छउमस्थाणं दंसण, - आवरणस्सोदया जइवि निद्दा ।
होइ तहावि जिणुत्त, - विहीइ नहु सद्दहेयहा ॥१२४॥
रयणीइ तइय जामे, पिहसेहो केवलस्स जइ हुज्जा ।
ता मिश्रज्जइ जम्हा, निद्दाए केवलं निध्य ॥१२६॥
छउमस्थस्स पमाओ, पमायलेसोवि निध्य केवलिणो ।
दुण्हं को आणाए, कोय अणाणाइ आणाए ॥१२६॥
जस्सव इरियाविह्या, रीयित्तहा सुत्तमेव सो चेव ।
जस्सविय संपराई, सो णेयहो अणाणाए ॥१२०॥
उवसंतकसायस्स य, खीणकसायस्स य तहारियाविह्या ।
इयरस्स संपराइय, इय भणियं पंचमंगीम ॥१२८॥

सत्तमदसमसयंमिय, अट्ठारसमे सयंमि इय नचा । जिणवरवाणी सचा, तं सुचा सद्दहेयव्वं ॥१२९॥

श्री भगवतीसुत्रे ७ । १० । १८ । ज्ञतकेषु-'' जस्सणं कोहमाणमायालोभा अवुच्छिका जस्सणं संपराईया किरिया कर्जात से णं उस्युत्तमेव रीयति "।। इति वचनात्। अत्र-वृत्तिः-उत्स्त्रमनाइयैव इति व्याख्यातं ॥ " जस्स कोइमाण-मायाळोभा अबुच्छिन्ना तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जति से णं अहास्रुत्तमेव रीयति ''। इति वचनातु । इति निद्राधिकारे किञ्चिल्लेखितम् ।। अत्र रहस्यमिदम्-अतीतका-लेऽनन्तछबस्थसाधृनां निद्राकरणमभृत्, आगामिनि काले अनन्तानां छद्मस्थसाधूनां निद्राकरणं भविष्यति, वर्त्तमानका-लेऽपि छग्नस्थानां निद्वाऽप्यस्ति पर्र स्वतः कर्मोदयेनैव, नत्र जिनोपदेशादु विधिरूपातु । ये इत्थं वदन्ति वीतरागोपदेशविधि विना निद्रां क्रवींणा यथाच्छन्दा इति, तान प्रति गीतार्थैरिति वक्तव्यम्-रात्रेस्तृतीययामादारात्परतो वा कारणमन्तरेण निद्रां कुर्वाणा यथाच्छन्दा एव, इति प्रमाणं कुर्वन्तु । अन्यच यः कोऽपि छद्मस्थः साधुरेकयामाधिकं समयमात्रमपि अहोरा-त्रमध्ये निद्रांन क्वर्नीत तमेकं दर्शयन्त्र कदाचिदेको दर्शित-स्ततोऽन्ये सर्वेऽपि साधवो यथाच्छन्दत्वादु विराधका एव, इति विचार्य यद्वितं तदेव कार्यम् , गीतार्थेरित्यक्षित्वंधनेन विज्ञ-प्रिविधानं मम फलेग्रहि कर्त्तव्यम् ॥

## आचार्य थो ब्रातृचंद्रसूरि प्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ७३

मुळ-उद्ध डिंड उवविद्वस्स मवारण कारणे सम्रूपके । समणी त्यहिउमणी. जो सो संथारगं कुन्ना ॥१३०॥ संथारुत्तरपट्टो भणिड जेणुग्गहंमि उवहीए। नहु उहिओय एसो, जाणिज्जइ तेण कारणिओ ॥१३२॥ संथारस्सय करणं छट्टे अंगंमि साहुवागस्स । पढमब्झयणे भणियं जाणह चरिओवएसेणं ॥१३२॥ तस्स विही भूमिं पउंज्ञिडणं, वथ्थाण पमज्जणाड चडवीसं। काउणं दिद्वीए, न होइ पहिलेहणा एगा ॥१३३॥ तत्तोय पत्थरित्ता संथारं सड्ढ इध्य दुगमित्तं। संकोडियसंडासो जयं सए जथ्य उवउत्तो ॥१३४॥ इरियं पडिकमित्ता तप्पछा वंदिज्ण आयरियं। दाउं दु खमासमणे संदिसणं वायणं कुज्जा ॥१३५॥ उवविसिऊणुक्कुडुओ स्यहरुणेणं च अहव पुत्तीए। देहं च पमज्जित्ता सीसाईपायपज्जंतं ॥१३६॥ उक्कृडुअठिएणं चिय, संथारं अकमित्त पाएणं। वामेणं उवडद्रो. गुरुणाय विही मुणेयद्वा ॥१३७॥

अणुजाणह जिट्ठिजा २ निसिही नमो खमासमणाणं महामुणीणं नवकार० करेमिभंत्ते सामाइयं० अरिहंतोमहदेवो० वारत्तयं भणंति तओ पच्छा, "अणुजाणह परमगुरू, गुणगण रयणेहिं मेंडिय सरीरा। बहुपडिपुन्नापोरिस राई संथारयंटामि" १ " इमं गाई भणित्ता संथारस्सोवरि जयणाए जवविसिऊण एगं पायं पळंबं काउण भणियव्वं ॥ अणुजाणह संथारं बाहुवहाणेण वामपासेण । कुकुटपायपसारण अंतरंतु पमज्जए
भूमिं ।। २ ॥ संकोडियसंडासा उबहंतेय कायपिटलेहा ।
दबाई उवओगा,उसासनिरुंभणा लोए । ३। जह मे हुज्ज पमाउ,
इमस्स देहिस्सिमाइ रयणीए । आहारस्रविहदेहं चरम्सासेहिं
वोसिरे ॥४॥ चत्तारि मंगलं० अद्वारसपावद्वाणाई वोसिरयहाइं
चुल्लसीइ लक्त जीवजोणीज खामेयबाज बारस भावणाज
भावेयबाओ ॥ एगोई निध्य मे कोइ, नाहमन्मस्स कस्सइ ।
एवं अदीणमणसो, अप्पाणमणुसासए ॥ १ ॥ एगो वज्जइ
जीवो, एगो चेव उवज्जइ । एगस्स होइ मरणं, एगो सिज्झइ
नीरओ ॥२॥ एगो मे सासओ अप्पा, नाणदंसणसंजुओ ।
सेसा मे बाहिरा भावा, सन्वे संजोगलक्त्वणा ॥३॥ संजोगमूला जीवेण, पत्ता दुक्लपरंपरा । तम्हा संजोगसंबंधं, सन्वं
भावेण बोसिरे ॥४॥

मुळ-ळढं अळढ्पुन्वं, जिणवयणं सुभासियं अमियभूयं ।
गहिउ सुग्गइमग्गो, नाहं मरणस्स वीहेमि ॥१३८॥
एयं सन्च्चवएसं, जिणदिट्टं सदद्दामि तिविहेणं ।
तसथावरखेमकरं, पारं निवाणमग्गस्स ॥१३९॥
इत्यादि। एस संथारगिवही॥ श्री आचारांगे सिज्जणाध्ययने तृतीयोदेशके-"से भिक्खू वा भिक्खूणी वा बहुफासुयं
सिज्जासंथारगं संथरिता अभिकंखिज्जा बहुफासुए सिज्जासंथारए दुरुहित्तए॥ से भिक्खु वा भिक्खुणी वा बहुफासुए सिज्जा

संथारए दुस्हमाणे पुवामेव ससीसोवरियं कायं पाए य पमिष्णय २ तओ संजयामेव बहु० दुस्तृहित्ता तओ संजयामेव बहु० सङ्ज्ञा ॥से भिवस्यू वा० बहु०सयमाणे नो अन्नमन्नस्स हत्थेण हत्यं पाएण पायं काएण कायं आसाइज्जा, से अणासायमाणे तओ संजयामेव बहु० सङ्ज्जा ॥ से भिवस्यू वा० उस्सासमाणे वा नीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंभायमाणे वा उह्डोए वा वायनिसमं वा करेमाणे पुन्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपेहित्ता तओ संजयामेव उससिज्जा वा जाव वायनिसमं वा करेजा ॥ ११

(वृत्तिः—से इत्यादि स्पष्टम् । इदानीं सुप्तविधिमधि-कृत्यादः निगद्सित्तम्, इयमत्र भावना-स्थपद्धिर्द्वस्तमात्रव्य-विद्वतसंस्तारकः स्वप्तव्यमिति॥ एवं सुप्तस्य निःश्वसिता-दिविधिस्त्रश्मुतानार्थे, नवरम् 'आसयं व' ति आस्यं'पोसयं वा' इत्यधिष्ठानमिति॥) इति वचनात्॥ "इयं यतना" अनया निद्राकरणं श्रयानस्य कथं भवेत्॥

मूळ-एवं तुयहमाणो, जागरमाणो य घम्म जागरियं । सम्मं जिणोवएसं, जयं सए सद्दृहेतोत्ति ॥१४०॥ उवउत्तो वियकम्मो,—दयेण निद्दानिमील्रयत्थोय । अर्षं पमायछल्यं, नाउण विचित्तए एवं ॥१४४॥

जे बुद्धा उवउत्ता, केवलजुत्ता सुबुद्धजागरियं।
जगंति जिणवरिंदा, धन्ना तेहं पणिवयामि ॥१४२॥
होऊण चउदसपुट्यी, निद्दादोसेण बहुभवं भमिओ।
अकहिंसु भवणभाणु, परिसाए पुट्यनियचरियं॥१४३॥

यतः-''जइ चउदस पुव्वधरो, वसइ निगोएय अणंतयं कारूं। निहाइपमाएणं ता तं कह होहिसिरे जीव !' ॥१॥ इतिवचनात्॥ मूल-दिणचिंतयथ्य करणी, निद्दा थीणद्धिया भवे जस्स । गच्छइ स दुग्गइमहो, निद्दपमाओ महासत्त् ॥१४४॥ करिवर दंतक्खणणं, कयं च निहुष्पमायदोसेणं। मुणिणा सुन्वइ एसो, दिईतो बहुसु सध्येसु ॥१४५॥ एएण कारणेणं, निद्दा नहु होइ जिणुवएसेणं। तीएचिय परि हरणं, विहीए भणियं जिणंदेहिं ॥१४६॥ इइ उद्वित्ता इरियं, पडिक्रमित्ता करेति उस्सम्मं। निसिपच्छित्तविसोहण.-क्रुमुमिणउहडावणद्राए ॥१४७॥ ऊसाससयपमाणं, अडअहियं कारणं मुणेऊणं । सकथ्थवं भणित्ता, गिण्णइ वेरत्तियं काळं ॥१४८॥ पट्टविऊण विहिणा, सज्झायं ता कुणंति सज्झायं। संवेगसमावन्नो, असंजया जह न जगांति ॥१४९॥ अवसेसनिसिम्रहत्ते, गिण्णइ पाभाइयं मुणी कालं। तिथ्थोभवंदणेहिं, आयरियाईय वंदित्ता ॥१५०॥ ठावंति पडिक्रमणं, चडध्थएणं च वंदणेणंति । राईए जह भणियं, सुत्तनिज्जुत्तिवित्तीस ॥१५१॥ आवस्सयचुण्णीए, पुट्यायरियेहिं विहियगंत्थेसु । केविलवयणाणुगयं, जह भिणयं तह य वक्खामि॥१५२॥ श्रीउत्तराध्ययने २६ अध्ययने-"आगए कायबुस्सग्गे. सञ्बद्दक्खविम्रुक्खणे।काउस्सम्मं तथो क्रजा, सञ्बद्दक्खविम्रु-

## आचार्य श्री ब्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ७७

क्खणं ॥४६॥ राइयं च अईयारं, चिंतिज्ञ अणुपुन्वसो । नाणंमि दंसणंमि, चिरत्तंमि तवंमि य ॥४७॥ पारियकाउस्स-गो, वंदिचाण तओगुरुं । राईयं तु अईयारं, आलोइज्ञ जह-कमं ॥४८॥ पिडकमित्त निस्सल्लो, वंदित्ता ण तओ गुरुं । काउस्सग्गं तओ कुज्ञा, सन्वदुक्खिवमुक्खणं ॥४९॥ किं तवं पिडवज्ञामि ?, एवं तत्थ विचित्त । काउस्सग्गं तु पारिता, करिज्ञा जिणसंथवं ॥५०॥ पारियकाउस्सग्गो, वंदित्ताण तओ गुरुं । तवं संपिडविज्ञिता, करिज्ञ सिद्धाण संथवं॥५२॥"

(बुत्ति:-'आगते' प्राप्ते' 'कायव्युत्सर्गे' इत्युपचारात कायब्युत्सर्गसमये सर्वदःखानां विमोक्षणमर्थात् कायोत्सर्ग-द्वारेण यस्मिन् स तथा तस्मिन्, दोषं प्रान्वत , यचेह सर्वः दुःखविमोक्षणविद्योषणं पुनः पुनरुच्यते तदस्यात्यन्तनिर्जराः हेतुत्वरुयापनार्थ, तथेह कायोत्सर्गप्रहणेन चारित्रदर्शनश्रत ज्ञानिवशुध्ध्यर्थं कायोत्सर्गत्रयं गृद्यते, तत्र च तृतीये रात्रि-कोऽतीचार्धिन्त्यते, यत उक्तम्-"तत्थ पढमो चरिते. दंसणसुद्धीय वीयओ होइ । सुयणाणस्स य ततियो णवरं चितेर तत्थ इमं ॥१॥ तहप निसादयारं " ति रात्रिकोऽ-तिचारश्च यथा यद्विषयश्च चिन्तनीयस्तथाऽऽह-रात्री भवं रात्रिकं 'चः' पूरणे अतीचारं चिन्तयेत् 'अणुपुञ्चसो' सि आन्पर्वा-क्रमेण ज्ञाने दर्शने चारित्रे तपसि च शब्दाहीयें च. दोषकायोत्सर्गेष चतर्थिदातिस्तयः प्रतीतिश्चन्त्यतया साधाः रणश्चेति नोकः। ततस्य पारितेत्यादिस्त्रव्रत्यं व्याख्यातमेव. कायोत्सर्ग स्थितश्च कि क्योदित्याह - 'कि'मिति कि रूपं तपो' नमस्कारसहितादि प्रतिपद्ये 2हम. पदं तत्र विचिन्तयेत--बर्द्धमानोहि भगवान् पण्मासं यावन्निरदानो बिहतवान् ।

तित्कमहमपि निरशनः शक्नोम्येतावस्काळं स्थातुमुत नेति ?, पवं पश्चमासाधपि यावन्नमस्कारसितं नावत्परिभावयेत्, उक्तं हिः "विते चरमे उ किं तवं काहं?। छम्मासामेकदि-णादिहाणि जा पोरिसि नमो वा ॥२॥ " उत्तरार्द्धे स्पष्टम्, पतदुकार्यानुवादतः सामावारीशेषमाहः 'पारिष' त्यादि प्राम्बत्, नघरं 'तपः' यथाशक्ति चिन्ततमुपवासादि 'संप्र-तिषय' अङ्गोकृत्य कुर्यात् सिद्धानां 'संस्तवं').

राईपिडकमणिवही-श्रीआवश्यकिमधुँक्तिमध्ये पंचमाध्य-यने-" निहामची न सरइ, अइयारं मायघरणं तुन्नं । िकड़ अकरणदोसा वा, गोसाई तिन्नि उस्सम्गो ॥१॥ तथ्य पढमो चिर्ते, दंसणसुद्धिय बीयउ होइ। सुयनाणस्स तइउ, नवरं चितेइ तथ्य इमं ॥२॥ तइए निसाइयारं, चिंतइ चिरमंमि किंतवं काहं। छम्मासा इकदिणाइ, हाणी जा पोरिसि नमो बा ॥३॥"

श्रीहरिभद्रसुरिकृते पंचवस्तुकग्रंथे---

'' पाउसिआई सब्बं, विसेसस्रत्ताओ एत्थ जाणिज्जा । पच्चुसपडिकमणं, अहकमं कित्तहस्सामि ॥४९३॥

( वृत्तिः—'प्रादोषिकादि सर्वं' कालप्रहणस्वाध्यायादि 'विद्येषस्रवात्' निद्योषाऽऽवश्यकादेरवगन्तव्यम्, प्रत्यूषप्रति-क्रमणं 'यथाक्रमम्' अनुपूर्व्या कीर्त्तयिष्यामि अत ऊर्ध्वमिति गायार्थः ।(९३॥)

सामइयं कड्ढिता चरित्तसुद्धन्थपढममेवेह । पणवीसुस्सासं चिअ धीरा उ करिति उस्समां ॥४९४॥ ( वृत्तिः—सामायिकमाक्वष्य पृत्वेकमेण चारित्रविशद्धवर्षे

## आचार्य श्री आत्चंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ७९

प्रथममेवेह पश्चित्रात्युच्छ्वासमेव पूर्ववद्धीरा: कुर्वन्ति कायो-त्सर्गमिति गाथार्थ: ॥९४॥ )

उस्सारिऊण विहिणा, सुद्धचरिता थयं पकड्ढिता। दंसणसुद्धिनिमित्तं करिंति पणुवीसउस्समां ॥४९५॥

(वृत्ति:-( उत्सार्य विधिना-'नमोऽर्हद्भ्यः' इति वच-नलक्षणेन शुद्धचारित्राः स्तर्ध-लोकस्योद्योतकरेत्यादिलक्षणं प्रकृष्य दर्शनशुद्धिनिमित्तं कुर्वन्ति पश्चविशत्युच्छ्वासमुत्सर्ग-मिति गाथार्थ: ॥९५॥)

ऊसारिकण विहिणा कड्डिंति स्रयत्थवं तओ पच्छा । काउस्सम्ममणिययं इह करेंती उ जवउत्ता ॥४९६॥

( वृत्तिः--उत्सार्य विधिना कर्षन्ति श्रुतस्तवं 'पुक्क रवरे' त्यादिलक्षणं, ततः पश्चात् कार्योत्सर्गमनियतमानमिति, अतिचाराणामनियतत्वात्, 'इह' अत्र प्रस्तावे कुर्दन्त्युपयुक्ता इति-अत्यन्तोषयुक्ता इति गाथार्थः।।९६॥ )

अत्र यश्चिन्तयति तदाह-

पाउसिअथुइमाई अहिमयउस्सम्मचिठपज्नंते । चितिति तत्थ सम्मं अइयारे राइए सन्वे ॥४९७॥

( बृत्तः—'पादोषिकस्तुतिप्रभृतीनां' प्रादोषिकप्रतिक्रम-णाग्तस्तुतेरारभ्य अधिकृतकायोन्सर्गचेष्टापर्यन्ते, प्रस्तुतकायो-रस्गेव्यापारावसान इति भाषः, अत्राग्तरे चिन्तयित, 'तत्र' क्रियाक छापे 'सम्यग्' उपयोगपूर्वकमितचारान् स्बिछितप्रका-रान् रात्रिकान् 'सर्वान्' सुङ्मादिभेदभिन्नानिति गाथार्थः ॥९०॥ पतदेव व्याचष्टे.)

तइए निसाइआरं चिंतिअ अस्सारिजण विहिणा उ! सिद्धत्थयं पिंडचा पिंडकमंते जहापुतिं ॥५००॥

( बृत्तिः – तृतीये कायोत्सर्गे निद्यातिचारं चिन्तयित्वा तदनन्तरमुत्सार्य विधिना पूर्वोक्तेन 'सिद्धस्तवं' 'सिद्धाण' मित्यादिलक्षणं पठित्वा मतिकामन्ति, 'यथापूर्वं' पदं पदे-नेति गाथार्थः ॥५००॥ )

सामाइअस्स बहुहा करणं तप्पुवना समण जोना। सइसरणाओ अ इमं पाएण निदरिसणपरं तु ॥५०१॥ उक्तार्था॥ खामिचु करिति तओ सामाइअपुवनं तु उस्सम्नं। तत्थय चितिति इमं कत्थ निउत्ता वयं गुरुणा ?॥५०२॥

(वृत्तिः—क्षमयित्वा गुरुं कुर्वन्ति ततः सामायिकपूर्व-मेवं कायोत्सर्गे तत्र च कायोत्सर्गे चिन्तयत्येतत्-कुत्र नियुक्ता वयं गुरुणा ?, ग्लानप्रतिज्ञागरणादौ (ति गाथाथ: ॥२॥)

जह तस्स न होइचिय हाणी कज्जस्स तह जयंतेवं। छम्मासाइ क्रमेणं जा सकं असदभावाणं ॥५०३॥

( वृत्तिः - यथा तस्य न भवत्येव हानि: कार्यस्य गुर्वा-दिष्टस्य तथा 'यतन्ते' उद्यमं कुर्वन्ति, एवं-वण्मासाधिकमेण, यावच्छक्यं पौरुष्यादि असठभावानामिति गाथार्थः ॥३॥)

तं हियए काऊणं किङ्कम्मं काउ गुरुसमीवस्मि । गिण्डंति तओ तं चिअ समगं नवकारमाईअं ॥५०४॥ "

(वृत्तिः—'तत्' शक्यं हृदये कृत्वा सम्यक् कृतिकर्म्म कृत्वा गुरुसमीपे गृह्धांन्त 'ततः' तदनन्तरं 'तदेव' चिन्तितं 'समक' मिति युगपत् नमस्कारसहितादीति गाथार्थः ॥॥॥)

# भाचार्य श्री त्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ८१

मूल-जारिसो पिडक्कमणिवही इत्तियिमित्तेसु गंथेसु । भणिओ तारिसो चैव आवस्सयिजिङ्गवित्तीए ॥१५३॥ तहा आवस्सयचुत्रीए वक्खाणिओ ॥ तथा पंचवस्तुक्रग्रंथे श्रीहरिभद्रसूरिकृते-''आयरणा सुअदेवयमाईंणं होइ उस्सगो" ॥४९१॥ (गाथार्थः)-

(वृत्तिः--आचरणया श्रुतदेवतादीनां भवति कायोत्सर्गः, आदिशब्दात क्षेत्रभवनदेवतापरिग्रह इति गाथार्थ: ॥९१॥) चाउम्मासिय वरिसे उस्सम्मो खित्तदेवयाए उ । पिक्खा सिजासुराए करिंति चडमासिए वेगे ॥४९२॥ (वृत्तिः-चातुर्मासिके वार्षिके च, प्रतिक्रमण इति गम्यते. कायोत्सर्गः क्षेत्रदेवताया इति. पाक्षिके शब्यासरायाः. भवनदेवताया इत्यर्थ:, कुर्वन्ति, चातुर्मासिकेऽप्येके मुनय इत्यर्थ: ॥९२॥ इति गाथार्थ: ) ॥ इति वचनातु---मूल-देवसिष पडिकमणे, आयरणाएवि निध्य उस्सम्मो । स्रयखित देवयाए, सुत्ते वित्तीइचुकीए ॥१५४॥ पक्लिय चाउम्मासिय, संवच्छरिएवि देविवुस्सगो। एगेसिं चिय भणिओ, विहिवाया न उण सब्वेसि ॥१५५॥ आयरणाइ कयाए, अकयाइ न आणभंगओ दोसो । आयरणं अन्तुनं, करंति केई नह करंति ॥१५६॥ नियनिय गच्छायरणा, सब्बेसिं भिन्नभिन्नभावेण । तहवि करंता पिह पिह, निंदि ज्वंती न केणावि ॥१५७॥ केइ तिक्षि थुईंड, केइ चत्तारि देवयाणं तु। उस्समांमि भणंति य, सावि ह सन्वेसि न पमाणं ॥१५८॥ Ê

देवीणं थुइ करणे, इह लोगट्ठो य दीसइ पयडो ॥
पभणंति जओ पाढं, नहु वंदणवित्तयाएत्ति ॥१५९॥
तवमज्झिट उस्सगो, भुज्जो चितिजए नम्रुकारो ।
अरिहंताई पंच य, जिणसमए वंदणिज्जाय ॥१६०॥
दसवेयालियस्रत्ते, इह लोगट्ठा तवं च पिटिसिद्धं ।
नवमंमिय अज्झयणे, नेयव्वं तथ्य पयडथ्यं ॥१६१॥
आवस्सय टाणांगे, समवायंगंमि पण्णवागरणे ।
उत्तरअज्झयणंमिय, इहलोगट्ठा तव निसेहो ॥१६२॥
यतः-श्रीदश्वैकालिकेः—" चउव्विहा खलु तवसमाही
भवइ, तंजहा नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा १ नो परलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा २, नो कित्तिवण्णसहिसलोगट्ठयाए
तवमहिट्ठिज्जा ३, नञ्जस्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा ४,

(वृत्तः—तपः समाधिमाह—चतुर्विधः खलु तपःसमाधि भेवति, 'तष्यथे' स्युदाहरणोपन्यासार्थः, न 'इहलोकार्थम्' इहलोकिनिमतं लब्ध्यादिबाब्ल्या 'तप' अनशानदिक्षपम् 'अधितिष्ठेत्'न कुर्याद्विधिव्ल्या 'तप' अनशानदिक्षपम् 'अधितिष्ठेत्'न कुर्याद्विधिव्ल्या 'तया न 'परलोकार्थं' अन्यानतरभोगनिमितं तपोऽधितिष्ठेत् ब्रह्मदत्तवत्, पयं न 'कीर्त्तिचर्णशब्द्यल्याचार्थं भिति सर्वदिग्व्यापी साधुवादः कीर्तिः पकदिग्व्यापी वर्णः अर्क्वदिग्व्यापी शब्दः तत्स्यान पव श्लाघा, नैतदर्थं तपोऽधितिष्ठेत्, अपि तु 'नान्यत्र निर्जरार्थं' मिति न कर्मनिर्जरामेकां विहाय तपोऽधितिष्ठेत्, अकामः सन् यथा कर्मनिर्जरेष फलं भवित तथाऽधितिष्ठे-दित्यर्थः चतुर्थं पदं भवित)

# आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ८३

इतिवचनात् ॥ '' आवश्यके-बत्तीसाए जोगसंगएहिं।'' "आछोयण १ निरवलावे २ आवर्डसुदिहधम्माय ३ । अनि-स्सिउवहाणेय ४ सिक्ला ५ निष्पडिकम्मया ६ ॥१॥'' इति-वचनात् । अत्र चतुर्थो योगसंग्रहः अनिश्रितोपधानं ऐहिक-फलानपेक्षतपःकारिता इत्यर्थः । एवं स्थानांगे, समवायांगे, प्रश्नव्याकरणे, उत्तराध्ययने ॥

मूळ-इग-वासर-परियाउ, वाससय-दिक्तियं बहुमुयंपि । वंदिज्जा नहु अञ्जं,साहु बालो अगी(अत्य) उवि॥१६३॥

विरइधरं गुणनिळयं, नहु वंदइ सावियंपि ववहारा। ता अविरय देवीज, कहेह साहू कई वंदे ॥१६४॥

देवीथुइ आयरणा, एएण य कारणेण नहु सुद्धा । आयरण लक्खणेणवि,नहु जुज्जइ जेण भणियमिणं ॥१६५॥

यतः--''असटेण समाइझं, जं केण य कथ्यई असावज्जं । न निवारियमञ्जेहिं, आयरणा सा पमाणं मे ॥१॥ "

इतिवचनात् ॥

मुछ-तथ्य य जिणपडिसिद्धं, पडिसिद्ध-विहाणमेव सावज्जं। छक्खण-विरुद्धमेयं आयरणं कहमिह पमाणं ॥१६६॥

क्खितावग्गहकुजे, क्खितसुरी-संथवं करंताणं । साहण वसहिदोसो, उप्पायणए इगारसमो ॥१६७॥

इह जा स्रुत्तविरुद्धा सच्छंदमईइ–कप्पिया जो य । गीयध्येहिं कहिज्झइ, सा नहु किज्जइ म**ए नृणं** ॥१६८॥

अह पनिखय चाउम्मासिय संवच्छरिय पडिक्रमणविही भणई ॥ श्रीआवश्यकनिर्युक्ती पंचमाध्ययने-" देवसिय-राइय-पिक्खय,-चाउम्मासे तहेय वरिसेय । इकिके तिनि गमा, नायवा पंचसे (स्) तेस ॥१॥ आइमकाउस्सगी, पहिक्रमंताळ काउ सामाइयं । ता किं करेह बितियं, तइयं च पुणोवि उस्सगो।।२॥ समभावंमि दियप्पा. उस्सगं करिय तो पहिकामः। एमेव य समभावे. (बि)वियस्स तियं सम्रहसगो ॥३॥ " पंचरवेतेषु देवसिकादिषु एकैकस्मिन प्रतिक्रमणे त्रय-स्रयो गमा ज्ञातच्याः ॥ सामायिकम्रज्ञार्यं प्रतिक्रमणाय कायो-त्सर्गेकरणमतिचारचितनरूपं पुनः सामायिकम्रचार्ये प्रति-क्रमणसूत्रभणनं सामायिकाध्ययनमुचार्यं चारित्रसुद्धिकायो-त्सर्गकरणं एते त्रयो गमाः। अत्राह परः प्रतिकामंतः आधका-योत्सर्गादौ सामायिकं कृत्वा उचार्य ततः कथं द्वितीयं प्रति-क्रमण-सूत्रादौ तदुधरन् तृतीयं च पुनर्षि चारित्र-सुद्धि-कायोत्सर्गादी इत्युक्ते गुरुराह समभावे स्थितात्मा उच्चरित-सामायिकः प्रथमं कायोत्सर्गं कृत्वा एवमेव द्वितीयवेलामुच-रितसामायिकः प्रतिक्रामति, प्रतिक्रमणसूत्रं भणति, तृतीय-वारमपि समभावस्थितस्य उचिरतसामायिकस्य चारित्रसृद्धि-कायोत्सर्गः समभावस्थितस्य च तावत् प्रतिक्रमणं नान्यथा, अतिह्न:सामायिकग्रचार्यते,अथवा ''सज्झाय-जाण-तव-उस-हेसु, उवएस-थुइ-पयाणेसु । संतगुण-कित्तणेसु य न हुंति

### आचार्य श्री ब्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ८५

**धुन**रुत्तदोसाऊ ॥१॥ '' इतिवचनात् । पंचम्रु प्रतिक्रमणेसु अतिचारचिंतनमस्त्येव ॥

मूळ-इय निज्जुत्ति बलेण, पक्त-चडम्मास-विस्स-पिडक्रमणं। देवसियं च करिज्जइ, उस्सग्गा जीयकपाओ ॥१६९॥ दिवसे सयमूसासा, राईए तेय हुंति पन्नासं।

पक्लंमिय तिश्विसया, चाउम्मासंपि पंचसया ॥१७०॥ अ(हाहि)हडिय सहस्स मेगं, ऊलासा तहय वरिसए चेव । आवस्सयस्स एवं, निज्जुत्तीए य नायव्वं ॥१७१॥

निव अस्रो कोइ विही, पिक्खियमाईण दीसई सुत्ते । वित्तीसुय जो भणिओ,सोवि न गच्छेसु सव्वेसु ॥१७२॥

नियनियगच्छायरणा, सन्वेसिं अध्यि पुन्वसूरिकया। सायरणावि य आणा, जा प्वयणमग्गमणुलग्गा॥१७३॥ अथ पाक्षकाधिकारः—

चित्तसमाहोडाणा, दस य दसाखंशसुत्तपन्नता ।
पित्वय-पोसहिएसु य समाहिपत्ताण साहूणं ॥१७४॥
अत्रचूर्णिः-''पिनिखयमेत्र पिनिखयं पिनिखए पोसहो अट्टिम चडदसीसु समाहिपत्ताणं समाही-नाण-दंसण-चरणरूवा भावसमाही तथ्थ पत्ता'' । इत्यादिवचनात् ॥ मूल्ल-अथ्थय पिनिखय-सद्दो, चडदसी-वायगो सुणेयन्तो ।

जं पक्लिय परियाओ, एसो न हु पुत्रिमा भणिया॥१७५॥ भुज्जो भगवइ-अंगे, पढम्रुदेसे य बारस-सर्यमि । पक्लियपोसह-सदे, चउद्दसी-संभवो अध्थि ॥१७६॥ जम्हा पढमे दिवसे, बीण (य)पुण पोसहो य नो गहिओ। तम्हा एगदिणस्स य, आराहणमेव इह पयड ॥१७७॥ वित्तीए नो भणिड, चडहसी-पुन्निमाइ-सुविसेसा । एएण कारणेणं, चडहसी-पक्तियं होइ ॥१७८॥ यदुक्तं पूर्वीचार्यैः-

" अद्रम-छद्र-चडध्यं, संवच्छरचाउम्मास-पक्ते य । पोसहे य तवे भणिए, वितियं असहं गिलाणेयं ॥१॥"

निञीथभाष्ये-पाक्षिके चतुर्थे पूर्णिमामावास्या गणने चतुर्थे कथं जायते । इति हेतोश्रद्धद्यामेव पाक्षिकं । व्यवहारहृत्ती-"अद्रमीए चउस पक्तिलए,चउथ्यं चाउम्मासिए छदं । संवच्छ-रिए अट्टमं,न करेति तस्स पच्छित्तं॥१।,''आवश्यकचुणौं-''अ-द्वमि चउइसीसु अरिहंता साहुणो य वंदियव्वा''इति. पुनस्तत्रैव ''सो य सावउ अट्टमिचउदसीसु उववासं करेइ पुच्छइ वाएइ तओ सागरचंदो अट्टमि चउहसीस सुन्नघरेस सुसाणेस वा एगराइयं पिड(क्)मं ठवेइ। चंपाए सुदंसणो सिट्टिपुत्तो अद्वमी चउहसीस चचरेस उवासग-पडिसं पडिवज्जइ उदायराया अट्टमि चउह-सीम्र पोसहं करेइ'' । इतिआवश्यकचूर्णिवचनातु । "अद्वमी-चउद्दसीसु य पभावती भत्तिराएण सततमेव राजनदोवयारं करे-इ।''इतिनिशीथचूर्णिवचनात्। बहुषु स्थानेषु पाक्षिक-कृत्यानि प्रतिक्रमण-पौषध-चैत्यपरिपाटी - साधुवंदनकादीनि र्देश्यामेव दृश्यमानानि संति,इति हेतोः पाक्षित्रशब्देन चतुर्दशी

# आचार्य थी भ्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ८७

(तथा च श्री महानिशीथे " संते बलबीरिय-पुरिसकार-परकमे अट्टमी-चडहसी-नाणपंचमी-पज्जोसबणा-चाडम्मा-सिप चडध्थ-छट्टमट्टमेणं करेजा खबणमिति। अत्र चातुर्मी-सिकापरा न कार्यामावसी-पूर्णिमा वा गृहीतायदि तथो-मेहण मभविष्यत्तदा चतुर्दश्यां चतुर्थ-भक्तीपदेशो नाभविष्यदिति) ( आ बीना पानानी कांबीमां छे)

मूल-कत्तिय अमावसाए, निवाणं वीरजिण-वरिंदस्स । संजायं तेण तया, पट्टवियं पोसहं सद्धं ॥१७९॥ कासीकोसल-जणवय,-निवेहिं अट्ठारसेहिं मिलिऊणं। गणरायेहिं पक्लिय,-ममावासाए कड तत्तो ॥१८०॥ भणियमिणं सुरुवयणं, दसासुयस्कंध-अद्रमुब्बयणे। पुणरवि तथ्येव सुया, पक्खियारीवणा भणिया ॥१८१॥ तग्गहणं पहिस्रद्धं, अमावसाए न पिक्लयं होइ। तेण य अमावसाए. न प्रक्रिमाएवि नेयव्वं ॥१८२॥ जम्हा पंचम-अंगे, पनरसमसयंमि वीरनाहस्स । पडिवयदिवस-विहारो, चाउम्मासो य पढमदिणे॥१८३॥ तिनेव य चडम्मासा, नायव्वा पुन्निमाइ तत्तो य। पक्खिय--चाउम्मासा, न एगदिवसंमि जायंति ॥१८४॥ अंगंमि उवंगंमिय, चउहसी अद्दमी य उहिद्वा । तह प्रिमा य एवं, चउपव्वतिहीण नामाइं ॥१८५॥ बीयस्यगडंगे, वित्ती तेवीसमेए अज्झयणे। अद्रमि-चउहसीउ, पयहथ्याउ य नायव्वा ॥१८६॥

महकञ्जाणतिहीस, सिहुद्वासत्ति जिणवरिंदाणं। तिसेव पुत्रिमाओ, चउम्मासतिहीउ भणियमिणं॥१८७॥ एएण कारणेणं, चडहसि पक्तिखयं वियाणेह । जम्हा चडम्मास तिही, न पक्लियं पुन्निमा किहवि॥१८८॥ अह पक्लियं चउद्दृति,-दिणंमि पुट्वं च तथ्य देवसियं । इय जोगसत्तअध्ये, भणियं सिरिहेमसूरीहिं ॥१८९॥ यदुक्तं पूर्वीचार्यैः-''अन्नासु वि वित्तीसुं,सुरीहिं अभयदेव-पम्रहेहिं। उद्दिद्वा निद्दिद्वा, अमावसा तहय चुन्नीसु ॥१॥ एवं कञ्चाण-तिही, न लभ्भइए जिणमयंमि स्रुपसिद्धा । सा कह-माराहिज्जइ, अभासिया स्रत-अध्येस ॥२॥ अन्नेसि किरि-याच. नागाई अचणा जलहिबुद्ही। सेलग-जक्खुवयारे,अमा-वसा तथ्य उद्दिष्टा ॥३॥ इइ उद्दिष्टपएणं, अमावसा भासिया-पवयणंमि । जध्य अ सेसो लोगहिइ, विसेसो समुहिद्दो ॥४॥ कायव्वो य विवेगो. परस्स तिथ्थीण धम्मकिरियास । कल्लाणतिही सुत्तं, जिणमयमन्नो कहं लहइ । ५॥ १७ इतिहेतो: स्वतीर्थे उद्दिष्टा कल्याणकतिथिः जगत्स्वरूपेऽमावस्या । मूल-चडम्मास-पडिक्रमणं,पिक्खय-दिवसंमि चडिबहे संघे। संदेहविसोसहिए, भणियं जिणवल्लहेहिं च ॥१९०॥ पक्लस्स अट्टमी खल्ल, मासस्स य पिक्लयं ग्रणेयव्वं। तथ्थ य चउइसी-तिय, भणियसिरिपुञ्जसुरीहिं ॥१९१॥ अशं च जंबहीव.-प्यन्नत्ती चंदस्र-पन्नत्ती। भगवइ-अणुओगेसु य,अन्नध्य वि अध्यि भणियमिणं॥१९२॥

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रस्रि यन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ८९

पनरस-दिणेहिं पक्त्वो, दोपक्त्वा मास बारमासद्दो । एयं कालपमाणं, न पन्वमाणं इमं होइ ॥१९३॥

प्याए गणणाए, न हुंति पन्वाइं तिन्नि गुरुआइं । पक्को चउम्मासो वरिसो, जध्येव पडिक्समणं ॥१९४॥

सावणमासे बहुळ,—प्पडिवयाप तह अभीइ-नक्खत्ते । संवच्छरपारंभो, एसो भणिओ जिणवरेहिं ॥१९५॥

जइ एवं च गणिज्जइ, आसाढी-पुत्तिमाइ-ता वरिसो । भद्दवय-सुद्ध-पंचमिदिणंमि एसो कहं हुज्जा ॥१९६॥

बीए पक्लंमि तहा, मासट्टाणे कई चउम्मासो । अद्वसु मासेसु पुणो, दुत्रास्रसेसु य विरुद्धे सच्चे(बे)य॥१९७॥

एवं सोऊण सुयं, दिणाण गणणाइ-पव्य-करणिज्जं । नहु संभवइ वयंतिह, गीयथ्या तं चिय पमाणं ॥१९८॥

इति पाक्षिकाधिकारः ॥

यतः-श्रीआवश्यक-चतुर्थाध्ययने --

"पिडिकमामि चाउकालं सन्झायस्स अकरणयाय" इत्यादौ । तथा "अकालं कओ सन्झाओ कालं न कओ सन्झाओ अस-न्ह्याप सन्झायं सन्झाप जं न सन्झायं तस्स मिन्छामि दुकडं" इतिबचनात्। जेहन उ मिन्छायुकड दोजै ते अकाल किम की जह)

आ पाठ पानानी कांबोमां टीपणी रूपे छे. अथ उटियकतिथेरधिकारः—

मूळ-चंदपन्नति सुत्ते, सरियपन्नतिनासुवंगीम । उदयतिहीय पमाणं, विवाहपन्नति अंगीम ॥१९९॥

अत्र सूत्रं जंबुद्दीवपन्नत्ति-मृलसूत्रे-"एगमेगस्स णं भन्ते ! मासस्स कति पक्खा पण्णता ?, गोअमा ! दो पक्खा पण्णता, तं० बहुलपुरुखे अ सुक्कपुरुखे अ ! एगमेगस्स ण भन्ते ! पक्खरस कड दिवसा पण्णता ?, गोअमा ! पण्णरस दिवसा पण्णत्ता. तं०-पहिवादिवसे वितिआदिवसे जाव पण्णरसी-दिवसे. एतेसिणं भंते ! पण्णरसण्हं दिवसाणं कड णामधेज्ञा पण्णत्ता ?, गोअमा ! पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता, तं०-पुरुवंगे सिद्धमणोरमे अ तत्तो मणोरहे चेव । जसभद्दे अ जसधरे छट्टे सबकामसमिद्धे अ ॥१॥ इंद्रमुद्धाभिसित्ते अ सोमणस धर्ण-जए अ बोद्धन्वे ॥ अत्थसिद्धे अभिजाए अञ्चसणे सयंजए वैव ॥२॥ अग्गिवेसे उवसमे दिवसाणं होंति णामधेजा ॥ एतेसि णं भंते ! पण्णरसण्हं दिवसाणं कति तिही पण्णत्ता ?. गो० ! पण्णरस तिही पण्णत्ता,तं०-नंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पंचमी । पुणरवि णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स दसमी । प्रणरिव णंदे भद्दे जए तुच्छे पुण्णे पक्खस्स पण्णरसी, एवं ते तिगुणा तिहीओ सन्वेसिं दिवसाणंति। एगमेगस्स णं भंते! पक्खस्स कइ राईओ पण्णत्ताओ ?, गोअमा ! पण्णस्स राईओ पण्णत्ताओ, तं -पडिवाराई जाव पण्णरसीराई, एआसिणं भेते ! पण्णरसण्हं राईणं कड णामधेळा पण्णता ?. गो० ! पण्णरस नामधेजा पण्णत्ता, तंजहा-उत्तमा य सुणक्खत्ता, एलावचा जसोहरा। सोमणसा चेव तहा, सिरिसंभुआ य बोद्धवा ॥१॥ विजया य वेजयन्ति जयंति अपराजिआ य

## आचार्य श्री आतृचंद्रसृति ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ९१

इच्छा य । समाहारा चेव तहा तेआ य तहा अईतेआ ॥२॥ देवाणंदा णिरई रयणीणं णामधिज्ञाई ॥ एयासि णं भंते ! पण्णरस तिही पं० ?, गो० ! पण्णरस तिही पं०, तं०—उगावई भोगवई जसवई सबसिद्धा सुहणामा, पुणरिव उगावई भोगवई जसवई सबसिद्धा सुहणामा, पुणरिव उगावई भोगवई जसवई सबसिद्धा सुहणामा। एवं तिसुणा एते तिहीओ सब्वेसि राईणं । "

(वृत्तिः--'पगमेगस्स' इत्यादि, पक्षेकस्य भदन्त! मासस्य कति पक्षाः प्रज्ञप्ताः ?, गौतम! दौ पक्षौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-कृष्णपक्षी यत्र ध्रुवराष्टः स्वविमानेन चन्द्रविमानमा-वृणोति तेन योऽन्धकारबहुलः पक्ष: स बहुलपक्षः शुक्लपक्षो यत्र स एव घन्द्रविमानमावृत्तं मुश्चति तेन ज्योत्स्नाधव-लिततया शुक्लः पक्षः स शुक्लपक्षः, ह्रौ चकारौ तुल्यता-बोतनार्थं तेन द्वाविष पक्षी सहज्ञतिथिनामकी सहज्ञसङ्खा-कौ भवत इति । अथानयोदिवससङ्ख्यां पृष्ठस्त्राचण्टे-'पग-मेगस्स ण' सित्यादि, पर्केकस्य पक्षस्य कृष्णशुक्लान्यतरस्य भदन्त ! कति दिवसा: प्रकृताः ?, यद्यपि दिवसशब्दोऽहो-रात्रेह्रदस्तथापि सूर्यप्रकाश्चतः कालविशेषस्यात्र ग्रहणं, रात्रिविभागप्रश्रस्त्रस्याग्रे विधास्यमानत्वात । गौतम पञ्चदश दिवसा: प्रज्ञप्ताः, पतच कर्ममासापेक्षया द्रष्टव्यं, तत्रेव पूर्णानां पश्चदशानामहोरात्राणां सम्भवात्तवया-प्रतिपद्दिवसः प्रति-पद्यते पक्षस्याचतया इति प्रतिपत प्रथमो दिवस इत्यर्थः, तथा द्वितीया द्वितीयो दिवसो यावत्करणातु तृतीया तृतीयो दिषस इत्यादिग्रहः अन्ते पश्चदशी पश्चदशी दिवसः, वर्तेषां भदन्त ! पश्चदशानां दिवसानां कति ! नामधेयानि प्रज्ञ-

प्तानि ?. गौतम ! पश्चददा नामधेयानि प्रज्ञप्तानि. तथया-प्रथमः पूर्वाङ्गो ब्रितीयः सिद्धमनौरमस्तृतीयः मनोहरः चतुर्थौ यशोभद्रः पश्चमो यशोधरः षष्ट्रः सर्वकामसमृद्धः सप्तम इन्द्रमुद्धाभिषिकोऽष्टम: सौमनसो नवमो धनञ्जयः दशमोऽ र्थेसिदः पकादशोऽभिजातो ब्रादशोऽत्यशनः त्रयोदशः शतअय: चतुर्वशोऽग्निवेदम पश्चदश उपशम इति दिवसानां भवन्ति नामधेयानि इति । सम्प्रत्येषां दिवसानां पश्चदश तिथीः पिपृच्छिषुराह-'पतेसि ण'मित्यादि, पतेषां-अनन्त-रोकानां पञ्चदशानां दिवसानां भदन्त । कति तिथयः प्रक्षप्ताः ?, गौतम ! पश्चदद्या निथयः प्रक्षप्ताः, तद्यथा-नम्दो भद्रो जयस्तुच्छोऽन्यत्र रिक्तः पूर्णः, अत्र तिथिशब्दस्य पुंसि निर्दिष्टतया नन्दादिशन्दानामपि पुंसि निर्हेश:, ज्योतिष्कः रण्डकसूर्यप्रश्निवृत्यादी तु नन्दा भद्रा जया इत्यादिस्त्री-लिझनिर्देशेन संस्कारो दृश्यते. स च पूर्णः पश्चदश तिथ्या-त्मकस्य पक्षस्य पञ्चमी इति रूढ: पतेन पञ्चमीतः परेषां षष्ट्यादितिथीनां नन्दादिक्रमेणैय पनरावतिर्दार्शेता. तथैव स्रुत्रे आह-पुनरपि नन्दः भद्रः जय: तुच्छः पूर्णः, स च पक्षस्य दशमी, अनेन क्रितीया आवृत्तिः पर्यवसिता, पुनरपि नन्दः भद्रः जयः तुष्छः पूर्णः, स च पक्षस्य पश्चद्शी, उक्तः मर्थे निगमयति-एवमुक्तरीत्या आवृत्तित्रयहृपया एते अनन्त-रोका नन्दाद्याः पंच त्रिगुणाः पश्चदशसंख्याकास्तिथयः सर्वेषां-पश्चदञ्चानामपि दिवसानां भवन्ति, पताश्च दिवस-तिथय उच्यन्ते, आह-दिबस्तिथ्यो; कः प्रतिविद्योषो येन तिथिपश्रस्त्रस्य प्रथग्विधानं ?, उच्यते, सूर्यचारकृतो दिवस: स च प्रत्यक्षसिद्ध एक. चन्द्रचारकता तिथिः. कथमिति चेत् ?, उच्यते पूर्वपूर्णिमापर्यवसानं प्रारम्य द्वापष्टि-भागी-कृतस्य चन्द्रमण्डलस्य सदानाषरणीयौ ह्रौ भागौ वर्जियत्वा

## आचार्य श्री भातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ९३

दोषस्य षष्टिभागात्मकस्य चतुर्भागात्मकः पंचदशो भागो या-वता कालेन ध्रवराहुविमानेन आवृतो भवति अमावास्यान्ते च स पच प्रकटितो भवति तावान कालविशेषस्तिथिः। अय रात्रिवक्तव्यप्रश्रमाह-'एगमेगस्स' इत्यादि. एकैकस्य भदन्त! पक्षस्य कतिरात्रयोऽनन्तरोक्तदिवसानामेव चरमां-श्रह्मपाः प्रज्ञप्ताः ?. गौतम ! पञ्चदशरात्रय: प्रज्ञप्ताः, तच्या-प्रतिपद्राप्तिः यावत्करणाद ब्रितीयादिरात्रिपरिग्रहः, पधं पंचदशीरात्रिरिति। 'प्रशासिण' मित्यादि, प्रश्नस्रत्रं सुगमं, उत्तरस्रते गौतम! पश्चद्श नामधेयानि प्रझप्तानि, तद्यथा-उत्तमा प्रतिपद्राधिः सनक्षत्रा द्वितीयाराधिः पला-पत्या तृतीया यशोधरा चतुर्थी सौमनसा पञ्जमी श्रीसम्भृता षष्ठी विजया सप्तमी वैजयन्ती अष्टमी जयन्ती नवमी अप-राजिता दशमी रच्छा पकादशी समाहारा ब्रादशी तेजा-खयोदशी अतितेनाधनर्दशी देवानन्दा पंचदशी निरत्यपि पंचद्रया नामान्तरं, इमानी रजनीनां नामधेयानि। यथा अहोरात्राणां दिवसरात्रिविभागेन संज्ञान्तराणि कथितानि तथा दिवसतिथिसंज्ञान्तराणि प्रागकानि, अथ रात्रितिथि-संज्ञान्तराणि प्रश्नयन्नाह-'एतासि णं' इत्यादि, एतासां भदन्त ! पञ्चवज्ञानां कति तिथय: प्रश्नप्ताः ? गौतम ! पञ्चतिथय: प्रह्मप्ताः, तद्यथा-प्रथमा उप्रवती नन्दातिथि रात्रिः, द्वितीया भोगवती भद्रातिथिरात्रिः ततीया यशोमती ज्ञयातिथिरात्रिः ४, सर्वेसिद्धा तुच्छातिथिरात्रिः, ५, शुभनामा पूर्णतिथि-रात्रि:, पनरपि ६, उग्रवती नन्दातिथिरात्रिः, भोगवती भद्रातिथि:, ७, रात्रि: यशोमती जयातिथि, ८, रात्रि: सर्थ-सिद्धा तुच्छातिथिर्नवमीरात्रिः, शुभनामा पूर्णतिथिर्दशमी रात्रिः, पुनरपि अग्रवती नन्दातिथिरेकादशी रात्रिः, भोग-वती भद्रातिथिद्वांदशी रात्रिः, यशोमती जयातिथिस्ययोदशी

रात्रिः, सर्वसिद्धा तुच्छा तिथिश्चतुर्दशी रात्रिः, शुभनामा पूर्णातिथिः पश्चदशी रात्रिरिति, यथा नन्दादिपञ्चतियीनां त्रिरावृत्त्या पंचदश (दिन) तिथयो भवन्ति तथोग्रयतीप्रभृतीनां त्रिरावृत्त्या पंचदश रात्रितिथयो भवन्तीति )

इति वचनात् ॥ एवं सुरपन्नत्ती मूलसुत्रेपि-दशमस्य प्राप्ट-तस्य चतुर्देश पंचदश प्राभृत प्राभृतयोः सदशत्वास लिख्यते । अत्रवृत्तिः एकैकस्य पक्षस्य पश्चदश पश्चदश रात्रयः पत्रप्ताः. तद्यथा-प्रतिपत् प्रतिपत्सम्बन्धिनी प्रथमा रात्रिः द्वितीयदिवस-सम्बन्धिनी द्वितीया रात्रिः, एवं पश्चदश्चदिवससम्बन्धिनी पश्चदशी रात्रिः, इतिवचनात् । यो दिवसः सा चैव रात्रिः दिव-सानुषंगिकीरात्रिरित्यर्थः ॥ श्रीकल्पसूत्रे "उवसमे दिवसे देवा-णंदा सा रयणी" इतिवचनात् । वृत्तिः-ननु दिवसेभ्यस्तिथीनां कः प्रतिविशेषो येनैताः पृथक् कथ्यंते उच्यते इह सूर्यंनिष्पा-दिता अहोरात्राश्चंद्रनिष्पादितास्तिथयः, तथा पुनः अयं च पर्वाचार्यपरंपरायात उपनिषद्पदेशः । अहोरात्रस्य द्वापष्टिभाग-पविभक्तस्य ये एकपष्टिभागस्तावत प्रमाणा तिथिः, अहोरा-त्रस्त्रिशन्महर्तेभमाणः सुभतीतः ॥ औदयिकतिथिविचारः ॥ श्रीभगवतीसुत्रे १२ शतके ६ उद्देसके-"से केणट्रेणं भंते ! एवं वुचड-सुरे आइचे सुरे० २ ?, गोयमा ! सुरादियाणं समयाइ वा आवलियाइ वा जाव उस्सप्पिणीइ वा अवसप्पिणीइ वा से तेणहेणं जाव आइचे०२।'' वृत्तिः-अथादित्यशब्दस्यान्वर्थाभि-धानायाह-'से केण' मित्यादि, 'सुराईय' ति सुरः आदि:-

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ९५

प्रथमो येषां ते सूरादिकाः, के ? इत्याह-'समयाइ व' ति समयाः-अहोरात्रादिकाल भेदानां निर्विभागा अंकाः, तथाहि-स्योदियमविधं कृत्वाऽहोरात्रारम्भकः समयो गण्यते आव-लिका सुहूर्तादयश्चेति 'से तेण' मित्यादि, अथ तेनार्थेन सुर आदित्य इत्युच्यते, आदी अहोरात्रसमयादीनां भव आदित्य इति च्युत्पत्तेः ॥ एवं सुर्यमन्नशिसुत्रेन-

''ता कहं ते सरे आइचे आहितेति बदेज्जा ता सरादिया समयातिवा आविल्ठियातिवा आणापाणू त्तिवा थोवेतिवा जाव उस्सप्पिणीति वा एवं खळ स्ररे आइचे आहितेत्ति वदेजा।।'' एवं चंद्रमज्ञप्तिमुलसुत्रेपि। अथ वृत्तिः -ता इति पूर्ववत कथं केन मका-रेण केनान्वर्थेनेति भावः सुरःसूर्य आदित्य इत्याख्यायते इति-वदेत ? भगवानाह सूर्य आदिः प्रथमो येषां ते सुरादिकाः के इत्याह समयातिवा समया अहोराश्रादिकालस्य निर्विभागाः भागास्ते सुरादिकाः सुरकारणा तथाहि सुर्योदयमवधि कृत्वा अहोरात्रारंभकः समयो गण्यते नान्यथा, एवमावलिकादयोपि सुरादिका भावनीयाः। नवरमसंख्येय-समयसम्रदयात्मिका आवलिकाः, संख्येया आवलिका एक आनपाणः, द्विपंचा-शदधिकत्रिचत्वारिंशच्छत-संख्याविळका प्रमाण एक आन-प्राण इति दृद्धसंप्रदायस्तथा चोक्तं। " एगो आणापाणू, तयाळीसं सयाज्वावन्ना। आवलिय प्रमाणाणं, अणंत नाणीहिं निहिट्टो ॥१॥ '' सप्तानपाण-प्रमाणस्तोकः, यावच्छब्दान्म्र-हर्तीदयो द्रष्टव्याः ते च सुगमत्वात स्वयं भावनीयाः । एवंखळ

इत्यादि एवमनेन प्रकारेण खळ निश्चितः सर आदित्य इत्या-ख्यात इतिवदेत , आदौ भव आदित्यः, बहुवचनात्य प्रत्ययः इतिव्युत्पत्तेः, इत्यक्षरैरुदयतिथिः प्रमाणं । अन्येष्वपि शास्त्रेषु-" उदयंमि जा तिही, सा पमाणिमयरा न कायबा । इहरा आणाभैगो, आणाभेगेण मिच्छतं ॥१॥ पञ्चक्खाणं पूआ, पिडकमणं पोसहो अणुट्टाणं। जीए उदेह सुरो, तीइ तिहीए य कायव्वं ॥२॥ '' इत्यादि ॥ मुल-अप्पतमेण तमेणं, उज्जल पहिचाय बुचाइ कसिणा । अप्पुज्जोएणं चिय, कसिणंपि सियंति भासंति ॥२००॥ एवं उदयतिही वि य, नायबा कसिण उज्जल तिहिब। आवस्सय वेलाए, तिहिगहणं कथ्थवि न दिहं ॥२०१॥ पुणरवि जइ गीयथ्था, दावंति य अक्खराणि एयाणि । ता ताणि मे पमाणं, तत्तं तु त एव जाणंति ॥२०२॥ आवस्सय वेलाए, पवतिही हुज्ज तीइ पडिकमणं। तं पुच्चन्ने जायं, अवरन्ने वावि चिंतेह ॥२०३॥ अवरन्ने तं जुत्तं, नो पुच्चन्ने तहावि सुतुत्तं। सेयं वा कसिणं वा. तं तं सब्वं मह पमाणं ।।२०४॥

पढमं चिय होइ दिणं, तस्स य रयणित्ति तयणुगा । पच्छा जंबूसुरिय,—चंदपन्नत्तीस्र य इमं भणियं ॥२०५॥ ततुपुर्व्विष्ठिखितमेवावगंतव्यं ॥

तम्हा दिणावसाणे, पडिक्तमणं जुत्तमेव इय मग्गो । तम्हा पवयण भणियाइ, उदयतिहीषु अभिरमेजा॥२०६॥

# आचार्य श्री भातृचंद्रस्र ग्रिनथमाळा पुस्तक ५० मुं. ९०

इति औदयिकतिध्यधिकारः ॥ समणाण सावयाण य. देसिय प्रम्हाण जाण पंचर्ह । पडिकमणाणं किरिया, सरिसा स्रुत्ताणुसारेण ॥२०७॥ श्रावकाणां मतिक्रमणे यो विशेषः स उच्यते-इरियं पडिकमित्ता, पडिलेहिताण धम्म उवगरणं। प्रतीदेहप्पग्रहं, प्रणोवि इरियापडिकमणं ॥२०८॥ सम्मं जयणा करणे, तत्तो दाऊण दोखमासमणे । भयवं सामाइयवयं. संदिस्सावेमि ठावेमि ॥२०९॥ नवकार-भणण-पुरुवं, सामाइय-दंडगं समुचरइ । आवस्सय किरियाए, वेलं जाणितु संपत्तं ॥२१०॥ किरियंतरास काले, पहिक्यं-ताण निध्य उववसिणं। तत्तो आसणणुन्ना, एथ्यण मेर्यंत निर(वे)क्वं ॥२११॥ कार्छमि किज्जगाणी, सङ्झाउ जिणमयंमि सुविसुद्धो । सङ्गायस्य अणुन्ना, नध्थि अकाले जिणंदाणं ॥२१२॥ आसण सज्झायाणं, पच्छा किरियाइ संभवो अध्य । जइ गीयध्या भावं, एयं मन्नंति ता सब्वं(खं) ॥२१३॥ हुज्जा सुत्तविरुद्धं, ता मिच्छादुक्दं इवड । मज्ञां एएण कारणेणं, द्वालसावत्त-वंदणयं ।:२१४॥ दचा पचक्लाणं, किचा तो घेइयाइ वंदिता। आयरियाइ साह. ठाविय पक्रणंति उस्सम्मं ॥२१५॥ सेसं साह-सरिध्यं, एमेव य राइयंमि नायव्वं । वयमुद्यरितु पच्छा, राईपच्छित्त-उस्सग्गं ॥२१६॥

काऊणं चिय-वंदण.-पुच्वं ठावंति तो पहिक्समणं। एवं देसिय-राइय,-पडिक्मणं सावयाणं च ॥२१७॥ अन्नं च पुत्ति-पडिलेहणाए, दुवालसावत्त-वंदणंमि दुर्गं । वारदुगं च सीसो,-वरियं कायं पमजिज्ञा ॥२१८॥ एवं देवसियंमि य, स पश्चक्लाणाउ अट्टवाराओ । प्रत्तिपडिलेहणाउ, कायस्स पमज्जणाओ वि ॥२१९॥ छवारं राईए. अप्पडिलेहित प्रतियं देइ। वंदणयं पच्छित्तं, तस्सुत्तं पुव्वसुरीहिं ॥२२०॥ वारं वारं कुज्जा, दिहीइनि(य)रक्खणेण पडिलेहं। पणवीसं पणवीसं, पुत्ती-देहाणुभयकालं ॥२२१॥ सेसाई तिन्नि आवस्सयाई, कायव्वाई साहुव्व निय। नियवयअइयारा, जहकमं चेव चिंतेज्झा ॥२२२॥ आलोइऊण सम्मं, पहिकामित्ता तओ विसोहिज्झा । सव्वपिडकमणाणं. परमरहस्सं मुणेयव्वं ॥२२३॥ अत्र गीतार्थी मध्यस्था यद्वदंति तदेव प्रमाणीक्रियते सूत्रा-नुसारेण निरीहतया पसादमाधाय वक्तव्यव ॥ अथोपधानाधिकारः---मूळ-अंगपविद्वं सुयमंग,-बाहिरं तहय चेव आवस्सयं । आवस्सयवितरित्तं, कालियम्रकालियं चेव । २२४॥

आवस्सयावतारत्त, कालियमुकालिय चन गररशा ठाणांगे नदीए, अणुओगंमि य सुयस्स छब्मेया । एए जिणेहिं भणिया, अउपरं नध्यि किंचि सुयं ॥२२५॥ पुच्छेमि पंचमंगल,-नामेणं जो भने महासुयक्खंघो ।

# आचार्य थी आतृचंद्रस्रिर प्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ९९

सो नहु लब्भइ कथ्थवि, पंचज्झयणेग-चूलाय ॥२२६॥ पडिकमण-सुयक्खंघो, बीओ सकत्थवाभिहाणं तु । तइयमरिहंतचे (थे) इय.-थव-अज्झयणं चउध्यं तु ॥२२७॥ पंचमगं नामथयं, छठं सुय-संथवं तह चेव । एवं अज्झयणाणि य चत्तारि य दो स्रयक्खंघा ॥२२८॥ भणियं दुवालसंगं, गणिपिडगं तथ्य कथ्य एयाई। मन्नामि अहं भयवं, गीयथ्या तं समाइसह ॥२२९॥ एयं कुणह पसायं, चइ्तू सन्त्रं मणोगयं कसायं। जे**णं** उत्तमपुरिसा, पणयाणं वच्छला हुंति ॥२३०॥ एतेसिं उवहाणं. महानिसीहंमि सावयाणं जं। भणियं तेण न कप्पइ, आवस्सय-सुत्त-भणणंपि ॥२३१॥ ( श्रीमहानिसीथे--''पैचमंगल-महासुयक्खंधस्म पैचम-ज्ज्ञयणेग-चूलापरिकिखत्तस्स पवर-वयण-देवयाहिद्रियस्स " पहनउ उपधान पहिलड दुवालसम-विचालह आंबिल ८ प्रांति अष्टम ए पंचमंगल-महास्यक्वंधनो उपधान । "से भयवं कयराए त्रिहीय तमिरियावहीयमहीय गोयमा जहाणं पंचमंगलमहा-सुयक्षंधं से भयवं इरियावहिय-महिज्ञित्ताणं तओ किमहिज्झइ गो० सकथ्ययाइय चेइयवं दण तिहि णवरं सकत्थयं पगद्रम-बत्तीसाप आयंबिलेहि। अरिहंतथयं एग-चउध्यपहिं तिहिं आयंबिलेहिं, णाणध्ययं प्रो चडश्थेणं पंचित्र आयंबिलेहि अरहंतश्ययं प्रो चडश्थेणं

पंचआयंबिलेहिं'॥ प उपधानविधिः।१ नवकार दिन १८ २ इरियावही दिन १८।३ नमोत्थुणं दिन ३५।४ सब्बलोप अरिड० दिन ४।५ चडवीसथ्ययं दिन २८।६ झानस्तव-

विन ६ = पथं सर्वमिलीदिन १०९ पतावता तपसा पकमायरयकं शुद्धं पंचावरयक तपः कुतो लभ्यते अनुपधानावरयकाध्ययने ज्ञानाचारिकराधना इति महानीशीथे । श्रीमहानिशीथे-"तहा साहु साहुणोसमणोवासग-समणोवासगाहिं सिद्धं
सत्तसाहिमिय जणचजिवहेणेपि समणसंवेणे निध्धारगपारगो भिवज्ञा। धन्नोसि पुन्नलक्षणोसि तुमं उच्चारमाणेणे
गंधमुट्टीओ तश्रो जगगुरूणं जिणंदाणं पगदेसाओ गंधहहामिलाण-सियमल्ल-दामं गहाय सहत्थेणोभयक्षंधेसु समारोवयमाणेणं गुरुणा णो संदेहमेवं भिणयव्यो जहातो भो जम्मंतरसंचयगुरुपुन्नपभारस्लद्ध-संबिद्यसमहतं मणुयं देवाणुप्पियाणेपि इयं नरयतिरयगइदारमुक्शंति "अयं विधिरस्ति
साधुनां कर्तव्या बाकर्तव्या इति॥)आ पाठ पानानी कांबोमां हो॥

मुळ-ता किल किं वत्तव्वं, किरियाए तस्स अणुवहाणस्स । नाणायार-विराहण,-मावज्जइ तं पकुव्वंता ॥२३२॥

विवरीय सद्दर्शणं, सद्दयमाणाय दंसणायारं । स कञ्जस-किरिया-करणे, चरणायारं विराहेइ ॥२३३॥

एएण कारणेणं, आवस्सय-सत्त-सुद्धुववहाणं । कायव्वं जमवस्सं, कायव्वं समणसङ्देहि ॥२३४॥

यदुक्तं —श्रीअनुयोगद्वारस्रत्रे-''समणेणं सावएणं य अवस्स कायव्वं हवड् जम्हा। अंतो अहोनिसस्स य तम्हा आवस्सयं नाम ॥२॥ "

( वृत्ति:—'समणेण' गाहा, अमणादिना अहोरात्रस्य मध्ये यस्मादबद्यं क्रियते तस्मादावदयकम्, पत्रमेवाबदय-करणीयादिपदानामपि व्युत्पत्तिर्द्रष्टव्या )

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १०१

पुनः सूत्रं-''जण्णं इमे समणो वा समणी वा सावओ वा साविआ वा तिसत्ते तम्मणे तिष्ठसे तद्ब्झवसिए तित्व्व्व्वसाणे तद्द्वोवज्ते तद्प्पिअकरणे तब्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थ्यइ मणं अकरेमाणे जमओकाळं आवस्सयं करेंति से तं लोगुत्त-रियं भावावस्सयं."

(बृत्ति:--' जं णं'ति णमिति वाक्यालङ्कारे, यदिदं श्रमणादयस्ति चादि विशेषणविशिष्टा उभयकालं प्रतिक्रमणा-षावरयकं कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिकं भावावरयकमिति सण्टङ्कः, तत्र श्राम्यतीति श्रमणः-साधः, श्रमणी-साध्वी, शुणोति साधुसभीपे जिनप्रणीतां साप्राचारीमिति श्राप्रक:-श्रमणोपा-सकः, श्राविद्या-श्रमणोपासिका, वाद्यबद्याः समुचयार्थाः, तिस्मन्नेबाऽऽषद्यके चित्तं सामान्योपयोगरूपं यस्येति स तिचित:, तस्मिन्नेव मनो-विशेषोपयोगरूपं यस्य स तन्मना:, तत्रैव लेड्या शुभपरिणामरूपा यस्येति स तह्नेड्यः, तथा तदश्यवसितः-इहाध्यवसायोऽध्यवसितं, ततश्च तश्चितादि-भाषयुक्तस्य सतस्तिस्मन्नेवाऽऽवश्यकेऽध्यवसितं क्रियासम्पा-दनविषयमस्येति तदध्यवसितः, तथा तत्तीवाध्यवसायः-तस्मिन्नेयाऽऽयश्यके तीत्रं प्रारम्भकालादारभ्य प्रतिक्षणं प्रकर्षयायि प्रयत्नविद्योषलक्षणमध्यवसानं यस्य स तथा तथा 'तद्योपयकः' तस्य-आवश्यकस्यार्थस्तद्र्यस्तस्मिन्नुपयुक्त-स्तद्योपयुकः: प्रशस्ततरसंवेगविशुद्धश्यमानः, तस्मिननेव प्रति-सुत्रं प्रतिक्रियं चार्येषुपयुक्त इत्यर्थः, तथा 'तद्दपितकरणः' करणानि-सत्साधकतमानि देहरजोहरणमुखवस्त्रिकादीनि तस्मिन्-आवश्यके यथोचित-व्यापारनियोगेनार्षितानि-नियुक्तानि तानि येन स तथा, सम्यग्यथास्थानन्यस्तोप-करण इत्यर्थः, तथा 'तद्भावनाभावितः' तस्य-आवश्यकस्य

भावना-अन्यविच्छन्नपूर्वपूर्वनरसंस्कारस्य पुनः पुनस्तदनुष्ठानस्ता तया भावितोऽङ्गाङ्गिभावेन परिणतावश्यकानुष्ठान-परिणामस्तद्भावनाभावितः, तदेवं यथोक्तप्रकारेण प्रस्तुत-व्यितरेकतोऽन्थत्र कुत्रचिन्मनोऽकुर्येन उपलक्ष्णरवाद्वाचं कायं चान्यत्राकुर्यन, पकार्थिकानि वा विशेषणान्येतानि प्रस्तुतो-पयोगप्रकर्षप्रतिपादनपराणि, अमृति च लिङ्गविपरिणामतः अमणीयाविकयोरिष योज्यानि, तस्मात् तिच्वतादिविशेषण-विशिष्टाः अमणादयः 'उभयकालम्' उभयसन्ध्यं यदावश्यकं कुर्वन्ति तल्लोकोत्तरिकं, भावमाश्चित्य भावधासावावश्यकं चेति वा भावावश्यकम्,)

इति वचनात् ॥ साधु-साध्वी-श्रावक श्राविकाणां चावउयकं कर्त्तव्यमुपदिष्टं तत् करणं सूत्र-पाठमंतरेण न संवोभवीति
स पाठो गुरुवाचनानुगतोनुयोगद्वारं प्रसिद्धः सा वाचना सम्रहेशादते न संघट्टते सम्रहेश उद्देशपूर्वक इति दृश्यते, श्री अनुयोगद्वारे-'' नाणं पंचिवहं पण्णत्तं, तंजहा-आभिणिबोहियनाणं
स्वयनाणं ओहिनाणं मणपज्जवनाणं केवलनाणं तथ्य चत्तारि
नाणाई उप्पाइं ठवणिज्जाई णो उदिसंति णो सम्रहिसंति णो
अणुण्णविक्जंति, स्वयनाणस्स उद्देसो सम्रहेसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ, जइ स्वयनाणस्स उद्देसो सम्रहेसो अणुण्णा
अणुओगो य पवत्तइ, ता कि अंगपविष्टस्स उद्देसो
अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ?, कंगबाहिरस्स उद्देसो
सम्रहेसो अणुण्णा अणुओगो य पवत्तइ ?, अंगपविष्टस्सिव
उद्देसो जाव पवत्तइ, अणंगपविष्टस्सिव उद्देसो जाव पवत्तइ ?,
अंगवाहिरस्सवि उद्देसो ४ पवत्तइ, जइ अंगवाहिरस्स उद्देसो

# आचार्य श्री आतृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १०३

४ पवत्तरु, ताकिं आवस्सगस्स उद्देसो० पवत्तरु आवस्सगवरु-रित्तस्स उद्देसो ४ पवत्तइ, आवस्सगस्सवि उद्देसो ४ पवत्तइ, आवस्सगस्स वहरित्तस्सवि उद्देसो० पवत्तइ, जइ आवस्सगस्स उद्देसो ४ पवत्तइ तार्कि सामाइयस्स चडवीसध्थयस्स वंदणस्स पडिक्रमणस्य काउस्सम्मस्य पचनखाणस्य सन्वेसिपि एएसि उद्देसो सम्रद्देसो अणुन्ना अणुञीगो पवत्तइ । " इतिवचनात्। आवश्यकस्योद्देश-समृद्दशानुजाः ॥ मुळ-इय सुत्ताणुसारेण समणाणं सावयाण तुल्लत्ति । आवस्सयस्स किरिया. उवहाणं तस्सवि सरिथ्यं ॥२३५॥ भणियं महानिसीहे, न होइ आवस्सयस्स उवहाणं। भणणं किरिया करणं, तं च विणा तस्स नह जुग्गं ॥२३६॥ आवस्सर्यमि एगो, सुयक्खंधो धम्मराय करिखंधो । छचेवज्झयणाई, ताइ प्रणो इक सरगाई ॥२३७॥ तेसि छहिं दिणेहिं, उद्देसाई भवे अणुहाणं। स्रयक्लंध-सम्रहेसो, कायव्वो सत्तमदिणंमि ॥२३८॥ अद्वमदिणे अणुन्ना, एवं अद्वहिं दिणेहिं उवहाणं । आवस्सयस्स सरियं, समणाणं सावयाणं च ॥२३९॥ जम्हा अंतेवासी. जिणागमे जिणवरेहिं पन्नविया । जग्गा जग्गविहारी, समणा तह सावया चैव ॥२४०॥ पासथ्याईवि दुवे, सत्तम-अंगंमि पंचमंगंमि । आयारंगे वसवा, अणुवसवा इत्ति चितेह ॥२४१॥ अन्तो इमिणा आमंतणेण, आमंतिया दुवे गुरुणा ।

देस जयणाय तम्हा, जाणह समगाणुगा सद्हा ॥२४२॥ सावय उवहाणविही, महानिसीहंमि अध्य जा भणिया। तं केई मन्नेति य, केई बहुआ न मन्नेति ॥२४३॥ आवरसग अहदिणो,-वहाण किरिया जईण सन्वेसिं। पढम-चरित्तथराणं, सुपमाणं गच्छवासीणं ॥२४४॥ आवस्सगस्स अन्नो, जबहाण-विही न दीसई कोवि। जं आयरिया तु सदा, कुणंति सिक्खं निरइयारं॥२४५॥ यतः-"काले विणए बहुमाणे, उवहाणे तह अणिसवणे। वंजण अध्य तदुभए, अहिवही नाण-मायारी ॥१॥" इतिवचनात् ।। श्रावकाणामपि उपधानविधानमंतरेणातिचारो **ज्ञानाचारस्य पुनः** प्रतिक्रमणसूत्रे श्रावकाधिकारे '' वंदण वय सिक्लागारवेसु, सन्ना कसाय दंडेसु । गुत्तीसुय सिमईसुय, जो अइयारो यतं निंदे ॥१॥" इति वचनात् । यदि श्रावकाणा-मुपधानमंतरेणावदयकसूत्राध्ययनं गीतार्थाः स्थापयंत्यथवीपधा-नविधिना शुद्धामावश्यकक्रियां स्थापयंति तथा प्रमाणीक्रियते ॥ अथोपदेशविधिः--

मूल-पाईणं पडिणं वावि, दाहिणोदीणमेवय ।
सुद्धसुणी विहरंतो, सुद्धं धम्मं वियागरे ॥२४६॥
अहिंसा लक्खणो धम्मो, जिणंदेहिं पवेइओ ।
ववहार-निच्छएहिं, उस्सग्गा अववायओ ॥२४७॥
विहिवाउवएसंमि, निध्य सावज्जमागमे ।
अववाए विही निध्य, उवएसा जहहिओ ॥२४८॥

## आचार्य भी भातृचंद्रसूरि बन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १०५

उस्सगो अध्य विही, अईयणं ताणिजणविरदाणं ॥
तह आगिमस्साण पुणो, संक्खाणं वहमाणाणं ॥२४९॥
अतीतानागतानामन्तंतानां संख्येयानां वर्तमानानां जिनानाम्रपदेशिविधिवैणिका लिख्यते-श्रीआवश्यके-' करेमि भंते
सामाइयं सन्वं सावज्ञं जोगं पचक्खािम जावज्ञीवाए तिविहं
तिविहेणं मणेणं वायाए कायेणं न करेमि न कारवेिम करंतंिप
असं न समणुज्ञाणाि तस्स भंते पिडकमािम निदामि गरहािम अपाणं वोसरािम' तथा श्रीदश्चकालिके-४ अध्ययने'पढिमे भंते! महहृष् पाणाइवायाओ वेरमणं, सन्वं भंते! पाणाइवायं पचक्खािम, से सुहृमं वा वायरं वा तसं वा थावरं वा,
नेव सयं पाणे अङ्गाइज्ञा नेवऽन्नेहिं पाणे अङ्वायाविज्ञा
पाणे अङ्वायंतेऽवि अन्ने न समणुजाणािम, जावज्ञीवाए
तिविहं तिविहेणं० "

(अत्र वृक्तिलेशः---'पढमे भंते' इत्यादि, ख्रत्रकमप्रामाण्यात् प्राणातिपातविरमणं प्रथमं तस्मिन्, भदन्तेति गुरोरामन्त्रणं, 'महाव्रत' इति महच तद्वतं च महाव्रतं, महत्त्वं
चास्य शात्रकसंवन्ध्यणुव्रतापेक्षयेति । तस्मिन् महाव्रते 'प्राणातिपाताद्विरमण' मिति प्राणा-इन्द्रियादयः तेषामितपातः प्राणातिपातः-जीवस्य महादुःखोत्पादनं, न तु जीबातिपात पव, तस्मात् प्राणातिपाताद्विरमणं, विरमणं नाम
सम्यग्ज्ञान-श्रद्धानपुर्वतं सर्वथा निवर्तनं, भगवतोक्तमिति
वाक्यशेषः, यतश्चिवमत उपादेयमेतदिनि विनिश्चित्य 'सर्वे
भदन्त ! प्राणातिपातं प्रत्याख्यामी'ति सर्वमिति-निरवशेषं,
न तु परिस्थूरमेव, भदन्तेति गुर्वामन्त्रणं, प्राणातिपातमिति

पूर्वेषत्, प्रत्याख्यामीति प्रतिश्व इदः प्रतिषेषे आङामिमुख्ये ख्या प्रकथने, प्रतीपमिमुखं ख्यापनं प्राणातिपातस्य करोमि प्रत्याख्यामीति, अथवा-प्रत्याचक्षे-संवृतात्मा साम्प्रतमना गतमिषेषस्य आदरेणामिषानं करोमीत्यर्थः, 'से सुहुमं वे त्यादि, सेशब्दो मागधदेशीप्रसिद्धः अथ शब्दार्थः, स चोपन्यासे, तथया-'सुक्षमं वा वादरं या त्रसं वा स्थावरं वा अत्र स्थावरं वा अत्र स्थावरं वा त्यासे, तथया-'सुक्षमं वा वादरं या त्रसं वा स्थावरं वा अत्र स्थावरं वा त्यासे, तथया-'सुक्षमं वा वादरं या त्रसं वा स्थावरं वा अत्र स्थावरं वा त्यासे, तस्य कायेन व्यापादनासंभवात, तदेतिष्ठशेषनोऽभिष्टसु-राह-'बादरोऽपि' स्थूरः, स चेकको द्विधा त्रसः स्थावरक्ष, सुक्षम-त्रसः कुन्थवादिः स्थावरो बनस्पत्यादिः, वादरस्रसो गवादिः स्थावरः पृथिव्यादिः, पतान्, 'णेव सयं पाणे अद्वापक्षां ते नेव स्वयं प्राणिनो अतिपातयामि, नेवान्यः प्राणिनोऽतिपातयामि, प्राणिनोऽतिपातयतोऽप्यन्यान्न सम-तुजानामि, यावजीविमात्यादि पूर्ववतः।

प्वमाचारांगेपि । पुनः श्रीदश्वैकालिकेऽष्टमाध्ययने-''पुढविदगअगणिमारुअ,-तणरुक्खस्स बीयमा।तसा अपाणा जीवत्ति, इइ बुत्तं महेसिणा ॥२॥ तेसिं अच्छणजोएण, निश्चं होअव्वयं सिआ। मणसा कायवकेणं, एवं हवइ संजए ॥३॥''

(वृत्ति:—'पुढिवि'ति सूत्रं, पृथिव्युद्काप्तिवायवस्तृण-वृक्षसवीजा एते पञ्चैकेन्द्रियकायाः पूर्ववत्, त्रसाध प्राणिनो ह्रीन्द्रियादयो जोवा इत्युक्तं 'महर्षिणा' वर्धमानेन गौतमेन वेति सत्रार्थः ॥२॥ यतश्चैवमतः 'तेसि'ति सूत्रं अस्य व्याख्या— 'तेषां' पृथिव्यादीनाम 'अक्षणयोगेन' अहिसाव्यापारेण नित्यं 'भवितव्यं' स्यात् भिक्षुणा मनसा कायेन वाक्येन एभिः करणेरित्यर्थः, एवं वर्तमानोऽहिंसकः सन् भवति संयतो, नान्यथेति सूत्रार्थः ॥३॥)

## आचार्य श्री त्रातृचंद्रसूरि यन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १०७

पाक्षिकसूत्रे—" से पाणाइवाए चउव्विहे पन्नत्ते—द्व्यओ खित्तओ कालओ भावओ द्व्यओणं पाणाइवाए छस्न जीविन-काएस खित्तओणं पाणाइवाए सव्वलीए कालओणं पाणाइवाए दियावा राओवा भावओणं पाणाइवाए रागेणवा दोसेणवा ॥" इतिवचनात् । शीउत्तराध्ययने अध्ययन ८—"जग निस्सिएहिं भूएहिं, तसनामेहिं थावरेहिं च । नो तेसिमारमे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव ॥१॥"

( व्याख्या-बगत्-लोकस्तस्मिन् निश्रितानि-आश्रितानि नगिनिश्रतानि तेषु 'भृतेषु' जन्तुषु 'तञ्जनामे'ति त्रसनाम-कम्मोद्यवत्सु होन्द्रियादिषु 'स्थावरेषु' तन्नामकम्मोद्यविन्षु पृथिव्यादिषु. चः समुखये, 'नो' नैय 'तेसि'ति तेषु रक्षणी-यत्वेन प्रतीतेषु 'आरभेत' कुर्यात् दण्डनं दण्डः स चेहाति-पातात्मकस्तं, 'मणसा स्यसा कायसा चेव'ति आर्षत्वात् मनसा स्यसा कायेन, चशुब्दः शेषभङ्गोपलक्षकः, ततश्र-यथा मनसा यचसा कायेन च दण्डं नारभते तथा नाऽऽरम्भयेत् न चारभमाणानप्यन्याननुमन्येत, 'प्रस्' अय-धारणे भिन्नकम्म, )

तथा श्रीउत्तराध्ययने २४ अध्ययने-" संरंभ-समारंभे, आरंभंमि तहेवय। वयं पवत्तमाणं तु, मियत्तेज्ञ जयं जइ॥१॥"

(बृहत्वृत्तिः—तथा वाचिकः संरम्भः-परव्यापादनश्चम-श्रुद्रविद्यादिपरावर्त्तनासङ्गरुपस्चको ध्वनिरेवोपचारात्सङ्करप-द्याब्दवाच्यः सन, समारम्भः-परपरितापकरमन्त्रादि पराव-र्त्तनम् 'आरम्भः' तथाविधसंक्लेद्यतः प्राणिनां प्राणव्यपरो-पणक्षममन्त्रादिज्ञपनमिति )

श्रीओंपपातिकोपांगे स्थानांगे विवाहपद्मप्तयंगे च-''सत्तविहे विणए पं० तं०-णाणविणए दंसणविणए चरित्तवि-मणविणए वयविणए कायविणए लोगोवयारविणए ''तत्रापि''से किं तं वयविणए वयविणए दुविहे पं० तं० पस-ध्यवयविणए अपसध्यवयविणए, से किं तं अपसध्यवयविणए जैयवए सावज्जे स किरिए ककसे कडुए निठ्ररे फरुसे अण्हय-करे छैदकरे भेदकरे परिवावणकरे उद्दवणकरे भुओवघाइए तहप्पगारं वयं धारेज्ञा से तं अपसध्यवयविषण, से किं तं पसध्यवयिणए एवं चेव पसध्यं जेयव्यं से तं पसध्यवय-विणए ।।'' श्रीआचारांगे-प्रथमाध्ययन-सञ्चपरिज्ञायाः प्रथमो-देशके-''तत्थ खळु भगवता परिण्णा पवेइआ इमस्स चेव जीवि-यस्स परिवंदणमाणणपूर्यणाए जाई-मरणमोयणाए दुक्खपडि-घायहेडं एयावंति सन्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजा-णियच्या भवंति जस्सेते छोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे तिवेमि ॥

(बृत्तिलेश:—'तत्र' कर्मणि व्यापारे अकार्षमहं करोमि करिष्वामीत्यात्मपरिणतिस्वभावतया मनोवाकाय-व्यापार- क्षेप 'भगवता' बोर-बर्छमान-स्वामिना परिक्षानं परिक्षा सा प्रकर्षण प्रशस्ताऽऽदी वा वेदिता प्रवेदिता, पतच सुध्रम्में स्वामी जम्बस्वामिनाम्ने कथयति, सा च द्विधा-वपरिक्षा प्रत्याख्यानपरिक्षा च, तत्र क्षपरिक्षया सावच व्यापारेण बन्धो भवतीत्येवं भगवता परिक्षा प्रवेदिता, प्रत्याख्यानपरिक्षया सवतीत्येवं भगवता परिक्षा प्रवेदिता, प्रत्याख्यानपरिक्षया च सावच्योगा वन्धदेतवः प्रत्याख्याया इत्येवंक्षपा चेति ।

### आचार्य श्री भ्रातृचंद्रस्रिर यन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. १०९

तत्र जीवितमिति-जीवन्त्यनेनायु: कर्मणेति जीवितं-प्राण-धारणस्, तच प्रतिप्राणि स्वसंविदितमिति कृत्वा प्रत्यक्षा-सन्नवाचिनेदमानिहिंदाति, च शब्दा वश्यमाणजात्यादिसमु-बयार्थः पवकारोऽवधारणे, अस्यैव जीवितस्यार्थे परिफल्ग-सारस्य तडिल्लताविलसित-चञ्चलस्य बहुपायस्य दोर्घसखार्थ क्रियास प्रवर्तते तथाहि-जीविष्याम्यहमरोगः. सखेन भोगान भोक्ष्ये. ततो व्याध्यपनयनार्थे स्नेहापान लावकपिशितभक्षणा-दिषु कियासु प्रवर्त्तते, तथाऽल्पस्य सुखस्य कृते अभिमान-ब्रहाकुलितचेता बहारमभपरिब्रहाद बहुशुभं कर्मादते, उक्तं च-" हे वाससी प्रवरयोधिदपायशृद्धा, शब्याऽऽसनं करि-बरस्तरगो रथो वा । काले भिष्म नियमिताशनपानमात्रा, राज्ञः पराक्यमित्र (पराक्षी रोगः) सर्वमवेहि शेषव् ॥ १ ॥ पुष्टबर्थमत्रभिद्व यत् प्रणिधिप्रयोगैः, संत्रासदोषकछुषो नृप-तिस्तु भुङ्के। यद् निर्ध्भयः प्रशमसौख्यरतिश्च भैक्षं, तत् स्वादतां भूदामुपैति न पार्थिवान्नम् ॥ २ ॥ भूत्येषु मन्त्रिषु सतेषु मनोरमेषु, कान्तासु वा मधुमदाङ्करितेक्षणासु। विश्व-म्भमेति न कदाचिद्पि क्षितीशः, सर्वाभिशक्कितमते: कतरन सौष्यम् ? ॥३॥'' तदेवमनवबुद्धतरुणिकशस्यपसाशचश्रस्त्री-वितरतयः कर्माश्रवेषु जीवितोपमद्दिरूपेषु प्रवर्तनते. तथा-Sस्यैव जीवितस्य परिवन्दनमाननपूजनार्थे हिंसादिप प्रवर्तन्ते. तत्र 'परिवन्दनं ' संस्तय: प्रशंसा तद्रथमाचेष्टते, तथाहि-अहं मयुरादि पिशिताशनाद्वली तेजसा देदीप्यमानो देवकुमार इव लोकानां प्रशंसास्पदं भविष्यामीति, 'माननम्' अभ्य-त्थानासनदानाञ्जलिप्रग्रहादिरूपं तदर्थे वा चेष्टमानः कर्माचि-नोति. तथा पुजनं पुजा-द्रविणवस्त्रान्नपानसःकारप्रणामसे वाविद्योषरूपं तदर्थे च प्रवर्तमान: क्रियासु कर्माश्रवैरात्मानं सम्भावयति, तथाहि-'वीरभोग्या वसन्धरे' ति मत्वा परा-

क्रमते, दण्डभयाच सर्वा प्रजा विभ्यतीति दण्डयति, इत्येवं राज्ञामन्येषामपि यथा सम्भवमायोजनीयम् , अत्र च वन्द-नादीनां इन्द्रसमासं (पक्षवद्भावं च) कृत्वा तादर्थ्यं चतुर्थी विधेया, परिवन्दनमाननपूजनाय जीवितस्य कर्माश्रवेषु प्रवर्तन्त इति समुदायार्थः । न केवलं परिवन्दनाद्यर्थमेव कर्मादते, अन्यार्थमप्यादत इति दर्शयति-जातिश्च मरणं च मोचनं च जातिमरणमोचनमिति समाहारद्वन्द्वात्तादर्थ्ये चतुर्थी पतदर्थे च प्राणिनः क्रियासु प्रवर्त्तमानाः कर्माददते, तत्र जात्यर्थे कौञ्चारि (कार्तिकेय) वन्दनादिकाः क्रिया विधत्ते. तथा यान यान कामान ब्राह्मणादिभ्यो ददाति तांस्तानन्य-जन्मनि पुनर्जातो भोक्ष्यते, तथा मनुनाऽप्युक्तम्-"वारिद-स्तृतिमान्नोति, सुखमक्षयमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टामायु-ष्क्रमभयप्रदः ॥ १ " अत्र चैक्रमेव सभाषितम्- 'अभयप्रदान' मिति तपमध्ये कणिकावदिति, पवमादिकुमार्गीपदेशाद हिंसादौ प्रवृत्ति विद्धाति । तथा मरणार्थमपि पितृपिण्ड-दानादिषु कियास प्रवर्तते, यदि वा ममानेन सम्बन्धी व्यापादितस्तस्य वैरनिर्धातनार्थे वधवन्धादौ प्रवर्तते, यदि वा मरणनिवृत्त्यर्थमात्मनो दुर्गाचुपयाचितमजादिना बर्लि विधत्ते यद्योधर इव पिष्टमयकुक्कुटेन, तथा मुक्त्यर्थमञ्जाना-बतचेतसः पञ्चाप्तितपोऽनुष्ठानादिकेषु प्राण्युपमईकारिषु प्रवर्त्तमानाः कर्माद्दते, यदि वा जातिमरणयोविमोचनाय हिंसादिका: क्रिया: कुर्वते, 'बाइमरणभोयणाप'ति वा पाठा-न्तरं, तत्र भोजनार्थे कृष्यादिकर्मसु प्रवर्त्तमाना वसुधाजल-ज्यलनपवन- वनस्पतिहित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियव्यापत्तये व्याप्रि-यन्त इति । तथा दःखप्रतिचातमुर्शे-कृत्यातमपरित्राणार्थ-मारम्भानासेवन्ते, तथाहि-व्याधिवेदनार्ता लावकपिशितमः दिरादि आसेवन्ते, तथा वनस्पतिमुख्त्वक्पत्रनिर्यासादि-

## आचार्य श्री भातृचंद्रसूरि प्रन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. १११

सिद्धशतपाकादितैलार्थमग्न्यादिसमारम्भेण पापं कुर्वन्ति स्वतः कारयन्त्यन्यैः कुर्वतोऽन्यान् समनुजानत इत्येषमतीतानागतकालयोरिप मनोवाक्काययोगैः कर्मादानं विद्धतित्या-योजनीयम् । तथा दुःखप्रतिघातार्थमेव सुखोत्पत्यर्थं च कल्लात्रप्रत्यार्थे स्व तासु तासु क्रियासु प्रवर्त्तमानाः पापकर्मासेवन्त इति, )

# श्री आचारांगे प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशके-

"प्रशंपि जाणे उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणा विणयं वयंति, छंदोवणीया अज्झोववण्णा, आरंभसत्ता पकरंति संगं, से वसुमं सन्वसमण्णागयपणाणेणं अप्पाणेणं अकरणिजं पावं कम्मं णो अण्णेसिं, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्ञा णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्ञा णेवऽण्णे छज्जीवनिकायसत्थं समारंभावेज्ञा, जस्से ते छज्जीवनिकायसत्थसमारंभ परिण्णाया भवंति से हु सुणी परिण्णायकम्मेतिवेमि ॥

( वृत्तिः—पतिस्मन्निप-प्रस्तुते षायुकाये, अपिशब्दात् पृथिव्यादिषु च समाश्रितमारम्भं ये कुव्वेन्ति ते उपादीयन्ते, कम्मणा वध्यन्त इत्यर्थः, एकस्मिन जीवनिकाये वध्यवृत्तः रोषनिकायवध्जनितेन कर्मणा वध्यते, किमिति ?-यतो न क्षेक्रजीयनिकायविषय आरम्भः शेषजीवनिकायोपमर्दमन्तरेण कर्तुं शक्यत इत्यतस्त्वमेषं जानीदि, श्रोतुरनेन परामर्शः, अत्र च हितीयार्थं प्रथमा, ततश्चेवमन्वयो स्नगयितव्यः—पृथिव्याषारम्भिणः शेषकायारम्भकर्मणा उपादीयमानान जानीदि, के पुनः पृथिव्याधारम्भिकः शेषकायारम्भकर्मणोपादीयन्ते ?

इति, आह ' जे आयारे ण रमंति ' ये द्वविदितपर्मार्थां ज्ञानदर्शनचरणतपोत्रीर्याख्ये पश्चप्रकाराचारे 'न रमन्ते' न धृति कुर्वन्ति, तदधृत्या च पृथिव्याचार्मिभणः, तान् कर्म्मभिरुपादीयमानान् जानीहि, के पुनराचारे न रमन्ते ?, द्याक्यदिगम्बरपार्श्वस्थादयः, किमिति है, यत आहर्आरं-भमाणा विणयं वयंति ' आरम्भमाणा अपि पृथिव्यादीन जीवान विनयं संयमप्रेष भाषन्ते, कर्माष्टक-विनथनाहितयः संयमः, ज्ञाक्यादयो हि वयमपि विनयव्यवस्थिता इत्येवं भाषन्ते, न च प्रथिव्यादिजीवाभ्यपगमं कुर्वन्ति, तदभ्यपगमे या तदाश्रितार मिभत्वात ज्ञानाचाचार विकलत्वेन नगुराीला इति। कि पुनः कारणं ? येनैवं ते दृष्टशीला अपि विनय-व्यवस्थितमात्मानं भाषन्ते इत्यत आह-' छन्दोवणीया अज्झो-बवण्णा ' छन्दः-स्वाभिषाय: इच्छामात्रमनाछोचितपृर्वापरं विषयाभिलाषो वा, तेन छन्दसा उपनीता:-प्रापिता आर-म्भमार्गमिषनीता अपि विनयं भावन्ते, अधिकमत्यर्थमुपपन्ना तिश्वतास्तदात्मकाः अध्यपपन्नाः विषयपरिभोगायत्रज्ञीविता इत्यर्थः, य पवं विषयाशाकिषितचेतसस्ते कि कुर्युरित्याह-'आरंभसत्ता पकरंति संगं 'आरम्भणमारम्भ: सावधातुष्टानं तस्मिन् सक्ताः-तत्पराः प्रकर्षेण कुर्व्वन्ति, सज्यन्ते येन संसारे बीवाः ससङ्गः-अष्टविधं कर्म्मविषयसङ्गो वा तं सङ्गं प्रकर्विन्त, सङ्गाच पुनरपि संसारः, आजवं जवीभावरूपः, प्यं प्रकारमपायमधाप्नोति घडनीवनिकायधातकारीति ॥ अथ यो निवृत्तस्तदारम्भात् स किविशिष्टो भवतीत्यत आह-'से' इति पृथिन्युदेशकाभिद्वितनिवृत्तिगुणभाक् षड्जीवनि-कायहनन निवत्तो 'वसमान' वसनि द्रव्यभावभेदाद विधा द्रव्य-वस्नि मरकतेन्द्रनीलवज्ञादीनि भाववस्नुनि-सम्यक्त्यादीनि तानि यस्य यस्मिन् वा सन्ति स बसुमान् , द्रव्यवानित्यर्थः.

🕫 च भावचसुभिर्वसुमस्वमङ्गीकियते, प्रज्ञायन्ते यैस्तानि प्रज्ञानानि-यथायस्थितविषयग्राहीणि ज्ञानानि सर्वाणि सप्र-न्वागतानि प्रज्ञानानि यस्यात्मनः स सर्वसमन्त्रागतप्रज्ञानः-सर्वावबोधविशेषानुगतः सर्वेन्द्रियज्ञानैः पदुभिर्यथावस्थितः विषयप्राहिभिरविपरीतैरनुगत इतियावत्, तेन सर्वसमन्वा-गतप्रज्ञानेनात्मना, अथवा सर्वेषु द्रव्यपर्यायेषु सम्यगनगतं प्रशानं यस्यात्मनः स सर्वसमन्धागतप्रशान आत्मा, भगवद्ग-चनप्रामाण्यादेवमेतत् द्रव्यपर्यायज्ञातं नान्यथेति सामान्यवि शेषपरिच्छेदान्निश्चिताशेषक्षेयप्रपञ्चस्वरूपः सर्वसमन्वागत-प्रज्ञान आत्मेत्युच्यते, अथवा-शुभाशुभफलसकलकलापप-रिज्ञानान्नरकतिर्थग्नरामरमोक्षसुखस्त्ररूपपरिज्ञानाचापरित-ष्यन्ननैकान्तिकादिगुणयुके संस रसुखे मोक्षानुष्ठानमाविष्कु र्वन सर्वसमन्वागतप्रज्ञान आत्माऽभिधीयते तेनैवंविधेनात्मना 'अकरणीयम् ' अकर्तव्यमिह परलोकविरुद्धत्वादकार्यमिति मत्या नान्वेषयेत् , न ततुपादानाय यत्नं कुर्यादित्यर्थः, कि पुनः तदकरणीयं नान्वेषणीयमिति ?, उच्यते, 'पापं कर्म' अधःपतनकारित्वात्पापं, क्रियत इति कर्म, तचाष्टादशिवधं प्राणातिपातमृवाबादादत्तादानमैथुनपरिगृहकोधमानमायालो-भप्रेमद्वेषकलहाभ्याख्यानपैशुभ्यपरपरिर्वादरत्यरतिमायामुषाः मिध्याद्दीनशस्यास्यमिति, प्वमेतत् पापमष्टादशभेदं नाः न्धेषयेत्-न कुर्यात् स्वयं, न चान्यं कारयेत्, न कुर्वाणमन्य-मनुमोदेत । पतदेवाह-'तं परिण्णाय मेहावी 'त्यादि 'तत' पापमष्टादशप्रकारं परि:-समन्तात् ज्ञात्वा मेथावी-मर्यादाबान् नैव स्वयं पङ्जीवनिकायशस्त्रं स्वकायपरकायादिभेदं समार-भेत नैवान्य: समारम्भयेत् न चान्यान् समारभमाणान् सम-नुजानीयात, पर्व यस्यैते सुपरीक्ष्यकारिण: षड्जीवनिकाय-शसमारम्भाः तद्विषयाः पापकरमेविशेषाः परिज्ञाता

इपरिक्षया प्रत्याख्यानपरिज्ञया च स पत्र मुनिः, प्रत्याख्यात-कर्मात्वात-प्रत्याख्याताद्येषपापागमत्वात . तदन्यैवंविधपुरु षषदिति । इति इाब्होऽध्ययनपरिसमाप्तिप्रदर्शनाय. अवी-मीति सधर्मस्याम्याह स्वमनीविकाञ्यावृत्तये,)

श्री आचारांगे द्वितीयाध्ययने द्वितीयोद्देशके-

"से आयबले से नाइबले से मित्तबले से पिचबले से देव-बले से रायबले से चोरबले से अतिहिबले से किविणबले से समणबले. इचेएहिं विरूवरूवेहिं कज्जेहिं दंडसमायाणं संपे-हाए भया कज्जइ, पातमुक्खुत्ति मन्नमाणे, अदुवा आसंसाए तं परिण्णाय मेहावी नेव सयं एएहिं कज्जेहिं दंई समारंभिज्जा नेव असं एएहिं कज्जेहिं दंडं समारंभिज्जा नेव असं एएहिं कज्जेहि दंड समारंभाविज्ञा एएहिं कज्जेहिं दंड समारंभंतंपि अर्ब न समग्रजाणिज्जा, एस मगो आरिएहिं पवेडए, "

(बत्तिः -- किंच 'से आयब छे' आत्मनो बलं शकत्य-पचय आत्मबलं तरमे भाषीतिकत्वा नानाविधेरुपायैरात्मः पुष्टे तास्ताः कियाः पेहिकामुध्मिकोपघातकारिणोविधत्ते. तथाहि-'मांसेन पुष्यते मांस' मितिकत्वा पुरुचेन्द्रियद्याताः दावपि प्रवर्तते, अपराध लम्पनादिकाः सत्रेणेवाभिहिताः. प्यं च ज्ञातिबलं-स्वजनबलं मे भावीति, तथा तन्मित्रबलं मे भविष्यति येनाहमापदं सखेनैय निस्तरिष्यामि, तत्पेत्य-बलं भविष्यतीति बस्तादिकमुपहन्ति, तहा देवबलं भावीति पचनपाचनादिका: क्रिया विधत्ते, राजवळं वा मे भविष्य-तीति राजानमुपचरति, चौर्यामे वा वसति, चौर्भागं वा प्राप्स्यामीति चौरानपचरति. अतिथिवलं वा मे भविष्यती-ध्यतिथीनपचरति, अतिथिहिं नि:स्पृहोऽभिधीयते इति. उक्तं

### आचार्य श्री धातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ११५

च-" तिथिपबोत्सवा: सर्वे, त्यका येन महात्मना । अतिथि तं विज्ञानीयाच्छेषमभ्यागतं चिदुः ॥१॥" पतदुक्तं भवति-तद्वलार्थमपि प्राणिष दण्डो न निक्षेत्रव्य इति. एवं क्रपण-श्रमणार्थप्रपि बाच्यमिति, एवं पूर्वोक्तैः 'विरूपरूपैः' नाना-प्रकारैः पिण्डदानादिभि: काँगै: 'दण्डसमादान' मिति दण्ड-यन्ते-व्यापाद्यन्ते प्राणिनो येन स टण्डस्तस्य सम्यगादानं-ग्रहणं समादानं, तदातमञ्जलादिकं मम नाभविष्यत् य**चहमे**-तन्नाकरिष्यमित्वेवं 'संप्रेक्षया' पर्यालोचनया पर्व संप्रेक्ष्य वा भयात् क्रियते, पर्व तावदिह भवमाश्रित्य दण्डसमादान-कारणमुपन्यस्तम्, आमुष्मिकार्थमपि परमार्थमजानानेर्दण्ड-समादानं कियत इति दर्शयति-'पायमोक्खो'ति इत्यादि, पातयति पासयतीति वा पापं तस्मान्मोक्षः, 'इति' हेतौ, यस्मात्स मम भविष्यतीति मन्यमानः दण्डसमादानाय प्रवर्तत इति, तथाहि-हुतभुजि षड्जीबोपधातकारिणि शस्त्रे नानाविधोपायप्राण्युपद्यातात्तपापविध्वंसनाय पिष्पलश्चमी-समित्तिलाज्यादिकं शठव्यद्याहितमतयो जुहृति, तथा पित-पिण्डदानादौ धस्तादिमांसोपस्कतभोजनादिकं विज्ञातिभय उपकल्पयन्ति, तद्भुकशेषानुझातं स्वतोऽपि भुञ्जते, तदेवं नानाविधेरुपायैरज्ञानोपहतबद्भयः पापमोक्षार्थे दण्डोपादानेन तास्ताः कियाः प्राण्युपघातकारिणीः समारभमाणाः अनेक-भवदातकोटीदुम्मीचमघमेषोपाददत इति । किश्च-'अदुवा' इत्यादि, पापमोक्ष इति मन्यमानो दण्डमादत्त इत्यक्तम्. अथवा आशंसनम् आशंसा-अपाप्तपापणाभिलाषस्तदर्थे दण्ड-समादानमादत्ते. तथाहि-ममैतत परुत्परारि वा प्रेत्य वोप-स्थास्यते इत्याशंसया क्रियास प्रवर्तते, राजानं बाऽर्थाशा-विमोहितमना अवलगति, उक्तं च " आराध्य भूपतिमनाप्य ततो धनानि, भोक्ष्यामहै किल चयं सततं सुखानि । इत्या-

द्यया धनविमोहितमानसानां, कालः प्रयाति मरणावधिरेव पंसाम ॥१॥ पहि गच्छ पतोत्तिष्ठ, यद मौनं समाचर। इत्याचाञाग्रहग्रस्तै:, क्रीडन्ति धनिनोऽथिभिः इत्यादि ॥ तदेवं ज्ञात्वा कि कर्त्तव्यमित्याह-'तदि'ति सर्व-नाम प्रकारतपरामर्शिः, 'तत' शस्त्रपरिक्षोक्तं स्वकायपरकायाः दिभेदभिन्नं शस्त्रम्, इह या यदकम् अप्रशस्तगणमूळस्थानं -विषयकषायमातापित्रादिकं, तथा कालाकालसमुत्यानक्षण-परिज्ञानश्रीत्रादिविज्ञानप्रदाणादिकं तथाऽऽस्मबलाधानाचर्ध च दण्डसमादानं क्षपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् 'मेधावी' मर्यादावर्त्ती, झातहेयोपादेय: सन् किं कुर्यादित्याह-'नेषसयं' इत्यादि, नैय स्वयम्' आत्मना पतीः आत्मबलाधानादिकै: 'कार्यैः' कर्तव्येः समुपस्थितैः सद्भिः 'दण्डं' सत्योपघातं समारभेत्, नाष्यन्यम् अपरमेभिः कार्यै-हिंसानतादिकं दण्डं समारम्भयेत्, तथा समार्भमाणमध्यपरं योगित्रकेण न समनुज्ञापयेद्। एष चोपदेशस्त्रीर्थक्रद्धिरिस-हित इत्येतत सुधर्मस्वामी जम्बृस्वामिनमाहेति द्र्यात-'एस' इत्यादि, 'एष' इति ज्ञानादियुक्तो भावमार्गी योगत्रि-ककरणिकिण दण्डसमादानपरिहारलक्षणो वा 'आर्थै:' आराधाताः सर्वहेयधम्मेभ्य इत्यार्याः-संसारार्णवतटवर्तिनः क्षीणघातिकम्माद्याः संसारोदरियवस्वतिभाषविदः तीर्थकत-स्तै: 'प्रकर्षेण' सदेवमनुजायां पर्षदि सर्वस्वभाषानगामिन्या बाचा यौगपद्याशेषसंशीतिच्छेत्या प्रकृषेण वेटितः-ऋथितः प्रतिपादित इतियावत . )

श्री आचारांगे षष्ठाध्ययने पंचमोद्देशके-'' ओए सिम-यदंसणे, दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं आइक्से, विभए किट्टे वेयवी, से उद्विएसु वा अणुट्टिएसु वा

## आचार्य श्री भ्रात्चंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ११७

सुरमुसमाणेसु पवेयए संति विरइं उत्तसमं निवाणं सोयं अज्ञ-वियं मह्तियं छात्रवियं अणड्वत्तियं सन्वेसिं पाणाणं सन्वेसिं भूयाणं सन्वेसि जीवाणं सन्वेसिं सत्ताणं अणुवीइ भिक्ख् धम्ममाइक्खिज्ञा अणुवीइ भिक्ख् धम्ममाइक्खमाणे नो अत्ताणं आसाइज्ञा नो परं आसाइज्ञा नो अन्नाइं पाणाइं भूयाईं जीवाईं सत्ताईं आसाइज्ञा, से अणासायए अणासाय-माणे वज्झपाणाणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ सरणं महाम्रणी,"

( वृत्ति:--'ओजः' पक्षो रागादिविरहात् सम्यग् इतं-गतं दर्शनमस्येति समितिदर्शनः, सम्यग्दष्टिरित्यर्थः यदिवा 'ज्ञामितम्' उपशमं नीतं 'एशंनं' दृष्टिर्जानमस्येति ज्ञामित-दर्शनः, उपशान्ताध्यवसाय इत्यर्थः, अथवा समतामितं-गतं दर्शनं-दृष्टिरस्येति समितदर्शनः, समद्ष्टिरित्यर्थः, प्रवस्भृतः स्पर्शानिधिसहेत, यदिवा धर्ममाचक्षीतेत्यत्तरिक्रयया सह सम्बन्धः, किमभिसन्धाय धर्ममाचश्लीतेति दर्शयति-'दयां' कृपां 'लोकस्य' जन्तुलोकस्योपरिद्रव्यतो झात्या क्षेत्रतः प्राचीनं प्रतीचीनं दक्षिणमुद्दीचीनमपरानपि दिन्त्रिभागान-भिसमीक्ष्य सर्वत्रदयां कुर्वन् धर्ममाचक्षीत, कालतो याद-भावतोऽरक्तोऽद्विष्ट:. कथमाचक्षीत ?-तद्यथा सर्वे जन्तवो दु:खद्विषः सुखल्डिप्सवः आत्मीपमया सदा द्रष्टव्या इति, उक्तं चर्णं न तत्परस्य संद्ध्यात् , प्रतिकुछं यदात्मनः। पप सङ्ग्राहिको धर्माः, कामाद्न्यः प्रवर्त्तते ॥१॥ " इत्यादि. तथा धर्ममाचक्षाणो 'विभजेत्' द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदैराक्षे-पण्यादिकथाविद्योषैर्वा प्राणातिपातम्बादादसादानमैथनप-रिग्रहरात्रीभोजनविरतिविद्योपैयां धर्मं विभजेत. यदिवा

कोऽयं पुरुष: कं नतो देवताविद्योषं अभिगृहीतोऽनभिगृ-होतो वा? एवं विभजेत, तथा की र्तयेद् वतानुष्ठानफलं, कोऽ सौ कीर्सयेद ?-वेदथिद्, आगमविदिति । नागार्ज्जनीयास्तु पटन्ति-" जे खळु समणे बहुस्सुष बङझागमे आहरणहेउ-कुसले धम्मकहालद्विसम्पन्ने खेतं कालं पुरिसं समासज्ज केयं पुरिसे कं वा दरिसणमभिसम्पन्नो ? पत्रं गुणजाइप पभू धम्मस्स आघवित्तप " इति, कण्टबं। स पुन: केषु निमित्तभृतेषु कीर्त्तयेदित्याहः 'स' आगमवित् स्वसमयंपरसमः यज्ञः 'उत्थितेषु वा' भावोत्थानेन यतिषु, वाशब्द: उत्तरा-पेक्षया पक्षान्तरद्योतक:, पार्श्वनायशिष्येषु चतुर्यामोत्यि तेष्वेव बर्द्धमानतीर्याचार्यादिः पश्चयामं धर्मी प्रवेदयेदितिः स्प्रशिष्येषु या सदोत्यितेष्वज्ञातज्ञापनाय धर्म प्रवेदयेदिति. 'अनुिथतेषु वा' श्रावकादिषु 'शुश्रूषमाणेषु' धर्मे श्रोतुमि-च्छत्सु गुवदि: पर्युपास्ति कुर्वत्सु वा संसारोत्तारणाय धर्मी प्रवेदयेत्। किम्भूतं प्रवेदयेदित्याह-शमनं शान्तिः, अहिंसे-त्यर्थः, तामाचक्षीत, तथा चिरतिम्, अनेन च मृपावादाहिः दोषव्रतसङ्ख्रहः, तथा उपरामं क्रोधजयाद, अनेन चोत्तरगुण-सङ्ग्रहः, तथा निर्वृत्तिः निर्वाणं मृलगुणोत्तरगुणयोरैहिकामुः ष्मिकफलभूतमाचक्षीत, तथा 'शौचं' सर्वीपाधिश्चचित्वं निर्वाच्यव्रतधारणं, तथा आर्जवं मायावकतापरित्यागात्. मार्द्यं मानस्तब्धतापरित्यागातः, तथा लाघवं सवाद्याभ्य-न्तरग्रन्थपरित्यागात्, कथमाचक्षीतेति दर्शयति-'अनित-पत्य' यथावस्थितं चस्त्वाममाभिहितं तथाऽनतिक्रम्येत्यर्थः. केषां कथयति ?-' सर्वेषां प्राणिनां' दशविधाः प्राणा विश्वन्ते येषां ते प्राणिनस्तेषां सामान्यतः संज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां. तथा 'संबंधां भूतानां' मुक्तिगमनयोग्येन भव्यत्वेन भूतानां-व्यवः स्थितानां, तथा 'सर्वेषां जीवानां' संयमजीवितेन जीवतां

### आचार्य श्री भात्चंद्रसर ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. ११९

निजीविष्णां च, तथा 'सर्वेषां सत्त्वानां' तिर्यक्रनरामराणां संसारे किल्ड्यमानत्या करुणास्पदानां, प्रकार्थिकानि वेतानि प्राणादीनि वचनानि इत्यतस्तेषां क्षान्त्यादिकं दशविधं धर्मी यथायोगं प्रागुपन्यस्तं शान्त्यादिपदाभिहितम् 'अनु-विचिन्त्य' स्वपरोपकाराय भिक्षणशीलो भिक्षधम्मकयाः लिक्समान 'आचक्षीत' प्रतिपादयेदिति । यथा च धर्मी कथयेत्तथाऽऽह-स भिश्चर्समुश्चरतुविचिन्त्य-पूर्वापरेण धम्मै पुरुषं वाऽऽलोच्य यो यस्य कथनयोग्यस्तं धर्ममाचक्षाणः आङिति मर्यादया यथाऽनुष्ठानं सम्यग्दर्शनादेः शातना आ शातना तया आत्मानं नो आशातयेत्, तथा धर्म्ममाचक्षीत यथाऽऽत्मन आशातना न भवेत् , यदिवाऽऽत्मन आशातना ब्रिधा ब्रव्यतो भावतश्च, द्रव्यतो यथाऽऽहारोपकरणादेर्द्रव्यस्य कालातिपातादिकताऽऽद्यातना-वाधा न भवति तथा कथयेद, आहारादिद्रव्यवाधया च शरीरस्यापि पीडा भावाशातना-रूपा स्यात . कथयतो वा यथा गात्रभङ्गरूपा भावाशातना न स्यात् तथा कथयेदिति, तथा नो परं शुश्रुषुं आज्ञातयेद्-हील्येद, यत: परो हीलनया क्रिपतः सन्नाहारोपकरणशरीरा-न्यतरपीडाये प्रवर्तेतेति. अतस्तदाशातनां वर्ज्जयन् धर्म्म ब्रुयादिति, तथाऽन्यान वा सामान्येन प्राणिनो भृतान ्र जीवान् सत्वान्नो आञातयेद्-बाधयेत्, तदेवं स मुनिः स्वतोऽनाञातकः परैरनाञातयन् तथाऽपरानाञातयतोऽन-नुमन्यमानोऽपरेषां वध्यमानानां प्राणिनां भृतानां जीवानां सन्धानां यथा पोडा नोत्पचते तथा धर्म्म कथयेदिति, तचया-यदि लोकिककपावचनिकपार्श्वस्थादिदानानि प्रशंसति अव-टतटागादीनि वा ततः पृथिवीकायादयो व्यापादिता भवेयः, अथ द्वयति ततोऽपरेषां अन्तरायापादनेन तत्कृतो बन्ध-विषाकानुभवः स्यात्, उक्तं च-" जे उ दाणं पसंसंति.

### १२० श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम.

वहिमच्छिति पाणिणं। जे उणं पिहसेहिति, वित्तिच्छेअं किरिति ते ॥१॥" तस्मात्तद्दानावदतद्दागादिविधिपतिषेषग्युदासेन यथाविस्थतं दानं शुद्धं परूपयेत् सावधानुष्ठानं
चेति, पवं च बुवन्नुभयदोषपरिष्टारी जन्त्नामाध्वासभूमिभंवतीति,पतदृदृष्टान्तद्वारेण दर्शयति यथाऽसी द्वोपोऽसन्दीनः
शरणं भवत्येवससाविष महासुनि:)

श्री आचारांगे सप्तमाध्ययने प्रथमोद्देसके-" इहमेगेसिं आयारगोयरे नो सुनिसंते भवति ते इह आरंभट्टी अणुवय-माणा हण पाणे घायमाणा हणओ यावि समणुजाणमाणा "

(वृक्ति:—'इह' अस्मिन्मनुष्यलोके 'पकेषां' पुरस्कृताशुभक्तम्मिविपाकानामाचरणमाचारो-मोक्षार्थमनुष्ठानिविशेष-स्तस्य गोचरो-विषयः नो सृष्टुनिद्यान्तः-परिचितो भवति, ते चापरिणताचारगोचरा ययाभृताः स्युः तथा दर्शयितुमाह- 'ते' अनधीताचारगोचरा भिक्षाचर्याऽस्नातस्येद्मलपरीणहिताः 'इह' मनुष्यलोके आरम्भार्थिनो भवन्ति, ते वा शाक्याद्योऽन्ये वा कुशीलाः साथधारम्भार्थिनः, तथा विहारारामत्र्वागकृपकरणोदेशिकभोजनादिभिधम्म यदन्तोऽनुवद्यतः, तथा जिह प्राणिनः इत्येवमपरैर्धातयन्तो व्रतधापि समनु-जानन्तः, )

श्री आचारांगे द्वितीयश्रुतस्कंधे चतुर्थाध्ययने—" से भिक्ख् वा. से जं पुण जाणिज्ञा जाय भासा सचा? जाय भासा मोसा २ जाय भासा सचामोसा ३ जाय भासा असचाऽमोसा ४, तहप्पगारं भासं सावज्ञं सिकिरियं कक्सं

# आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १२१

कडुर्यं निद्वरं फरुसं अण्डयरि छेयणकरि भेयणकरि परियावण-करि भुओवधाइयं अभिकंख नो भासिज्जा "

(वृक्तिः—इदानीं चतसृणां भाषाणामभाषणीयामाह-स
भिक्षुयां पुनरेषं जानीयात, तद्यथा-सत्यां १ मृषां २ सत्यामृषाम् ३ असत्यामृषां ४, तत्र मृषा सत्यामृषा च साधृनां
तावन्न वाच्या, सत्याऽिष या कर्कशादिगुणोपेता सा न
षाच्या, तां च द्रश्चित्त-सहाषयेत वर्तत इति साउद्यां
सत्यामित भाषेत, तथा सह कियया-अनर्थदण्डप्रवृक्तिछक्षणया वर्तत इति सकिया तामिति. तथा 'कर्कशां चर्विताक्षरां, तथा 'कडुकां' चित्तोद्वेगकारिणीं, तथा 'निष्डुरां'
हक्काप्रधानां 'परुषां' ममीद्याटनपराम् 'अण्डयकरिंतिः
कर्माश्रवकरीम् प्यं छेदनभेदनकरीं यावदपद्रावणकरोमित्यैधमादिकां 'भृतोपद्यातिनीं' प्राण्युपतापकारिणीम्, 'अभिकाङ्वायं मनसापर्याछोच्य सत्यामिय न भाषेतेति॥

श्री स्रयंगडांगे-''धम्मपत्रवणा जा सा,तं नुसंति मृहया। आरंभाइं न संकंति, अवियता अकोविया॥११॥ अहावरं पुरवस्वायं, किरियावाइ द्रिसिणं । कम्मचिंता पणद्वाणं, संसारस्स पवड्ढणं॥२४। एते जिया भो न सरणं, जथ्य बालो च सीयइ। हिचेण पुरुवसंजोगं, सिया किचोवदेसगा॥१॥ तथ्यिमा ततिया भासा, नं विद्याणुतप्पईं। जं छण्हं तं न वत्तव्वं, एसा आणा नियंद्विया॥२६॥ "

( वृत्ति:--धर्मस्य-क्षान्त्यादिदशलक्षणोपेतस्य या प्रज्ञा-पना-प्ररूपणा, 'तां तु' इति तामेव 'शङ्कन्ते' अश्वद्धर्मप्ररूप-णेयमित्येवमध्यवस्यन्ति, ये पुन: पापोपादानभूताः समार-म्भास्तान्नाशङ्कन्ते, किमिति १, यतः 'अञ्यका' मुग्धाः-सहज-

## १२२ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्

सक्रिवेकविकलाः, तथा 'अकोबिदा' अपण्डिताः सच्छास्नाः वबोधरहिता इति ॥१६॥ 'अथे' त्यानन्तर्ये. अज्ञानवादिम-तानन्तरमिदमन्यत् 'पुरा' पूर्वम् आख्याते' कथितं, किं पुनस्तदित्याह-'क्रियाबादिदर्शनं' क्रियेय-चैत्यकर्मादिका प्रधानं मोश्लाङ्गमित्येवं बदितुं शीलं येषां ते क्रियाबादिनस्तेषां दर्शनम् आगमः क्रियाचादिदर्शनं, किंभुतास्ते क्रियावादिन इत्याह कर्मणि-ज्ञानाप्रणादिके चिन्ता-पर्याहोत्तनं कर्मचि न्ता तस्याः प्रणष्टा-अपगताः कर्मचिन्ताप्रणष्टाः, यतस्ते अवि-शानायुपचितं चतुर्विधं कर्मबन्धं नेच्छन्ति अतः कर्मचिन्ता-मणशः, तेषां चेदं दर्शनं 'दृ:खस्कन्धस्य' असाकोदयपरम्प-राया विवर्धनं भवति, क्वचित्संसारवर्धनमिति पाठः, ते होवं प्रतिपद्यमानाः संसारस्य वृद्धिमेश कुर्वन्ति नोच्छेर्-मिति ॥२४॥ अस्य चानन्तरस्रवेण सहायं संबन्धस्तद्यशा. अनन्तरस्त्रेप्रभिद्धितं-'तीर्थिका असुरस्थानेषु किल्विषा जायन्त' इति, किमिति? यत पते जिताः परीषहोपसर्गैः, परम्परस्रप्रसंबन्धस्त्वयम् आदाविदमभिहितं 'बुध्येत चोट-येश्व' ततश्चेतदपि बुध्येत-यथेते पश्चभृतादिवादिनी गोज्ञा-लकमतानुसारिणश्च जिताः परीषहोपसर्गैः कामकोधलोग-मानमोहमदाख्येनारिषड्वर्गेण चेति, एवमन्यरिष सुन्नैः संबन्ध उत्पेक्ष्य:। तदेवं कृतसंबन्धस्यास्य शुत्रस्येदानीं ब्वाख्या प्रतन्यते-'पत' इति पञ्चभृतैकात्मतक्कीवतच्छरीरादिवादिनः कृतवादिनश्च गोशालकमतानुसारिणक्षेराशिकाश्च 'जिता' अभिभूता रागद्वेषादिभिः शब्दादिविषयेश्व तथा प्रवलमहाः मोहोत्याक्षानेन च 'भो' इति विनेयामन्त्रणम् एवं त्वं गृहाण यथैते तीर्थिका असम्यगुपदेशप्रवृत्तत्वान्न कस्यचिच्छरणं भवित्महेन्ति न कश्चित त्रातं समर्था इत्यर्थः, किमित्येवं ?. यतस्ते बाला इव बाला:, यथा शिशव: सदसद्विवेकवैक

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १२३

ल्याचरिकञ्चनकारिणो भाषिणश्च. तथैतेऽपि स्वयमञ्चाः सन्तः परानिष मोहयन्ति, पथम्भृता अपि च सन्तः पण्डितमानिन इति. कचित्पाठो 'सत्य बालेऽबसीयइ'सि 'यत्र' अज्ञाने 'बालः' अज्ञो छग्न: सन्नवसीदति, तत्र ते व्यवस्थिता: यतस्ते न कस्यचित् त्राणायेति । यश्च तैर्विरूपमाचरितं तदुत्तरार्द्धेन दर्शयति-'हित्वा' त्यवत्वा, णमिति वाक्याळङ्कारे, पूर्वसंयोगी धनधान्यस्वज्ञनाटिभिः संयोगस्तं त्यत्तवा किल वयं निःसङगा प्रविज्ञता इत्युत्थाय पुनः सिता-बद्धाः परिग्रहारम्भेष्वास-क्तास्ते गृहस्था: तेषां कृत्यं-करणीयं पचनपाचनकण्डनपेष-णादिको भूतोपमर्दकारी व्यापारस्तस्योपदेशस्तं गच्छन्तीति क्रत्योपदेशगाः क्रत्योपदेशका वा, यदिवा-'सिया' इति आर्षत्वाद्वहुवचनेन व्याख्यायते 'स्युः' भवेयु: कृत्य-कर्तव्यं सावचानुष्टानं तत्प्रधानाः कृत्या-गृहस्थास्तेषामुपदेश:-संरम्भ-समारम्भारम्भरूपः स विद्यते येवां ते कृत्योपदेशिकाः, प्रवृत्तिता अपि सन्तः कर्तव्यैगृहस्थेभ्यो न भिचन्ते, गृहस्या इव तेऽपि सर्वावस्थाः पश्चस्रनाव्यापारोपेता इत्यर्थ: ॥१॥ े अपि च-सत्या असत्या सत्यामृषा असत्यामृषेत्येवंह्रपासु चतसृषु भाषासु मध्ये तत्रेयं सत्यामृषेत्येतद्भिधाना तृतीया भाषा, सा च किश्चित्मणा किश्चित्सत्या इत्येवं रूपा, तथया-द्यादारका अस्मिन्नगरे जाता मृता वा, तदत्र न्युनाधिकः सम्भवे सति सङ्ख्याया व्यभिचारात्सत्यामुषात्वमिति, यां चैवंह्रपां भाषामदित्वा अन्-पश्चाद्वाषणाज्ञन्मान्तरे वा तज्ज-नितेन दोषेण 'तप्यते' पीडचते क्लेशभाग्भवति, यदिया-अनुतप्यते कि ममैवम्भूतेन भाषितेनेत्येवं पश्चातापं त्रिधत्ते, ततश्चेदमुक्तं भवति-मिश्रापि भाषा दोषाय कि पुनरसत्या ब्रितीया भाषा समस्तार्थविसंवादिनी ?, तथा प्रथमापि भाषा सत्या या प्राण्युपतापेन दोषानुषङ्गिणी सा न बाच्या, चतुः

### १२४ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

ध्येष्यसत्यामुषा भाषा या बुधेरनाचीणी सा न वक्तव्येति, सत्याया अपि दोषानुसङ्गित्वमधिकृत्याह-यद्वयः 'छन्नं ति 'क्षणु हिंसायां' हिंसाप्रधानं, तथया-वध्यतां चौरोऽयं ल्यन्तां केदारा: दम्यन्तां गोरथका इत्यादि, यदिषा-'छन्न'न्ति प्रच्छश्चं यह्नोकेरिय यत्नतः प्रच्छाचते तत्सत्यमपि न वक्त-व्यमिति, 'पपाऽऽज्ञा' अयमुपदेशो निर्मन्थो-भगवांस्त-स्येति ॥२६॥) इत्युपदेशाधिकारः

श्री आचारांगे चतुर्थाध्ययने द्वितीयोद्देशके-"से दिट्टं चणे सुर्थ चणे मयं चणे विण्णायं चणे उद्दं अहं तिरियं दिसासु सच्वओ सुपिडलेहियं चणे सच्वे पाणा सच्वे जीवा सच्वे भ्या सच्वे सत्ता हन्तव्वा अज्ञावेयव्वा परियावेयव्वा परियेत्तव्वा उद्देयव्वा, इत्यवि जाणइ नित्यत्थ दोसो, अणारियवयणमेयं, तत्थ जे आरिआ ते एवं वयासी से दुद्दिटं च भे दुस्सुयं च भे दुम्मयं च भे दुव्विण्णायं च भे उद्दं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ दुप्पडिलेहियं च भे, जंणं तृब्भे एवं आइक्तव्वा ५, इत्यवि जाणह नित्यत्थ दोसो, अणारियवयणमेयं, वयं पुण एवमाइक्त्वामो एवं पासामा एवं परूवेमो एवं पण्णवेमो—सच्वे पाणा ४ न इंतव्वा १ न अज्ञावेयव्या २ न परिचित्तव्वा ३ न परियावेयव्वा ४ न उद्देयव्वा ५, इत्यवि जाणह नित्यत्थ दोसो, आयरियवयणमेयं, थं

(वृत्तिः--'से दिठुं च णे' इत्यादि यावत् 'नित्यत्थ होसो'ति, 'से'ति तच्छव्दार्थे यदहं वश्ये तत् 'दृष्टम्' उप-

### आचार्य श्री आतृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १२५

लब्धं दिव्यज्ञानेनास्माभिः, अस्माकं वा सम्बन्धिना तीर्थकृता आगमप्रणायकेन, च शब्द ऊत्तरापेक्षया समुचयार्थः, श्रुतं चारमाभिर्गुवदिः सकाशात , अस्मद्गुरुशिध्यैर्वा तदन्तेवासिः भिर्वाः मतम्-अभिमतं युक्तियुक्तत्वादस्माकमस्मत्तीर्थकराणां वा, विज्ञातं च तत्त्वभेदपर्यायैरस्माभिरस्मत्तीर्थकरेण वा, स्वतो न परोपदेशदानेन, पतचोध्वधिस्तिर्यक्ष दशस्वपि दिक्षु सर्वत: सर्वैः प्रत्यक्षानुमानोपमानागमार्थोपत्यादिभिः प्रकारैः सुष्ठु प्रत्युपेक्षितं च पर्यालोचितं च, मनःप्रणिधाना-दिना अस्माभिरस्मत्तीर्थकरेण वा, कि तदित्याह-सर्वे प्राणाः सर्वे जीवाः सर्वे भूताः सर्वे सत्या हुन्तच्या आज्ञापथितच्याः परिश्रहीतव्याः परितापयितव्या अपद्रापयितव्याः, 'अत्रापि' धर्मचिन्तायामध्येवं जानीय, यथा नास्त्यत्र यागार्थं देवतीय बाचितकतया वा बाणिहननादौ 'दोषः' पापानुषम्ध इति, पयं यायन्तः केचन पाषण्डिका औदेशिकभोजिनो ब्राह्मणा वा धर्माविरुद्धं परलोकविरुद्धं वादं भाषन्ते। अयं च जीशे-पमईकत्वात् पापानुबन्धी अनार्यप्रणीत इति, आह च-आरा चाताः सर्वहेयधम्मेम्य: इत्यार्यास्तक्रिपर्यासादनार्याः-क्ररकः म्माण्यतेषां पाण्युपद्यातकारोदं वचनं, ये तु तथा भूता न ते किम्भूतं प्रज्ञापयन्तीत्याह-'तत्य' इत्यादि. 'तत्रे' ति बाक्योपन्यासार्थे निर्धारणे वा, ये ते आर्था देशभाषा चा रित्रार्यास्त प्यमवादिषुः, यथा यत्तदनन्तरोक्तं दुर्दृष्टमेतद्, दुष्टं इष्टं दुईष्टं 'भे' युस्माभिर्युष्मत्तीर्थकरेण वा, पर्वयाबद्-दुष्प्रत्युपेक्षितमिति । तदेवं दुर्दृशदिकं प्रतिपाच दुष्प्रज्ञाप-नानुवादहारेण तदभ्युपगमे दोषाविष्करणमाह-'जंण' मित्यादि, णमिति वाक्यालङ्कारे, यदेतद्वक्ष्यमाणं यूयमेषमा-चड्डविमत्यादि यावदत्रापि यागोपहारादौ जानीय युयं यथा नास्त्येवात्र प्राण्युपमद्निष्ठाने दोषः पापानुबन्ध इति, तदेवं

### १२६ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

परवादे दोषाविभाविनेन धर्मीविहद्धतामाविभांव्य स्वमतवा-दमार्या आविभांवयन्ति 'चय' मित्यादि, पुनः शब्द: पूर्व-स्माद्विशेषमाह, वयं पुनर्यथा धर्मीविहद्धवादो न भवति तथा मञ्जापयाम इति, तान्येथ पदानि सप्रतिषेधानि इन्त-व्यादीनि याषन्न केवलमन्न-अस्मदीये वचनेनास्ति दोषः, अन्नापि-अधिकारे जानीय यूयं यथा 'अन्न' इननाद्दिप्रति-षेधविधौ नास्ति दोषः-पापानुबन्धः, सावधारणस्वाद्वाक्यस्य नास्त्येव दोषः, प्राण्युपघातप्रतिषेधान्वार्ययचनमेतत्,

श्री सुत्रकृताङ्गे सप्तमाध्ययने-"जाति च बुह्विं च विणास-यंते, बीयाइ अस्संजय आयदंडे। अहाहु से लोए अणज्जधम्मे, बीयाइ जे हिंसति आयसा ते ॥९॥"

(वृत्तः—किश्च-'जातिम्' उत्पत्ति तथा अङ्करपत्रमुळ स्कन्धशाखाप्रशाखामेदेन वृद्धि च विनाशयन वीजानि च तत्फळानि विनाशयन हरितानि छिनत्तीति, 'असंयतः' गृहस्थः प्रवृत्ति वा तत्कर्मकारी गृहस्थ प्रवृत्त च हरितच्छे-दिश्याय्यात्मानं दण्डयतीत्यात्मदण्डः, स हि परमार्थतः परोपघातेनात्मानमेशोपहन्ति,अथशब्दो वाक्याळङ्कारे 'आहुः' प्रवृक्तवन्तः, किमुक्तवन्त इति दर्शयति-यो हरितादिच्छे-दको निरनुकोशः 'सः' अस्मिन् छोके 'अनार्यधर्मा' कूर-कर्मकारी भवतीत्यर्थः, स च क प्रवृक्ष्मते यो धर्मापदेशे-नात्मसुखार्थं वा वीजानि अस्य चोपळक्षणार्थत्वात् वनस्पतिकार्यं हिनस्ति स पाषण्डिकछोकोऽन्यो वाऽनार्यधर्मा भवन्तीति सम्बन्धः॥ ९॥)

श्री सत्रकृताङ्गे एकादशाध्ययने-"इणंतं णाणुजाणेज्जा, आयगुत्ते जिइंदिए । टाणाइं संति सङ्हीणं, गामेसु नगरेसु

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १२७

वा ॥१६॥ तहा गिरं समारब्भ, अत्थि पुण्णंति णो वए ।
अहवा णित्थ पुण्णंति, एवमेयं महब्भयं ॥१७॥ दाणह्या य
जे पाणा, हम्मंति तसथावरा । तेसिं सारक्खणहाए, तम्हा
अत्थित्ति णो वए ॥१८॥ जेसिं तं उवकप्पंति, अन्नपाणं
तहाविहं । तेसि लाभंतरायंति, तम्हा णित्थित्ति णो वए ॥१९॥
जे य दाणं पसंसंति, वहमिच्छंति पाणिणं । जे य णं पित्सेहंति, वित्तिच्छेयं करंति ते ॥२०॥ दुहओवि ते ण भासंति,
अत्थि वा नित्थ वा पुणो । आयं रयस्स हेचा णं, निव्वाणं
पाउणंति ते २१"

(वृत्तिः--किञ्चान्यत्-धर्मश्रद्धावतां ग्रामेषु नगरेषु वा खेटकर्वरादिष वा 'स्थानानि 'आश्रयाः 'सन्ति ' विद्यन्ते. तत्र तत्स्थानाश्चितः कश्चिद्धमोपदेशेन किल धर्मश्रदालतया प्राण्युपमर्दकारिणी धर्मबुद्धवा कृपतडागखननप्रपासत्रादिकां क्रियां क्रयति तेन च तथाभूतिकयायाः कर्जा किमन्न धर्मोऽ-स्ति नास्तीत्येवं पृष्टोऽपृष्टो वा तद्परोधाद्भयाद्वा तं प्राणिनो घन्तं नानुज्ञानीयात्, किंभूतः सन् ?-' आत्मना' मनोवाक्काः यरूपेण गुप्त आत्मगुप्तः, तथा 'जितेन्द्रियो' वश्येन्द्रियः सावचानुष्ठानं नानुमन्येत ॥ १६ ॥ सावचानुष्ठानानुमति परि-हर्तकाम आह-केन चिद्राजादिना कृपखननसत्रदानादिप्रवृत्तेन पृष्टः साधु-किमस्मदनुष्ठाने अस्ति पुण्यमाहोस्विन्नास्तीति ?, पवंभूतां गिरं 'समारभ्य ' निश्चम्याश्चित्य अस्ति पुण्यं नास्ति वेत्येवमुभयथापि महाभयमिति मत्वा दोषहेत्तत्वेन नानुमन्येत ॥ १७ ॥ किमर्थं नानुमन्येत इत्याह-अन्नपानदानार्थमाहारमुद्-कंच पचनपाचनादिकया क्रियया क्रपखननादिकया चोपक-क्पयेत्, तत्र यस्माद 'हत्यन्ते ' व्यापाधन्ते त्रसाः स्थाय-

### १२८ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसतपदी शास्त्रम्.

राध जन्तवः तस्मात्तेषां 'रक्षणार्थे' रक्षानिमित्तं साधुरा-त्मगुप्तो जितेन्द्रियोऽत्र भवदीयानुष्ठाने पुण्यमित्येवं नो वदे-दिति ॥ १८ ॥ यद्येवं नास्ति पुण्यमिति ब्रुयान् , तदेतइपि न ब्रुवादित्याह-'येषां' जन्तुनां कृते 'तद्' अन्नपानादिक किल धर्मबुद्धवा 'उपकल्पयन्ति' तथाविधं प्राण्युपमर्ददोष-दुष्टं निष्पादयन्ति, तन्निषेधे च यस्मात् 'तेषाम्' आहारपा . नार्थिनां तत् 'स्राभान्तरायो' विष्नो भवेत्, तद्दभावेन तृते पीडयेरन्, तस्मात्कृपखननसत्रादिके कर्मणि नास्ति पुण्यः मित्येतद्वि नो घदेदिति ॥१९॥ पनमेवार्थं पनर्पि समासतः स्पष्टतरं विभणिपुराह ये केचन प्रपासन्नादिकं दानं बहनां जन्तनामुपकारीतिकृत्वा 'प्रशंसन्ति' ऋाघन्ते 'ते' परमार्थाः नभिज्ञाः प्रभृततरपाणिनां तत्प्रशसाद्वारेण 'वधं' प्राणातिपात-मिच्छन्ति, तहानस्य प्राणातिपातमन्तरेणानुपपत्ते:, वेऽपि च किल सुध्मधियो ययमित्येवं मन्यमाना आगमसद्भावा-नभिज्ञा: 'प्रतिषेधन्ति' निषेधयन्ति तेऽप्यगीतार्थाः प्राणिनां 'वृत्तिच्छेदं' वर्तनोपायिष्टनं कुर्वन्तीति ॥२०॥ तदेवं राज्ञा अन्येन वेश्वरेण कूपतडागयागसत्रदानाध्यतेन पुण्यसङ्खावं पृष्टेर्मुमुक्कुभियेक्किधेयं तहशीयतुमाह-यशस्ति पुण्यमित्येवमु-चुस्ततोऽनन्तानां सत्वानां सुक्ष्मबादराणां सर्वदा प्राणत्याग पव स्यात् प्रीणनमात्रं तु पुन: स्वल्पानां स्वल्पकालीयमतो-**उस्तीति न वक्तव्यं नास्ति पुण्यमित्येवं प्रतिषेधेऽपि तद्यिं**-नामन्तरायः स्यादित्यतो 'क्रिधापि' अस्ति नास्ति वा पूण्य-मित्येवं 'ते' मुमुक्षव: साधवः पुनर्न भाषन्ते, किंतु पृष्टैः सद्धिमौंनं समाश्रयणीयं, निर्वन्धे त्यस्माकं द्विचत्वारिहाहोष-वर्जित आहार: कल्पते, पवंविधविषये मुमुक्षुणामधिकार पव नास्तीति, उक्तं च-" सत्यं वशेषु शीतं शशिकरधवलं वारिपीत्वा प्रकामं, व्युच्छिन्नाशेषत्र व्णाः प्रमुदितमनसः प्राणि-

# आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १२९

सार्या भवन्ति । शोषं नीते जलीवे दिनकरिकरणैर्यान्त्य-नन्ता बिनाश, तेनोदासीनभावं व्रज्ञति सुनिगणः कूपबपा-दिकार्ये ॥१॥" तदेवसुभयणापि भाषिते 'रज्ञसः' कर्मण 'आयो' लाभो भवतीत्यतन्तमायं रज्ञसो मौनेनावधभाषणेन वा 'दित्या' त्यवत्या 'ते' अनवधभाषिणो 'निर्वाण' मोक्षं प्राप्नुबन्तीति ॥२१॥

श्री पश्रव्याकरणे संवरद्वितीयाध्ययने—''सोऊणं संवरहुं परमहं सुट्ठु जाणिऊण न वेगियं न तुरियं न चवलं न कडुयं न फरुसं न साहसं न य परस्स पीलाकरं असावज्ञं सर्च च हियं च मियं च गाहगं च सुद्धं संगणमकाहलं च समिक्खितं संजतेण कालंगि य वचन्यं,'' इतिवचनात्

(वृत्ति — श्रुत्वा - आकर्ण्य सद्गुरुसमीपे 'संवरट्ठं ति संवर्य-प्रस्तावेन मृषावादि विर्तातलक्षणस्य अर्थः-प्रयोजनं मोक्षलक्षणं प्रस्तुनसंवराध्ययनस्य वाऽर्थः-अभिषेयस्संवरार्थस्तं, श्रुयणाच 'प्रमठं सुठुजाणिऊणं ति प्रमार्थे हेयोपा-देयवचनेदम्पर्य सुष्टु-सम्यक् झात्वा न नेव वेगितं वेगवत् विकल्पव्याकुल्रुत्वेत्यर्थः वक्तव्यामित योगः, न त्वरितं वचनचापल्यतः न कटुकमर्थतः न प्रस्यं चण्तः न साहसं-साहसप्धानमतिकृतं वा न च प्रस्य जन्तोः पोडाकरं सावयं-स-पापं यत्, वचनविधि निषेधतोऽभिधाय साम्प्रतं विधित आह सन्यं च-सद्भृतार्थे हितं च-पथ्यं मितं परिमालकं प्राहकं च-प्रातपाचम्य विवक्षितार्थमतोतिजनकं शुद्धं-पूर्वोक्ष्यवनदोषरहितं सङ्गतं उपपत्तिभिरवाधितं अकाव्हं च-अमन्यनक्षरं समीक्षितं पूर्वं बुद्धवा पर्यालोचितं संयन्तेन-संयमवता काले च-अवसरे वक्तव्यं नान्यया,)

### १३० श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

श्री सुत्रकृताङ्गे एकादशाध्ययने-"एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसति कंचणं। अहिंसा समयं चेव, एतावंतं विया-णिया।।१०॥ " इतिवचनात्

(बृक्तिः प्रतदेव समर्थयन्नाह-खुशक्दो वाक्यालङ्का-रेऽवधारणे वा, 'पतदेव' अनन्तरोक्तं प्राणातिपातनिवर्तनं 'झानिनो' जीवस्वरूपतद्वधकर्मवन्धवेदिनः 'सारं' परमार्थतः प्रधानं, पुनरप्यादरख्यापनार्थमेतदेवाद-यत्कञ्चन प्राणिनम-निष्टदुःखं सुखैषिणं न हिनस्ति, प्रभूतवेदिनोऽपि ज्ञानिन पतदेव परमार्थतो यत्परपीडातो निवर्तनं, तथा चोकम्-"किं ताप पिट्टयाप? पयकोडीप पलालभ्रयाप। जित्यत्तियं ण णायं परस्त्र पीडा न कायव्या॥१॥'' तदेवमहिलापधानः समय-आगमः संकेतो वोपदेशरूपस्तमेनंभृतमहिलासमय-मेतावन्तमेच विज्ञाय किमन्येन वहुना परिज्ञानेन?, पताव-तेव परिज्ञानेन मुमुश्लोविवश्लितकायपरिसमान्तरतो न हिस्यात्कञ्चनेति॥१०॥)

श्रीराजनश्रीयोपांगे सूर्याभस्य नाटकपश्चाधिकारे-" तं इच्छामिणं देवाणुपियाणं भत्तिपुत्वगं गोयमानियाणं समणाणं निगांथाणं दिव्वं देविहुं दिव्वं देवजुई दिव्वं देवाणुभावं दिव्वं बत्तीसित बद्धं नट्टविहं ज्वदंसित्तए । तए णं समणे भगवं महावीरे सुरियाभेणं देवेणं एवं युत्ते समाणे सुरियाभस्य देवस्स एयमटं णो आहातिणो परियाणाति तुसिणीए संचिट्टति॥"

इतिवचनात् ॥

# आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसूरि यन्यमाळा पुस्तक ५० मुं. १३१

(वृक्तिः—'इच्छामिणमिंत्यादि, इच्छामि णमिति-पूर्वेवत देवानां प्रियाणां पुरतो भित्तपूर्वकं-बहुमानपुरस्सरं गौतमादीनां श्रमणानां निर्प्रन्थानां दिव्यां देविष्ठं दिव्यां देवधुर्ति दिव्यं देवानुभावमुण्यद्यीयतु ह्यात्रिश्चाह्यधं-ह्यात्रिश्चात्र्यकारं नाट्यविधि-नाट्यविधानमुण्यद्यीयतु मिति। 'तप् णमिंत्यादि, ततः श्रमणो भगवान् महावोरः सुर्याभेण देवेन पत्रमुक्तःसन् सुर्यामस्य देवस्यैनम्-अनन्तरोदितमधं नाद्रियते— न तद्येकरणायादर्परो भवति, नापि परिज्ञानाति-अनु-मन्यते, स्वतो वीतरागत्वात् गौतमादीनां च नाट्यविधः स्वाध्यायादिविधातकारित्यात्, केवलं तुष्णीकोऽवतिष्ठते,)

मूल-एसो जिणउवएसो, विह्विष्णं मुणीणं । सो चेव मुणिवरेहिं, सद्दृहियदो पयत्तेणं ॥२५०॥

बीयंगे सूपगडे, बीयखंधंमि बीयअज्झयणे । पत्रखा तिस्रिय भणिया, धम्माऽधम्माय मीसाय ॥२५१॥

पक्साण तिन्ति दोस्रं, अवयारो धम्मऽधम्म पक्लेसु । सम्मदिही पढमे, मिच्छदिहीय वीर्यमि ॥२५२॥

अविरय मिच्छदिही, एगंतेणं अहम्मपक्लंमि । स्रुयथम्म चरित्ताणं, तेसिंपिय नथ्थि इकोवि ॥२५३॥

सम्मदिही विरया, दुइउविय हुंति धम्मपक्खंमि । अदिरय सम्मदिही, सम्मं पणिहाय धम्मंमि ॥२५४॥

भि÷छादिही तिरया, चरित्तप्रुद्दिस्स तेय भीसंभि। सम्मदिहो विरया,-विरया पुण हुंति तथ्येव ॥२५५॥

### १३२ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

जे पुण भिच्छिदिही, अविरइ विरई इ ते अथम्मंमि।
जम्हा तेसि किंचिवि, न सव्वहा अध्य सुयधम्मो॥२५६॥
जे पुण सम्मदिही, सव्वविरयाय अविरया चैव।
विरयाऽविरयाय तहा, सबे ते धम्म पक्लंमि॥२५७॥
चित्तधम्मं पणिहायमीसो, जो निच्छएणं ववहारओ वा।
तं पक्लमायाय सुणी विसुद्धो, न संधए नोहु निराकरेजा ॥२५८॥

अधम्मं पहिसेहेइ, धम्मपक्खं च संधए॥ तिण्ह धम्म पक्लाणं, एसा य वियारणा सुत्ते ॥२५९॥ एएण कारणेणं. सावज्जलवीवि निध्य उस्सम्मो । अववाए विहु करणे, सावज्जस्सेह निध्य विही ॥२६०॥ छउमत्थाणं कथ्यवि, अववाउ दंसिउ जिणंदेहिं। कहमवि सयमुष्णज्ञह, जहहिङ जोय जारिसओ ॥२६१॥ तथ्यय जो निरवज्जो, सो जिल वयलाणुसारओ नेओ। विहिज्वएसो तस्स य, इयरो य जहाँ इंड होइ ॥२६२॥ जो य चरियाणुवाउ, सोवि तिहाऽधम्म धम्म मीसो य। तथ्यवि साहुवएसो, पुर्वि भणिओ तहा नेऊ ॥२६३॥ छद्वं च पंचमंगे, वित्तीए अभयदेवसूरीहिं। दोर्बाह संखिहिगारे, भणियं तं चैव नायव्वं ॥२६४॥ एवं तिन्त्वएसा, विहिचरिय जहहिया समक्खाया । ववहार निच्छएहिं, आदेयनेयहेया य । २६५॥

# आचार्य श्री त्रातृचंद्रस्ररि वन्यमाळा पुस्तक ५० मुं १३३

धम्माधम्मवि मीसा. तिन्निय पक्सा वियाहिया एवं । एकारस ठाणाई, सग्रहमुहाउ अ नायाई ॥२६६॥ पवयण अणुसारेणं, जहा य लिहियाइ संति तह चेव । गीयथ्या अणुगिण्हह, काऊण पसायमेयाई ॥२६७॥ भइ जाणह अविरुद्धं, ता सुपमाणं करेह कारेह । इत्थवि किंचि विरुद्धे, मिच्छा मे दुकडं तस्स ॥२६८॥ अनं च किंचिवि पडिसेवंतो, जिणुत्तमुस्सगामेव मनंतो । नियकारणं कहंतो, विराहगो होइ नहु साहू ॥२६९॥ आउत्तो चत्तारिवि, भासाउ तहय भासमाणो य । आराहओय भणिओ, पन्नत्रणाए उवंगंमि ॥२७०॥ -एयाए विश्वयाए, दसासुठाणंग-पग्रह-सुत्तेसु । अववायपया भणिया, जहहित तथ्य उवएसी ॥२७१॥ जम्हा नेव पवत्तइ, एएस विही जिणेहिं निहिहो। अकरंतो एयाई, विराहगो नो मुणी होइ ॥२७२॥ तथा च-नइउत्तरणवरसो. जहहिउ तन्विहीड विहिवाओ। उत्तारो सावज्ञो, उत्तर-विहीइ निरवज्जो ॥२७३॥ जइ नइसलिले न कुणइ, एगं पायं तहावि नह दोसो । अह जइ थर्लंमि न क्रणइ, पविसंतो ता महादोसो ॥२७४॥ एवं वियारिऊणं. गोयध्या जं कहंति तं सर्च। इत्थं जाणामि अहं, जहहिउ एस उनएसो ॥२७५॥ तुल्लाए किरियाए, छउमध्यो केवलीय नइ-सलिलं। जइ उत्तरंति तहविह, उस्युत्तं तह अहायुत्तं ॥२७६॥

### १३४ श्रीसामाचारी समाश्रितं-श्रीसप्तपदी शास्त्रम्.

रीयंति इमं भणियं, भगवइस्रतंमि बहुसु ठाणेसु । सत्तमदसमद्वारस,-सष्सु अथ्ये अ णाणाष् ॥२७७॥ जइ विहि जिण उवष्सो, ता इत्तियमंतरं कहं एयं। ष्पण कारणेणं, जिणोवएसो य निरवज्जो ॥२७८॥

तथा च-श्रीभगवतीसृत्रे सप्तमशते दश्यमशते अष्टादशशते च सहशो दंडकः-''जस्सणं कोहमाण-मायालोभा अवोच्छित्रा तस्सणं संपराइयाकिरिया कज्जित सेणं उस्सुत्तमेव रीयित तथा च जस्सणं कोह-माण-माया-लोभा बुच्छित्रा तस्सणं इरिया विद्या किरिया कज्जित सेण अहासुत्तमेव रीयिति'।। इति सुत्र वचनात् । अस्य वृत्तौ उस्सुत्तमेव रीयित अस्य पदस्य व्याख्यानं अनाङ्गया इति विद्यास्यानं अनाङ्गया इति विद्यास्यानं सुत्रममेव उत्सुत्रमनाङ्गा तदा सुत्रमाङ्गव ज्ञातव्योव्योरं ।

मूळ-एसो उवएसिवही, भणिओ य समासओ निरवज्जो।
सिरिसाहुरयणगुरुणो, सुपसाएणं मए नाउ ॥२७९॥
वरस्वरतरवगच्छो,-वएस विसुद्धगच्छक्रएसो।
कोरंटचित्तगच्छा, मलहारिय पवरवडगच्छा॥२८०॥
अंचलगच्छो तह नाणगच्छ, संडेरपिछपुरगच्छा।
आगमपुन्निमआई, धम्मघोसाभिहाणाय॥२८१॥
अन्नेवि गच्छवासी, जे जे वट्टंति संपर्ड काले।
ते ते सब्वे निय निय, परंपराए उवइसंति॥२८२॥

# आचार्य श्री आतृचंद्रस्ररि वन्थमाळा पुस्तक ५० मुं. १३५

तथ्य य जिण आणाए, अणुसारेणं पवत्तए जं जं ।
तं तं मह प्पमाणं, नियआयिरिएहं भणियंपि ॥२८३॥
जं पवयण-पिंडसिद्धं, मए लिहंतेण होइ इह लिहियं ।
तस्स य संघसमक्तं, मिच्छा मे दुक्कंड होऊ ॥२८४॥
सिस नंद तिहि पमाणे, विकम-संवच्छराउ विरसंमि ।
कत्तिय-पुन्निम-दिवसे.लिहियमिणं पासचंदेण ॥२८५॥
जुमं ससाहु-वेरिणयाणं, सिद्धंतमग्गलगाणं ।
साहुण साहुणीणं, सावय सुस्सावियाणं च ॥२८६॥
ते घण्णा ताण णमो, जिलमय-सरपवर-रायहंसाणं ।
जे सहहंति सुद्धं, धम्मं सिद्धं पर्व्वति ॥२८७॥

इति श्रीसामाचारीसमाधितं सतपदीजास्त्रं संपूर्णम् ॥ श्रेयो भूषात् । श्रीरस्तु ॥

॥ इतिश्रीमन्नागपुरीयबृहत्तवागच्छाघिराज-परमपूज्य-पातःस्मरणीय-स्वनामधन्य-परमगीतार्थ-युगप्रवराचार्थवर्षभट्टारक श्रीश्री १००८ श्रीपार्श्व-चन्द्रसुरीश्वर-विरचिता श्रीस्मसपदी समाप्ता॥

# आवार्यभीश्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं.

**५ परमगुरुदेव श्रीपार्श्वचंद्रसुरीश्वरलिखितः - ५** 

# ॥ उत्सूत्रतिरस्कारनामा-विचारपटः॥

# ॥ श्रीवीतरागायनमः ॥

॥ श्रीजगन्नाथ-श्रीचंद्रपभस्वामिने नमः ॥

श्रीतपागच्छनायक-भट्टारकश्रीजयशेखरस् रि-श्रीरत्नाध्यक्ष श्रीवज्ञसेनस् रि-श्रीहेमतिलकस् रि-श्रीरत्नशेखरस् रिष्टुकुमुद्दवनिववोधन-पूर्णचंद्र-श्रीपूर्णचंद्रस् रिष्ट्टावतंसश्रीहेमहंसस् रिष्ट्रमभावकानेकस् गणरत्नसमुद्रश्रीहेमसमुद्रस् रि-प्टालंकारश्रीहेमरत्नस् रिष्टुपूर्वाचलपभाकरिवजयमान-श्रीश्रीसोमरत्नस् रि-पुरंदरपरिकरमण्डली-मण्डन पं०-श्रीपुण्यरत्निक्यशिरोमणि पं० श्रीसाधुरत्नसुणमानसहंसराजेभ्यो नमः ।
॥ श्रीः ॥ निम्मल नाणपहाणो, दंसणजुत्तो चरित्तसुणवंतो ।

तिध्थयराण य पुज्जो, बुबइ एयारिसो संघो ॥१॥ तस्मै श्रीसंघभद्रारकाय नमः।

स्वस्तिश्री । संयत् १५७५ वर्षे कार्त्तिकः-शुक्लद्वितीया-यां मंगले विहितमंगले मैत्रीपवित्रे मैत्रीनक्षत्रे श्रीपत्तने सुर-त्राण श्रीमद(प्फ)फुरसाहिराज्ये विजयिनि निजनिज-निश्रित गुरुनोदित-संजातिनःकारण--मत्सर-रणरणकहाञ्जीविकानु-

## आचार्यश्रीष्रातृचंद्रस्रि प्रम्थमाला पुस्तक ५१ मुं १३७

चरोकेञ्चवंञ्चनलोक-कितपयदिवसस्थायि पुरोगतामदमत्त-पक्षरिहतिभक्षकोपिर पक्षटित-गाढ-प्रबल-बल्ज्ञालि सा० वत्सराज सांराज देवचंद्रैः पसभमारब्धस्वापायोपायः श्रीवीत-रागमणीतद्यारसमयश्रीसमयमरूपणातिरस्करणं समालोक्य श्रीजिनाज्ञापालनिवतंद्रेण श्रीअष्टापदतीर्थाधिपति-श्रीजिन-नामस्मरणसंजातभद्रेण पार्श्वचंद्रेण पत्रमिदमलेखि यात्रिका-नेकदेशायातिववेकिलोकैः श्रीपत्तननगरनिवासिभिर्जिनाज्ञा-बासितिचत्रैर्जिनश्च वाच्यमानं चिरं नंद्यात् ॥ इत्सूत्रतिरस्काराभिधानोऽयं पटो लेखितः परमेश्वरेण ॥

॥ श्रीगरुभयो नमः ॥

जगन्नाथ जगत्त्रातः, कृपाकर कृपापद ।

शरण्यभक्तसाधार, शृणु विज्ञसिकां मम ॥१॥
नाथोऽसि त्वमनाथानां, जंतूनां भवतारकः ।

ममोद्धर्चा किलेदानी,—मेकस्त्वमसि नापरः ॥२॥
यदहं किचिदज्ञाना,—द्विपरीतं तवागमात् ।

बवीमि मध्ये लोकानां, तत्र त्वं मम साक्षिकः ॥३॥
त्वतः परं न देवं, मनसा ध्यायामि सर्ववेथा नाथ ।
वचसापि न स्तवीमि, मणमामि न मस्तकेनाहं ॥४॥
भावविशुद्धिं स्वामि,—न्मम विज्ञाता त्वमेव सर्वज्ञः ।
किं बहुना गदितेन, मश्चरेको में त्वमेवासि ॥५॥

॥ अथ साधनां धम्मोपदेशाधिकारे-प्रथमं तीर्थाधिपति-

श्रीवीरमतं ॥ श्रीप्रथमोपांगे---

### उत्सन्नतिरस्कारनामा विचारपट:

"ततेणं समणे भगवं महावीरे कुणियस्य रत्नो भंभासार-पुत्तरस सुभद्दापमुहाणय देवीणं तीसेय महतिमहालियाए परि-साए, इसि परिसाए ग्रुणिपरिसाए, जइपरिसाए, देवपरि-साए, अणेगसयाए अणेगसयए वंदा अणेगसयसहस्स वंदपरि-वाराए, ओहबले अडबले महब्बले अपरिमियबलवीरियतेय-माहप्पकंतिजुत्ते, सारदनवध्थणियमहरगंभोरकोंचनिग्घोस-दुंदुभिस्सरे उरे विथ्यडाए कंठे वट्टयाए सिरे समाइपणाएं अगरलाए अमम्मणाए, सन्वक्खरसन्निवाइयाए अपुणरु-चाए सन्वभासाणुगामिणीयाए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासति अरहा धम्मं परिकहेति, तेसि. सन्वेसि आश्चिमणाश्चिगं अगिलाए धम्ममाइ-क्खति, सा वियणं, अद्धमागृहा भासा तेसिं सन्वेसि आरिय-मणारियाणं अध्वणो भासाए परिणामेणं परिणमति, तंजहा-अध्यलोए, अध्यअलोए, एवं जीवाअजीवा बंधे मोक्खे प्रन्ते पावे आसवे संबरे वेदणा णिज्जरा. अरहंता चकवट्टी बलदेवा वासुदेवा नरगा नेरडया. तिरिक्ख जोणिया, तिरिक्ख जोणि-णीओ, माया पिया रिसिणो, देवा देवलीया, सिद्धिं सिद्धा परिनिद्याणे परिनिन्द्या, अध्य पाणाइवाए, मुसावाए, अद-त्तादाणे, मेहणे,परिग्गहे, अध्यि कोहे माणे माया लोभे, अध्यि जाव मिच्छादंसणसहे, अध्य पाणाइवायवेरमणे मुसावाय-वेरमणे अदत्तादाणवेरमणे मेहणवेरमणे परिग्गहवेरमणे। अध्य कोहविवेगे, जाविमच्छादंसणसञ्जविवेगे, सन्वं अध्य-

## आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं १३९

भावं अध्यित्ति वयति, सन्वं णध्यिभावं नध्यित्ति वयति, सुचि॰णा कम्मा सुचि॰णफुला भवंति, दुचि॰णा कम्मा दुचि-ण्णफला भवति, फुसइ पुण्णपावे, पच्छायति जीवा सफले क-छाणपावए, धम्ममाइक्खति । इणमेव निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलिए संसुद्धे पडिपुण्णे णेयाउए सह्चगत्तणे सिद्धि-मग्गे मुत्तिमग्गे निद्याणमग्गे णिज्जाणमग्गे अवितहमसंदिद्धे सद्यद्वस्वपहीणमग्मे, इथ्यं द्विया जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुद्धंति. परिनिच्वायंति, सन्बदुक्खाणमंतं करंति, एगचा पुण एगे भवांतरे प्रवकम्मावसेसेणं अण्युत्तरेसु देवलोएस देवताए जनवत्तारो भवंति। महिडिढएस जाव महासुक्खेस द्रंगतिएस चिरिटितिएस तेणं तथ्य देवा भवंति, महिड्डिया जावचिरिट्ट-तिया हार्विराइयवच्छा जाव पभासेमाणा कप्पोवण्णा गति-कञ्जाणा आगमेमि भद्दा जाव पहिरूवा, तमाइक्खति। एवं खळु चउहिं ठाणेहिं जीवा नेरइयत्ताए कम्मं पकरंति नेरइय-त्ताए कम्पं पकरेत्ता, नेरइएस उववडजंति तं० महारंभयाए महापरिगाहाए पंचिदियवहेणं क्रणिमाहारेणं, एवं एतेणं अभिलावेणं तिरिक्खजोणिएसु, माइल्लयाप्, नियडिल्लयाप्, अलियवयणेणं, उक्कचणयाए, वंचणयाए, मणुस्सेसु पगति-भद्दयाए पगतिविणीययाए सानुकोसयाए अमच्छरियाए, देवेस्र सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, अकामणिज्जराए, बालतवो कम्मेणं, तमाइवखित ।। गाथा-जह णरमा गम्मंतो. जह णरमा जातवेदणा णरए।

सारीरमाणसाई, दुक्खाई तिरिक्खजोणीए ॥१॥
माणुस्सं च अणिकं, वाहि जरामरणवेदणापउरं ।
देवे य देवलोए, देविड्ड देवसुख्खाई ॥२॥
नरगं तिरिक्खजोणि, माणुस्सभवं च देवलोगं च ।
सिद्धेय सिद्धिवसिंह, छज्जीविणयं परिकहेति ॥३॥
जह जीवा वउझंती, सुचंती जह य किलेस्संति ।
जह दुक्खाणं अंतं, करंति केइ अपिडबद्धा ॥४॥
अट्टदुहिय चित्ता, जह जीव-दुख्खसागरसुर्विति ।
जह देरगगसुवगया, कम्मससुगं विहाडंति ॥५॥
जह रागेण कडाणं, कम्माणं पावतो फलविवागो ।
जह य परिहोणकम्मा, सिद्धा सिद्धालयसुर्वित ॥६॥

तमेव धम्मं दुविहं आइक्खित तं जहा-अगारधम्मं अणगारधम्मं च। अणगारधम्मो ताव इह खळु सवतो सन्वत्ताए ग्रुंढे भवित्ता अगाराउ अणगारियं पन्वइ तस्स सन्वतो पाणाइवायाओ वेरमणं, ग्रुसावाय-अदत्तादाण-मेहुण-परिग्गह-राईभोयणाओ वेरमणं, अयमाउसो अणगारसामाइए धम्मे पण्णते, एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उविहुए णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवति । अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खित, तंजहा पंच अणुक्वयाई, तिमि ग्रुणक्वयाई, चत्तारि सिक्खाक्वयाई, पंच अणुक्वयाई, तंजहा-थूलाउ पाणाइवायाओ वेरमणं, थूलाउ-

# आचार्यश्रोघातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं १४१

मुसावायाओ वेरमणं, धूलाओ अदिनादाणाओ वेरमणं,सदा-रसंतोसे, इच्छापरिमाणे, तिश्चि गुणव्ययाई, तंजहा -अणध्य-ढंडवेरमणं दिसिन्वयं. जनभोगपरिभोगपरिमाणं, चत्तारि सि-क्खावयाई, तंजहा-सामाइयं, देसावगासियं, पोसहोववासो. अतिहिसंविभागो, अपन्छिममारणंतिया संलेहणा जुमणारा-हणा, अयमाउसो आगारसामाइए धम्मे पण्णत्ते, एयस्य धम्म-स्स सिक्खाए उवट्टिए, समणीवासिए वा समणीवासिया वा विहरमाणा आणाए आराहया भवंति। ततेणं सा महति महा-ल्या मणुसपरिसा समणस्स भगवतो महावोरस्स अंतिए धम्मं सोचा निसम्म हट्ट जाव हियया उट्टाए उट्टेति, समणं भगवं महाबीरं तिक्खुत्तो आदाहिणपदाहिणं करेति वंदति णमंसति. वंदित्ता णमंसित्ता, अथ्ये गतिया एडे भवित्ता अगाराउ अणगा-रियं पच्वइया, अध्ये गइयाणं पंचाणुवतियं सत्तसिवलावितयं दवालसविहं गिहिधम्मं पडिवण्णा, अवसेसाणं परिसा समणं भगवं महावीरं वंदति वंदिता. एवं वयासी-सुअवखाए भंते निमांथे पावयणे एवं सपण्णते सभासिए, सविणीए, अणुत्तरे ते भंते निरमंथे पावयणे, धम्मेणं आइक्खमाणा उत्रसम आइ-क्खह, जवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खए विवेगं आइ-क्खमाणा वेरमणं आडक्खह वेरमणं आडक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह णिथ्यणं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्मं आइक्खिए. किमंगपुण इत्तो उत्तरुत्तरं एवं वंदित्ता.जामेव दिसं पाज्यभया तामेव दिसं पडिगया'' ।। ए धर्मः

कथा श्रीमहावीरनी भाखी ॥ जिए सांभली तिए धर्म सर्व्य-विरति अथवा देशविरतिरूप आदर्थेउ । बीजे सांभली धर्मनंडं मूल उपशम विवेग विरति-पापकम्मैनड अकरण,एतलंडं सद्द-श्चंडं ॥ ए धर्मकथानड उदाहरण ठामि ठामि सूत्रमाहि फलाव्यो छे। एहने अनुसारि साधुभाषा जाणवी । तथा अनोतानागतव-त्तमान तीर्थकराणां मतं ॥

श्री आचारांगे-चतुर्थाः ययने-मथमोद्देशके-''से वेमि जे अईया जे य पहुष्पन्ना जेय आगमिस्सा अरहता भगवनो ते सब्वे एयमाइक्खन्ति एवं भामंति एवं पण्णिविति एवं पर्व्विति—सब्वे पाणा सब्वे भूया सब्वे जीवा सब्वे सत्ता न हंतवा न अज्ञावेयवा न परिघत्तव्या न परियावेयव्या न उद्देयव्या, एस धम्मे सुद्धे निइए सासए समिच लाय स्वेवण्णेहिं पवेइए, तंजहा-चिट्टएस वा अणुदिएस वा उविद्युप्त वा अणुवित्युस्त वा उविद्युप्त वा अणुवित्युस्त वा अन्यद्वेस वा आणुवर्यद्वेस वा मोविद्युप्त वा अणोविद्युस्त वा संजोगरएस वा अलंजागरएस वा, तच्चे चेयं तहा चेयं अस्ति चेयं पत्तुचइ ''।। इति श्री तीर्थकरनउ साधु-गृहस्थ मतिई उपदेश जाणिवड ॥

पुनः श्री आचारांगे -चतुर्थाध्ययने -२ उद्देशके "आवंति कैयावंती लोगंसि समणा य माहणा य पुढ़ा ाववार्य वर्धात, से दिई च णे सुर्य चणे मयं चणे विष्णायं चणे उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सञ्बंशो सुपडिलेडियं चणे-सञ्बे पाणा सञ्बे जीवा सञ्बे भूया सञ्बे सत्ता हन्तहा अज्ञावेष्ट्य परिवाव-

### आवार्यश्रीभातृचंद्रसुरि प्रग्थमाला पुस्तक ५१ मुं १४३

यन्वा परिघेत्तन्ता उद्देयद्वा, इत्थिव जाणह नित्यत्थदोसो, अणारियवयणमेयं, तत्थ जे आरिआ ते एवं वयासी—से दुिहं हैं च में दुस्सुयं च में दुम्मयं च में दुन्विण्णायं च में उद्दं अहं तिरियं दिसासु सन्वओ दुप्पिडलेहियं च में, जं णं तुन्में एवं आइक्खह एवं भासह एवं परूवेह एवं पण्णवेह—सन्वे पाणा ४ हंतन्त्रा ५, इत्थिव जाणह नित्थत्थ दोसो, अणारियवयणमेयं, वयं पुण एवमाइक्खामो एवं भासामो एवं परूवेमो एवं पण्णवेमो—सन्वे पाणा ४ न हंतन्त्रा १ न अज्ञावेयन्त्रा २ न परि-िच्चना ३ न परियावेयन्त्रा ४ न उद्देयन्त्रा ५, इत्थिव जाणह नित्थत्थ दोसो, आयरियवयणमेयं, पुन्वं निकाय समयं पत्तेयं पत्तेयं पुच्छिम्सामि, हं भो पवइया! कि मे सायं दुक्तं असायं १, समिया पित्वणे यावि एवं बूया—सन्वेसिं पाणाणं सन्वेसिं भ्याणं सन्वेसिं जीवाणं सन्वेसिं सत्ताणं असायं अपरिनिन्वाणं महन्भयं दुक्तं तिवेमि ॥ ''

तथा श्री शस्त्रपरिज्ञायां प्रथमाध्ययने पंचमोद्देसके - "तत्य खळ भगवया परिण्णा पवेदिता, इमस्स चेव जीवियस्स परि-वंदणमाणणपूयणाए जातिमरणमोयणाए दुक्खपिड्यायहे जे से सयमेव वणस्सइसत्यं समारंभइ अण्णेहिं वा वणस्सइ सत्यं समारंभावेइ अण्णे वा वणस्सइसत्यं समारंभमाणे समणुजाणइ, तं से अहियाए, तं से अबोहीए, से तं संबुज्ज्ञमाणे आया-णीयं समुद्वाए सोचा भगवओ अणगाराणं वा अंतिए इहमे-गेसिं णायं भवति-एस खळ गंथे एस खळ मोहे एस खळ

मारे एस खळु णरए, इच्चत्थं गड्डिए छोए, जिमणं विख्व-रूवेहिं सत्थेहिं वणस्सइकम्मसमारंभेणं वणस्सइसत्थं समारंभ-माणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसंति, से बेमि इमेपि जाइ-धम्मयं इमंपि बुडुढिधम्मयं एयंपि बुडुढिधम्मयं इमंपि चित्त-मंतर्य इमेपि चित्तमंतयं इमेपि छिण्णं मिलाइ एयंपि छिण्णं मिलाइ इमंपि आहारगं एयंपि आहारगं इमंपि अणिच्यं एयंपि अणिचयं इमंपि असासयं एयंपि असासयं इमंपि चओ-वचइयं एयंपि चओवचइयं इमंपि विपरिणामधम्मयं एयंपि विपरिणामधम्मयं । एत्थं सत्थं समारभमाणस्स इचेते आर्र-भा अपरिण्णाता भवंति, एत्थ सत्थं असमारभमाणस्स इचेते आरंभा परिण्णाया भवंति, तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं वण-स्सइसत्थं समारंभेज्जा जैवण्णेहिं वणस्सइसत्थं समारंभावेज्जा णेवण्णे वणस्सइसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्ञा, जस्से ते वण-स्सतिसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णाय-कम्मेत्तिबेमि ॥ " ए बीतरागनउ उपदेश ॥ इणि परिइं छह-यकाय समारंभ त्रिकरणसृद्धिः साधुटालः, विराधनानी छोडो सत्रमतिइं उत्सर्गे नइ व्यवहारि नथी दीसती। बीजी पांच कायनड विवर्ड ग्रंथवाधिवानइ मेलि नथो लिख्यडं, वर्णि-कामात्र लिख्यउं छड ॥

पुन:-श्री आचारांगे षष्टाध्ययने चतुर्थीहेशके-''ओए समियदं ने, दयं लोगस्स जाणिता पाईंगं पडीणं दाहिणं **डरीणं** आइक्खे, विभए किहे वेयवी, से डाइएस वा अणुहि-

# आचार्यभोत्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं. १४५

पसु वा सुस्यसमाणेसु प्रवेयए संति विरइं उवसमं निन्वाणं सोयं अक्जवियं मह्वियं लाघवियं अणइवत्तियं सन्वेसि पाणाणं सन्वेसि भूयाणं सन्वेसि जीवाणं सन्वेसि सत्ताणं अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खिजा, अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खिजा, अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे नो अत्ताणं आसाइज्जा नो परं आसाइज्जा नो अन्नाइं पाणाइं भूयाई जीवाइं सत्ताइं आसाइज्जा, से अणासायए अणासायमाणे वज्झमाणाणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ सरणं महासुणी "॥ अस्य वृत्तौ अशिलांकाचार्यमनं, —साधुनिरवदानुष्टानं मरूप्येदित्यर्थः॥

पुन:-आचारांगे श्रीसप्तमाध्ययने-" इहमेगेसिं आयार-गोयरे नो सुनिसंते भवति ते इह आरंभट्टी अणुवयमाणा हण पाणे घायमाणा हणओ यावि समणुजाणमाणा " इत्यादि अस्यार्थ:-विहारारामतडागादिभिर्धमे वदंतोऽनुवदंतः क्कशीला इत्यर्थ: ॥ तथा श्रीराजमश्रीयोगंगे ॥२॥—

स्रियाभदेवना आभिओगी देवता श्रीमहावीरनई वांदी ऊभा छता प्रतिई श्रीमहावीर बोल्या ॥ "देवाय समणे भगवं महावीरे देवे एवं वयासी-पोराणमेयं देवा! जीयमेयं देवा! किसमेयं देवा! करणिक्जमेयं देवा! आइन्नमेयं देवा! अब्भ-णुन्नायमेयं देवा! जं णं भवणवइ वाणमंतरजोइसिय वेमाणिया देवा अरहते भगवंते वंदंति नमंसंति। तओ साई साई नाम-गोत्ताई साईति॥" एतस्री प्ररूपणा दीसइ छइ। परं इम न कक्कर्डं "जं देवा जोयणपरिमंडळं करंति। पुष्फपगरं भरंति

### उत्स्रव्रतिरस्कारनामा-विचारपट:

ध्रवघडीओ करंति।" तिणि कारणि जाणियइ छइ साधुनउ **उपदेश निरवद्य छ**इ ॥ तथा फ्रूलपगरादि सर्वे आपणइ **हर्षि** कीधड मरूप्यं सुत्रमाहि दीसइ छइ ॥ तथा सुरियाभ आगस्ति प्रण मरूपणा एतलीजछइ ॥ ''परं नाडयं करंति,'' इम मरूप्यउं नथी । अनई सुरियाभि नाटककी घउं दीसइ छड ॥ नाटक क-रिवानइ प्रक्षि ''नो आढइ नो परिआणइ तुसिणीए संचिद्वइ" एहवा अक्षर छड़ !! निषेषड नथी प्ररूपणा पुण नथी। तथा-श्रीकेशीकुमारश्रमण प्रदेशीराजा सभाई बडसिवा भणी प्रश्नि कीधइ-" एसा उज्जाणभूमी एस तुमं चेव जाणसि "। परं प्रतिबोधन छाभ जाणी बहसि इम कां न कहाउं। अथवा ''अहासुइं'' ए भाषा काँई न बोली॥ तथा दाननइ अधिकारि " पुटिंव रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिक्जे मा भविज्जासि "। एहवउं वचन चिहं दृष्टांत सहित कहाऊं विम ऊघाडचं इम स्यइ न कहाउं। श्रावक दानशाला मंडावी दानचइ तओ रमणीय थाइ। तथा श्री आगममाहि ढामि ठामि दानना भावना कथक वचन ''अवगुत्तद्वारा ऊसियफलिहा '' एहवा श्रावकनई अधिकारि छइ॥ तउ इम जाणिज्यो साधु बोलतउ सावद्य थत् बीहड़। तथा चरितानुवादि सुत्रमाहि ठामि ठामि श्रीजि-नागमनि सांभल्यइ शीतिदान साढाबारलाख, पहिलुडं एक-लाख आठसहस ए पीतिदान । तथा वांदिवानड काजि अने-क महोत्सव श्रीप्रथम उपांगि—क्रुणिकनइ अधिकारि । एवं

# आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रस्रि प्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं १४५

डामि डामि राजाधिकारि गृहस्थनई अधिकारि श्रावकनड अधिकारि वांदिवा भणी महोत्सव श्री भगवतिमाहि राजाश्री षदायनाधिकारि अपार महोत्सव तथा तीर्धेकरनइं अधिकारि देवता मनुष्यना कीधा दीक्षामहोत्सव अपर सामान्यसाध मैयकुमार,थावचा गयसुकुमाल जमालि प्रभृतिना अनेक गाढा सविस्तरदीक्षामहोत्सव । तथा श्रीमद् ज्ञाताधर्मकथांगि-श्री-मिल्लने संवत्सरीदान, श्रीआचारांगि-श्रीमहावीरने संव-त्सरीदान तथा श्रीदशाश्रुतस्कंवि श्रीमहावीर श्रीपार्श्व श्रीनेमि श्रीआदीश्वरनउ वार्षिक दान तथा छट्टइ अंगि श्री महिनी दानशाला, पोट्टिलानी दानशाला, श्रीमल्लिई ६ मित्र प्रति-बोधकाजि मोहणघर जालघर सुवर्णमय प्रतिमाकरण सिद्धान्न-परिशाटना तथा सुबुद्धि मंत्रीश्वरि फरिहोदक निर्मेली करण. बीजइ उपांगि चित्रसारथीइं प्रदेशीरायनइं अश्वदमन निमं-त्रण तथा श्रीसृरियाभादिकना अनेक वंदन महोत्सव हियानइ उल्लासि दीसइ छइ, परं विधिवादि साधुनइ उपदेश जाणीतंत्र नथी. चरितानुवादि दीसंइ छड ॥ अनई ए आरभ अर्थ हेति काम हेति जाणीतउ नथी, एतलामाहि मिथ्यादृष्टी पुण नथी जाणयउ, परं साधुनईं भाषानउ विशेष परोछयउ जोईयइ। तेह ऊपरि वली लिखीयइ छइ॥ श्रीसुयगडांगे द्वितीयश्रतस्कंधे-''तत्थ खल्ज भगवता छज्जीवनिकायहेऊ पन्न-त्ता, तंजहा-पुढविकाइए जाव तसकाइए, से जहा नामए मम अस्सायं दंडेण वा अहीण वा सहीण वा लेखण वा कवालेण

### उत्स्रत्रतिरस्कारनामा-विचारपट:

वा आउडिज्जमाणस्स वा हम्ममाणस्स वा तिज्जिमाणस्य वा ताडिज्जमाणस्स वा परियाविज्ञमाणस्स वा किल्जिमाण् णस्स वा उद्दिव्जिमाणस्स वा जाव लोमुक्खणणमायमि हिंसाकारगं दुक्यं भयं पिडसंवेएिम, इचेवं जाण सन्वे पाणा सन्वे भूया सन्वे जीवा सन्वे सत्ता दंडेण वा जाव कवालेण वा, आउडिज्जमाणा वा हम्ममाणा वा तिज्जिज्जमाणा वा ताडिज्ज-माणा वा परियाविज्जमाणा वा किल्जामिज्जमाणा वा उद्दिव्जन-माणा वा जाव लोमुक्खणणमायमिव हिंसाकारगं दुक्खं भयं पिडसंवेदंति ॥ '' श्रीभगवंत तीर्थकरे सन्वे जीवनइं आत्मस-मान दुक्ख कह्यउं। परं किहाई किणिही अधि दुःख न उप-जइ अनइ एहनी विराधना दोष नथी, इम न कह्यउं॥ तथा

श्रीदश्वैकालिके—''पुढवीचित्तमंत्तमक्खाया अणेग जीवा पुढोसत्ता अन्नध्य सध्यपरिणएणं । आऊचित्तमंतमक्खाया अणेग० ॥२॥ तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेग जीवा०॥३॥ वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा० ॥४॥ वणस्सई चित्तमंतम-क्खाया, अणेगजीवा० ॥ ६ ॥ ११ इत्यादि स्थावर ६ मांहि वनस्पति विना अनेरामांहि असंख्याता जीव बोल्या ॥

गाथा-" एगस्स दुन्ह तिन्ह व, संखिजाणं न पासिउं सका। दीसंति सरीराई, पुढविजिआणं असंखिजा॥ १॥ एगंमि दगविदुंमि० " इत्यादि वनस्पति माहि संख्याता अ-संख्याता अनंता पुण छाभइ। साधारण वनस्पति अनंतकाय

# आचार्यश्रीब्रातृचंद्रसूरि प्रम्थमाला पुस्तक ५१ मुं १४९

जाणिवी। सर्वे कंदादिक भेद ३२ तथा श्रीपन्नवणा उपांगमाहि फुळनउ विशेष बोल्यड छड़ ॥ तथा च

गाथा—"पुष्फा जलया थलया, बिंट बद्धाय नालबद्धाय। संखिज्जमसंखिज्जा, बोधव्वाणंतजीवा य॥१॥ जे केइ ना-लियाबद्धा, पुष्फा संखिज्जजीविया भणिया। निहुया अणंत जीवा, जेया वण्णा तहाविहा॥२॥११ एहवा स्थावर जीवकह्या, पहनइ संघिट केहवी वेदना थाइ ते कहइ छइ॥

गाथा-''बुड्ढं जङ्जर थेरं, जो घायइ जमल मुहिणा तरुणो। जारिसी तस्स वियणा, इगिंदि संघट्टणे तारिसी '' ॥१॥ इसउं जाणी साधु छक्काय राखइ। यतः-श्रीदश्चनैकालिके-

गाथा-'' पुढवी दग अगणि मारुय, तणरुक्खस्स बीयगा । तसाय पाणा जीवत्ति. इइ वुत्तं महेसिणा ॥१॥

तेसि अत्थण जोएण, निर्च होअव्वयंसिया । मणसा कायवकेणं, एवं हवइ संजए '' ॥२॥ इतिवचनात्

साधु जिहां साधुनइ वचिन सावद्य लागइ ते भाषा न बोलइ। साधुनउ वचन ते जेहनी विधि तथा जेहना फल साधु कहइ ते विधिवाद उपदेश, ते साधु करइ करावइ अनु-मोदइ।। बीजा चिरतानुवाद यथास्थितोपदेश सिद्धांत माहि घणाई छइ, ते तेणइ माणि जाणिवा। इणि कारणि चारि-त्रियइ सावद्य भाषा न बोलिवी।। यतः-श्रीमहानिशीथे-

" सावज्जणवज्जाणं, वयणाणं जो न जाणइ विसेसं । बुर्जुपि तस्स न खर्म, किमंगपुण देसणं काउं ॥१॥ '' तथा—

### उत्स्रत्रतिरस्कारनामा-विचारपटः

श्रीस्यगडांगेऽध्ययनि ११ में "हणं तं नाणुजाणिज्जां, आयगुत्ते जिइंदिए।" इत्यादि गाथा-तेहनउ भाव, जे शक्ताः गारादि करणहार साधुनइं धम्माधममें विशेष पूछइ, तिवार्र साधु अस्ति नास्ति विहूं माहि एकइ न कहइ, मध्यस्थ भाषः रहइ।ए भाषा साधुनी छइ। तथा-वली श्रीस्यगडांगमाहि-

" धम्मपत्रवणा जा सा. तं तु संकंति मृदया। आरंभाइं न संकंति, अ वियत्ता अ कोविया " ॥१॥ तथा-पुन:-"दयावरं धम्म दुगुंखमाणा वहावहं धम्म पसंसमाणा । " इत्यादि अनेक अक्षर छड् ॥ तथा-श्री ठाणांगे- '' दोय ठाणाई अपरियाणित्ता। आया केविछ पन्नत्तं धम्मं नो लभेज्ज सवणयाए । तंजहा-आरंभे चेव परिग्महे चेव '' इत्यादि । आरंभ अनई परिग्रह जे अनर्थ इम न जाणइ ते केवली प्रणीत धर्म सांभलिवा न ळहड़। अनई जे आरंभनड पचक्खाण न करड़ ते जीव नर-कायु बांधइ, ते श्री आगममाहि ठामि ठामि बोल्यउं छइ॥ " महारंभयाए महापरिग्गहयाए।" इत्यादि स्थानक ४ श्री उववाई उपांगि, श्रीटाणांगि, श्रीविवाहपसत्ति प्रमुख सुत्रमा-हि छइ ॥ इणि कारणि जिहां आरंभ तिहां सावध, तिहां साधु मनि वचनि कायाई पवर्त्तेइ नहीं ।। तथा-श्रीदश्रवैका-लिकेऽध्ययनि ७ मे-

गाथा-" असच मोसं सचं च, अणवज्जमककसं। सम्रुप्तेह-मसंदिद्धं, गिरं भासिष्ज पन्नवं॥१॥

तथा-तहेव सावज्जं जोगं. परस्सद्वाय निद्वियं। कीरमाणंति वा नचा, सावज्जं न छवे ग्रुणी ॥२॥ सुकडित्ति सुपिकत्ति, सुच्छिन्ने सहडे मडे। सुनिहिए सुलहित्ति, सावज्जं वज्जए सुणी ॥३॥ " तथा-श्रीस्रयगडांगे-'' ते सच्वे पावाडया आदिगरा धम्माणं पापापना पापाछंदा पापासीला पापादिही पा-णारुई णाणारंभा णाणाज्झवसाणसंजुत्ता एगं महं मंडलिबंधं किचा सब्वे एगओ चिट्टंति । पुरिसे य सागणियाणं इंगा-ळाणं पाई बहुपडिपुन्नं अओमएणं संडासएलं गहाय ते सन्वे पावाउए आइगरे धम्माणं णाणापन्ने जाव णाणाज्यवसाणसं-जुत्ते एवं वयासी हंभो ! पात्राज्या ? आइगरा धम्माणं णाणापत्रा जाव णाणा अज्झवसाणसंजुत्ता ? इमं ताव तुब्भे सागणियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुत्रं गहाय मुहुत्तयं मुहुत्तगं पाणिणा धरेह, जो बहुसंटासर्ग संसारियं कुज्जा जो बहुअग्नियं भणियं कुज्जा जो बहु साहम्मियवेयाविडयं कुज्जा जो बहुपरधम्मिय-वेयावडियं कुज्जा उज्ज्ञया णियागपडिवन्ना अमायं कुद्यमाणा पाणि पसारेह, इति बुचा से पुरिसे तेसिं पावाद्याणं तं साग-णियाणं इंगालाणं पाइं बहुपडिपुन्नं अओमएणं संडासएणं गहाय पाणिसु णिसिरति, तए णं ते पावादुया आइगरा धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाज्झवसाणसंजुत्ता पाणि पडिसाहरंति, तए णं से पुरिसे ते सब्वे पावाउए आदिगरे धम्माणं जाव णाणाज्झवसाण संजुत्ते एवं वयासी-ईभो ! पावादुया आइगरा

धम्माणं णाणापन्ना जाव णाणाञ्ज्ञवसाणसंजुता! कम्हा णं तुब्भे पाणि पडिसाहरह ? पाणि नो डहिज्जा, दड्ढे कि भवि-स्सइ ?, दुक्खं दुक्खंति मन्नमाणा पहिसाहरह, एस तुला एस पमाणे एस समोसरणे, पत्तेयं तुला पत्तेयं पमाणे पत्तेयं समी-सरणे. तत्थ णं जे ते समणा भाइणा एवमातिक्खंति जाव परूवेति-सब्वे पाणा जाव सब्वे सत्ता इंतद्वा अज्जावेयद्वा परि-घेतवा परितावेयदा किलामेतवा उदवेतवा. ते आगंतुलेयाए ते आगंतुभेयाए जाव ते आगंतुजाइजरामरणजोणिजम्मणसंसार-पुणब्भवगब्भवासभवपदंचकलंकलीभागिणो भविस्संति, ते बहूणं दंडणाणं बहूणं ग्रुंडणाणं तज्जणाणं तालणाणं अंदुवंध-णाणं जाव घोल्रणाणं माइमरणाणं विडमरणाणं भाइमरणाणं भगिणीमरणाणं भज्जापुत्तध्रतसुण्हामरणाणं दारिहाणं दोह-ग्गाणं अप्पियसंवासाणं पियविष्पओगाणं बहूणं दुक्खदोम्म-णस्सार्ण आभागिणो भविस्तंति, अणादियं च र्णं अणवयमां दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं भुज्जो भुज्जो अणुपरियद्दिश्संति, ते णो सिज्झिस्छंति णो बुझिस्संति जाव णो सबदुक्खाण अंतं करिस्सैति. एस तुला एस पमाणे एस समीसरणे पत्तेयं तुला पत्तेयं प्रमाणे पत्तेयं समोसरणे ॥ तत्थ णं जे ते समणा माहणा एदमाइक्खंति जाव परूर्वेति हन्वे पाणा सन्वे भ्रया सन्वे जीवा सन्वे सत्ता ण इंतबा ण अज्जावेयबा ण परिघेतन्वा ण उद्द-वेयहा ते जो आगंतुक्रेयाए ते जो आगंतुभेयाए जाव जाइ जरामरणजोणिजम्मणसंसारपुणव्भवगव्भवासभवपर्वचक्रळंक-

# आचार्यश्रीभातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५१ मुं. १५३

ळीभागिणो भविस्संति, ते णो बहुणं दंडणाणं जाव णो बहुणं मुंडणाणं जाव बहुणं दुक्खदोम्मणस्साणं णो भागिणो भविस्सैति. अणादियं च णं अणवयमां दीहमद्धं चाउरंतसंसा-रकंतारं भ्रज्जो भ्रज्जो णो अणुपरियद्दिस्तंति, ते सिज्झिस्संति जाव सन्बदुक्खाणं अंतं करिस्संति । " इतिवचनातु ॥ तथा-श्रीदश्चवैकालिके—'' तहेवसावज्जणुमोडणीगिरा, ओहारिणी जाव परोवधाइणी । से कोह लोह भयसा व माणवी, न हासनाणो वि गिरं वङ्जा ॥ १ ॥ सुवकसूर्द्धि समुपेहिआ मुणी, गिरं च दुट्टं परिवज्जए सया । मिअं अदुट्टं अणुवीइ भासए, सयाणवडजे लहई पसंसर्ण ॥ २ ॥ भासाइ दोसे अगुणे अ जाणिआ, तीसे अ दुट्टे परिवज्जए सया। छसु संजल सामणिल सया जल, वहन्न बुद्धे हि अमाणु-छोमिञ ॥३॥ " इत्यादि साधुनी भाषानी विधि जाणिवी I तथा-श्री स्वयगडांगे अध्ययन २० मे-शिष्यः प्रच्छति-" से किं कुन्वं किं कारवं कहं संजय विरयप्पडिहयपचक्खायपाव-कम्मे भवइ ?, आचार्य आह तत्थ खळु भगवया छज्जीवणि काय-हेऊ पण्णत्ता, तंजहा-पुढवीकाइया जाव तसकाइया, से जहा-णामए मम अस्सातं डंडेण वा " इत्यादि । आलावड पहिलड लिरुपड छइ। तिहइ ज जाणिवड। " जाव दुक्खं भयं पडि-संवेदेंति, एवं णञ्चा सन्वे पाणा जाव सन्वे सत्ता न इंतन्त्रा जाव ण उद्दवेयव्वा, एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच लोगं खेयनने हिं पवेदिए, एवं से भिक्खू०" इत्यादि साधुपदेशः॥

### उत्सुत्रतिरस्कारनामा-विचारपट:

# तथा-श्रीउत्तराध्ययने---

संरंभ समारंभे, आरंभंमि तहेव य ।

मणं पवत्तमाणं तु, नियहेज्ज जयं जई ॥१॥
संरंभ समारंभे, आरंभंमि तहेव य ।
वयं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२॥
संरंभ समारंभे, आरंभंमि तहेव य ।
कायं पवत्तमाणं तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥३॥

इत्यादि । तथा-श्रीपश्चन्याकरणे-सप्तमाध्ययने--

"सचिपय संजमस्स उवरोहकारगं किंचि न वत्तव्वं हिंसासावज्झसंपउत्तं " तथा " वितियस्स वयस्स अलियवय- णस्स वेरमणपरिरवखणद्वयाए पढमं सोऊणं संवरहं परमहं सुहु जाणिऊण न वेगियं न तुरियं न चवलं न कहुयं न फरुसं न साइसं न य परम्स पीलाकरं सावज्जं सचं च हियं च मियं च गाहगं च सुद्धं संगयमकाहलं च सिमित्स्वतं संजतेण कालंमि य वत्तववं "तथा-श्रीडपदेशमालायां-'छज्जीव कायवहगा०'।१। छज्जीवकायमहन्वयाण परिपालणाइ जइधम्मो । जह पुण ताइं न रक्त्वइ भणइ को नाम सो धम्मो ॥२॥ छज्जीविकाय- दया० ॥३॥ सव्वाउगे० ॥४॥ तह छक्काय महन्वय० ॥५॥ जइयाणेणं चत्तं० ॥६॥ छक्कायरिक्जण० ॥७॥ " इत्यादि साधु-न मागि छकाय पालिवी कही ॥ साधुनउ वचन निरवध-

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि वन्यमाळा पुस्तक ५१ मुं. १५५

इज थाइ ॥ तथा कोई इम कहिस्यइ । वीतरागनइ वचनि साधु नदी ऊतरइ । तथा मेह वरसतइ गोचरी जाइ। तथा मेहवरसतइ उपाश्रयि आवइ। एकादि स्त्रीनइ संयोगि वरसतइ नीसरइ । तउ इ<mark>हां</mark> अप्काय संघट्टि सावद्यळागइ । ए उपदेश किम दीधरं, तिहां इम जाणियइ छइ। एकतर साधुनइ कह्यल, परं गृहस्थनई नथी कह्यल । तथा नदीज बहू २ जतरिवी नही कही। नदी जतर्या माहि धर्मपुण नथी बोल्यउं। जइ बीजउ मार्गे जाइवानउ हुइ तउ नदीजमाहि जाइवर कहार नथी। इस करतां ज्ञान दर्शन चारित्रराखिवानई काजि नदी ऊतरतां जयणानी विधि श्रीवीतरागि बोळी, परं ए सर्वदा सदा कर्चेन्यनं उपदेश नथी। तथा अल्परृष्टिमाहि स्थविरकल्पीनई जाइवड कह्यउं। तउ घणइ वरसतइ जाइवड स्यइ न कहाउ । परं जाणियइ कारणि जयणा हेत कहाउं। अनई जिनकल्पीनइ न कहाउं। अथवा जे वरसतइ विहरवा न जाइ ते विराधक इम पुण नथी कह्य उं । तथा-स्त्रीनइ संयो-गि जइ एकांत हुइ तड नीसरिवड कह्मड, अन्यथा नथी पुण कह्यच, तिहां ब्रह्मचर्ये राखिवानड कारण छड़। वरसतइ उपा-श्रयइ आविवानी आज्ञा छड़ । ते कारण गीतार्थ जाणइ, परं जे विराधना लागी ते करिवानड उपदेश नथी जाणिड. ते पहिकामिवा योग्य जाणियह छड, परं गृहस्थनह एहवज किहांड न कहाउं, तिणि कारणि साधुनइं साधुईं कहतां सावद्यभाषा न बोलाइ । परं गृहस्थनज जे कर्त्तव्य सुभानुबंध छड तिहां जे

आरंभ दीसइ तिहां साधुनउ यथास्थित उपदेश अथवा चरिता-नुवादि उपदेश सूत्रमाहि जाणियइ छड़ । अने जे निरवद्यानु-ष्ठान सुभानुर्वध तिहां विधिवादई उपदेश दीसइ छड़ । वली सूत्रमाहि पश्चक्खाणनी विधि पहनी दीसड छड़ ॥

उत्स्रत्रतिरस्कारनामा-विचारपटः

श्रीभगवतीसुत्रे-सप्तमञ्जते-द्वितीयोद्देशके-'' से नूणं भंते ! सन्वपाणेहिं सन्वभूएहिं सन्वजीवेहिं सन्वसत्तेहिं पश्चक्खाय-मिति वदमाणस्स सुपच्चक्खायं भवति दपचक्खायं भवति ?, गोयमा ! सन्वपाणेहिं जाव सन्वसत्तेहिं पश्चक्खायमिति वद-माणस्स सिय सुपचक्लायं भवति सिय दुपचक्लायं भवति, से केणहेणं भंते ? एवं बुझड़ सब्बपाणेहिं जाव सिय दुपच-क्खायं भवति ?. गोयमा ! जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्व-सत्तेहिं पचक्लायमिति वटमाणस्स णो एवं अभिसमन्नागयं भवति इमे जीवा इमे अजीवा इमे तसा इमे थावरा तस्स णं सन्वपाणेहिं जाव सञ्बसत्तेहिं पश्चक्खायमिति वदमाणस्य नो सुपचक्खायं भवति दुपचक्खायं भवति, एवं खल्र से दुपच-क्खाई सञ्ज्ञपाणेहि जाव सञ्जसत्तेहिं पञ्चक्खायमिति वदमाणो नो सर्च भासं भासइ सोसं भासं भासइ, एवं खळु से ग्रसा-वाई सन्त्रपाणेहिं जाव सन्वसत्तेहिं तिविहिं तिविहेणं असंज-यविर्यपडिद्वयपच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असंबुडे एगंतदंडे एगंतवाले यावि भवति, जस्स णं सव्वयाणेहिं जाव सव्वसत्ते-हिं पचक्लायमिति वदमाणस्स एवं अभिसमन्नागयं भन्नः इमे जीवा इमे अजीवा इमे तसा इमे थावरा, तस्स णं सन्व-

## आचार्यभीष्रातृचंद्रसूरि यग्थमाला पुस्तक ५१ मुं १५७

पाणेहिं जाव सञ्वसत्तेहिं पचक्लायमिति वदमाणस्स सुपचक्लायं भवित नो दुपचक्लायं भवित, एवं खळ से सुपचक्लाइं सञ्वपाणेहिं जाव सञ्वसत्तेहिं पचक्लायमिति वयमाणे सच्चं भासं भासइ नो मोसं भासं भासइ, एवं खळ से सचवादी सञ्वपाणेहिं जाव सञ्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं संजयिवस्पादिहयपचक्लायपावकम्मे अकिरिए संबुढे एगंतपंहिएयावि भवित," (से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं बुच्चइ जाव सिय दुपचक्लायं भवित) इति श्रीजिनवचनात् ॥ जइ जीवाजीव जाणइ तेइनच पचक्लाण प्रमाण। तथा जाणीनई पालइ नहीं तेइनच जाणपणउं अप्रमाण यदुक्तं-श्रीउत्तराध्ययने (पृष्ठ श्रुल्ळक निग्रन्थीयाध्ययनमध्ये)—

" इहमेगे उ मन्नंति, अपचक्ताय पावगं । आयारियं वियत्ताणं सन्वदुक्ता विम्रुचई ॥१॥ भणंता अकरंता य, बंधमुक्खपइण्णिणो । बाया वीरियमेत्तेणं, समासासंति अष्पयं ॥२॥ न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं । विसन्ना पावकम्मेहि, बाला पंडियमाणिणो ॥३॥"

इतिवचनात् । तथा श्रीउपदेशमालायां-

" मुचा ते जियलोए, जिणवयणं जे नरा न याणंति । मुचा णवि ते मुचा, जे नाउणं नवि करंति ॥१॥ " इतिवचनात् । तथा-हिव जिनमतिमाधिकारि उपदेशस्वरूप लिखिइ छइ ॥ श्रीअनुयोगद्वार मूल सुत्रि सुत्रनु उपदेश एहवड

#### उत्स्रव्रतिरस्कारनामा-विचारपटः

नाम छड़। हिवं ते सुत्रसाधु वांचतर उपदेशदाता बोलाइ। परं ते उपदेशना भाव भेद परीछया जोइयइ । विधिवाद १, चरिता-नुवाद २, यथास्थितवाद ३, ए उपदेश ते हेय १ ज्ञेय २ उपादेय ३ छड, एतलामाहि सर्व्य शास्त्रनड रहस्य गुरुपसादि जा-णियइ ॥ श्रीआगममाहि ठामि ठामि साखि छइ, प**रं** विज्ञेषिडं श्रीरायपसेणी तथा श्रीजीवाभिगममाहि श्री-जिनपतिमाधिकारि-" हियाए सहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति । '' जिननी दाढ अनइ श्रीजिन-प्रतिमार्वदन पूजनना एहवा फल बोल्या। तथा श्रीभगवतीमाहि स्वंधक परिवाजकनई पवज्याधिकारि धनकादिवानउ फल. " हियाए सहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियताए भवि-स्सति '' एहवर बोल्यर छइ ॥ तथा श्रीरायप्पसेणीमाहि, श्रीभ-गवतीमाहि. श्रीतीर्थंकर वांदिवानउ फल-'' हियाए सहाए'' इत्यादि बोल्यउं छइ॥ तथा श्री आचारांगादि सुत्रमाहि ठामि २ पंचयहात्रतपालिवानां फल ''हियाए सहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए" अथवा । "एस खळु पाणा-इवायवेरमणे हिए सुहे खमे निस्सेयसिए आणुगामिए " इत्यादि छहड व्रतनं फरू बोल्यं । हिव ए सर्व्व वचन सूत्र-माहि बोल्या भणी साधुनड उपदेश कहवाइ, परं जे डाइड हसिइ ते प्हमाहि हेय उपादेय जाणिस्यइ। एतलामाहि जिन-प्रतिमान जे उपदेश फल ते सामानिकदेवतान भाष्यज जाणियइ छइ! साधुनइ ए यथास्थितोपदेश, परं सम्यगुदृष्टीना

## आचार्य श्री भातृचंद्रसूरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५१ मुं. १५९

कत्तेव्यभणी श्रीवीतराग किहांइ निषेध्यत नही, तिणि कार-णि ए उपदेश हेय न कहियह।। तथा धननउ फल धनलुब्धनड भाष्यत अनइ वली श्रीवीतरागे ठामि ठामि निषेध्यतं । उत्तरा-ध्ययने ४ अध्ययने-" वित्तेण ताणं न लभे पमत्तो " इत्यादि वचनात ए हेय धर्मनइ अधिकारि कहियइ। तथा श्रीवीत-राग वांदिवानउं फल सम्यग्दृष्टीदेवता, मनुष्य तथा श्रावकना भाषित भणी तथा "तहारूवस्स णं समणस्स वा माहणस्स वा पञ्जुवासणा किं फला?''इत्यादि पश्च सवण नाण विकाण पच्चक्लाण इत्यादि उत्तर वचन श्रीवीतरागना कह्या भणी उपादेय उपदेश जाणियइ छइ। तथा पंचमहाव्रतपालिवानउ श्रीवीतरागजिन भाषित भणी विधिवाद उपदेश जाणियइ छइ।। हिवं जे सम्यग् प्रकारि विधिवादि उपदेश छइ, तिहां जाणिज्यो साधुनंड करण कारण अनुमोदन छइ। इहां संदेहनथी । जे चरितानुवाद अनई यथास्थितइज छइ. तिहां त्रिकरणनं निश्चय नथी जाण्यत । वली गीतार्थ कहड ते प्रमाण । हिवई श्रीजिनप्रतिमा चरितानुवादि सम्यग्दृष्टी देवता मनुष्यनई अधिकारि वांदी पूजी दीसइ छइ, परं ते जिनना राग भणी यथायोग्य उपादेय जाणियइ छइ। एइनी साखि सूत्रमाहि ठामि ठामि छइ तथा श्रीरायपसेणीसुत्रे-''तेणं कालेणं तेणं समएणं सुरियामे देवे अहुणोववण्णमित्तिए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तंजहा-आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जतीए इंदियपज्जतीए आणपाणप-

जन्तीए भासामणपज्जनीए. तए णं तस्स सुरियाभस्स देवस्स पंचिवहाए पञ्जत्तीए पञ्जत्तीभावं गयस्स समाणस्स इमेया-ह्रवे अब्भित्थए चितिए पत्थिए मणोगए संकृपे सम्प्रपिजन त्था-किं मे पुव्वि करणिज्ञं ? किं मे पच्छा करणिज्जं ? किं मे पुर्विव सेर्यं ? किं मे पच्छा सेर्यं ? किं मे पुर्विविव पच्छावि हियाए सहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ?, तण णं तस्स सरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसो-ववन्नगा देवा सुरियाभस्स देवस्स इमेयारूवब्भित्थयं जावसम्र-प्पन्नं सम्भिजाणित्ता जेणेव सुरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति सरियाभं देवं करयलपरिगाहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजिल्लं कट जरुणं विजरणं बद्धाविन्ति बद्धावित्ता एवं वयासी-एवं खळु देवाणुष्पियाणं सुरियाभे विमाणे सिद्धायतणंसि जिणप-हिमाणं जिणुस्सेहपमाणिमत्ताणं अद्वसयं संनिखितं चिट्रंति. सभाए णं सहस्माए माणवए चेहए खंभे वहरामएस गोल वद्रसम्भगएस बहुओ जिणसकहाओ संनिखिताओ चिट्टंति, ताओ णं देवाणुष्पियाणं अण्णेसि च बहुणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पञ्जुवासणिज्जाओ, तं एयं णं देवाणुष्पियाणं पुन्तिं करणिज्जं, तं एयं णं देवाणु-ष्पियाणं पच्छा करणिज्जं तं एयं णं देवाणूष्पियांण पुर्वि सेयं तं एयं णं देवाणुष्पियाणं पच्छा सेयं तं एयं णं देवाणु-चियाणं पुर्विविप पच्छावि हियाए सहाए खमाए निस्सेयसाए आणगामियत्ताए भविस्सति ॥ तए णं से सुरियाभे देवे तेसिं

सामाणियपरिसोववन्नगाणं देवाणं अंतिए एयमट्टं सोचा निसम्म हटू तुटू जाव हयहियए सयणिज्जाओ अब्स्रुट्रेति ॥'' इम देवता सामानिकन्ड भाषित देवतानइ अधिकारि जिनप्रतिमा वंद-नीय पूजनीय एहवर विधिवाद जाणिवर ॥ जेहवर फल श्रीवीरवंदनानु सूरियाभि कहाउ, तेहवु फल श्रीजिनमतिमा वंदन पूजननं कहाल, सम्यग्वादीना भाष्याभणी बेवइ प्रमाण जाणियइ छड ॥ श्रीजीवाभिगमे-''तते णं से विजए देवे चउहिं सामाणिय साहस्सीहिं जाव अण्णेहि य बहू हिं वाणमंतरे हिं देवेहि य देवीहि यसद्धिं संपरिवुडे सिवड्ढीए सबजुत्तीए जाव णिग्घो-सणाइयरवेणं जेणेव सिद्धाययणे तेणेव उवागच्छति २ त्ता सिद्धायतणं अणुष्पयाहिणी करेमाणे २ प्ररिव्धिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति अणुपविसित्ता जेणेवदेवच्छंदए तेणेव उवागच्छति २ ता आलोए जिणपडिमाण पणामं करेति २ ता लोमह-त्थगं गेण्डति लोमहत्थगं गेण्डिता जिणपडिमाओ लोमहत्थ-एणं पमज्जति २ ता सुरभिणा गंधोदएणं व्हाणेति २ ता दिवाए सुरिभगंधकासाइए गाताई छहेति २ चा सरसेणं गो-सीसचंदणेणं गाताणि अणुहिंपइ अणुहिंपेत्रा जिणपडिमाणं अह्याई सेताई दिवाई देवद्सजुयळाई णियंसेइ नियंसेत्ता अगोहिं वरेहि य गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेति २ ता पुष्फा-रुहुण गंधारुहुण मुझारुहुण वण्णारुहुण चुल्लारुहुण आभरणा-रुदृणं करेति करेता आसत्तोसत्तविउलबद्दवग्घारितमञ्जदाम० करेति २ त्ता अच्छेहिं सण्हेहिं [सेएहिं] रययामएहिं अच्छर-

सातंदुलेहिं जिणपडिमाणं पुरतो अट्टहमंगलए आलिहाँ सोत्थियसिरिवच्छ जाव दृष्यण अद्गृद्धमंगळगे आलिहति आक्रिन हित्ता कयग्गाहग्गहितकरतल्लपब्भद्रविष्पमुक्केणं दसद्भवन्नेणं कुसमेणं सक्तपुष्फपुंजीवयारकलितं करेति २ ता चंदष्पभवड-रवेरुलियविमल्दंडं कंचणमणिरयणभत्तिचित्तं कालागुरुपवर-कुंदुरुकतुरुकभूवगंधुत्तमाणुविद्धं भूमवट्टिं विणिम्सुयंतं वेरुक्टि-यामयं कडुच्छ्यं पग्गहितु पयत्तेण धृवं दाऊण जिणवराणं अटसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अत्यजुत्तेहिं अपुणस्तेहिं संथुणइ २ ता सत्तहपयाई ओसरति सत्तहपयाई ओसरिता वामं जाणुं अंचेइ २ त्ता दाहिणं जाणुं धरणितरूंसि णिवाडेइ तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि णमेइ नमित्ता ईसि पच्चुण्ण-मति २ त्ता कडयत्रडियथंभियाओ भ्रयाओ पडिसाहरति २ त्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट एवं वयासी- णमोऽत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं जाव सिद्धिगडणा-मधेयं ठाणं संपत्ताणं तिकडू वंदति णमंसति ॥ "

इसीपरि सृरियाभने पुण आलावन छइ ॥ एवं वैजयंत जयंत अपराजित ए आलावा सरीपा जाणिवा । सम्यग्दृष्टी थुइ मंगलादि करणी करइ, ते आवक साधु पुण करइ, इहां संदेह न करिवन कांइं, जेह भणी एहननं फल वीतरागे कहारं तेहभणी अनई जे पुष्पादि छइ ते उपदेश माहि नथी जाणिनं॥ तथा आवकनइ अधिकारि श्रीन्पासकदशांगि जिम आणं-दनन अधिकार तिम तदादि श्रावक दश्चन अधिकार जाणि-

## आचार्यश्रीत्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं १६

वड । इणिपरि एकलाख उगुणसिंह सहस्र श्रावकनइ अधि-कारि सम्यक्त्वोचार चरितानुवादि उपदेश सरीषउ जाणिवड । तथा श्रीउनवाई उपांगि अंबडपरिव्राजक तथा तेहना शिष्य ७०० परिवाजकनउ सम्यक्त्वनइ उचारि श्रीमहावीरनउ भाषित अंबड श्रमणोपासकनइ विधिवादि उपदेश छइ। तउ इम जाणियइ श्रीवीतरागि परिवाजकानुष्टान सर्व्ववीजां परि-व्राजकां सरीषां कह्यां । तिहां जाणीइ छड अंबडनडं ए परि-बाजकानुष्टानविधि छड । परं जे इम कहाउं '' अंबडस्सणं नोकपति अज्ञपिभिति अन्नउध्यए वा. अन्नउध्यय देवया-णि वा. अन्नउध्यियपरिग्रहियाई चेइयाणि वा. वंदित्तए वा नमं-सित्तए वा, पञ्जुबासित्तए वा, नन्नथ्य अरिहंते वा अरिहंत-चेड्याणि वा ॥ '' ए अनुष्टान बीजापरिव्राजकथकी विपरीत दीसइ छइ ॥ तथा १२ व्रत ए पुण अनेरापरिव्राकनड कर्त्तव्य न बोल्यड । तिणि कारणि जाणिज्यो (जु) अरिइंतचैत्य क-हतां श्रीअरिहंतनी प्रतिमा तेहनड वंदनादिक अधिकार श्रम-णोपासकनुष कर्त्तव्य छइ।। यद्यपि अंबहना नाम लीधाभणी चरितानुवाद किवारइ मनमाहि आवइ, परं श्रीवीर भाषित भणी विधिवाद सरीषड छड । तथा वली छेदग्रंथमाहि-गाथा-पुणोवि वीयग्गाणं, पडिमाउ चेइयालए ।

-पुणाव वायरागाण, पाडमाउ चऱ्यालए । पत्तेयं संथुणे वंदे, एगगो भत्तिनिष्मरं ॥१॥

तथा वली उपधान वह्या अनंतर ग्रुह श्रावकनई काजि त्रिकालचैत्यवांदिवा उपदेश देवाना अक्षर छेद ग्रंथमाहि छड ।

एतले ठामे मूलसूत्रमाहि श्रावकनई अरिहंत चैत्यवांदिवाना अक्षर छड़। परं पूजिवाना अक्षर विवरासुध मूळ सुत्रमाहि दीसता नथी ॥ तथा श्री आवश्यकमूल सूत्रमाहि ''सहलोए अरिइंतचेइयाणं, वंदणवत्तिआए पृअणवत्तिआए, " इत्यादि अक्षर काउसम्मनइ अधिकारि छइ परं ते साधु श्रावकनई सरीषा छइ। तथा चडवीसध्ययनइ मूलपाठि। कित्तिया वंदि-या मए, एहवड छड, ते पुण साधु श्रावकनई तुरुय छड़। तथा पाठांतरे महिया इम कही व्याख्या कीथी छइ, महिताः पूजिताः पुष्पादिभिरिति । परं ए पाठ कहतां साधुनई विपरीत दीसइ, तथा सामाइकघर श्रावकनइं पुण मिलतउ दीसनउ नथी, पछइ वली जिम गीतार्थ कहइ तिम प्रमाण। तथा सूत्र-माहि जिहां पूजानउ शब्द आव्यउ छइ, तिहां सर्वेत्र पुष्पा-दिभिः, इम बखाण्यस छइ, परं ए सम्रचयपदि जाणियइ छइ, एह ऊपरि साधुनइ उपदेसि फुलइज एकांति सही न थाइ। अनइ निषेधाइ पुण नहीं । जिस रायपसेणीमाहि केसीकुमार श्रमण वंदनाधिकारि, उववाइ उपांगि श्रीवीरवंदनाधिकारि एवं ठामि २ अप्पेगतिया वंदणवत्तियाए । अप्पेगतिया पृयण-विचियाए । एहवा अक्षर छईं । तिहांपुण पुष्पादिभिः इम इज वखाणिउं छइ, त इहां इम जाणियइ छइ ज तीर्थेकर विजय-वंत अनइ साधु तेहनी कोटि डाहउ श्रावक फुलनी माल चडाव-वर संभावियह नहीं । पछह गीतार्थ कहह तिम प्रमाण । तथा-वली उपासकदशांगि श्रीवीरनइ वर्णनि ''तेलुकविद्दियमहिए''

#### आचार्यश्रीबातृचंद्रसुरि बन्धमाला पुस्तक ५१ मुं १६५

इत्यादि तिहांपुण पुष्पादिभिः इम कह्मउं छइ। तथा श्रीठाणां-गे त्रीजइ ठाणइ साधुनइ अधिकारि, ''पूयासकारे '' एहवउ-शब्दछइ तिहांपुण पुष्पादिकइज कह्मा छइ। तिम प्रतिमापूजा-नइ अधिकारिपुण जाणियइ छइ। समुच्चयपदि पूजा पुष्पादिक हतां। एकांति थपाइ जथपाइ कांइ नहीं। यथायोग्य विचारी लेवउं॥ यतः-मरणसमाधौं—

" पएस भत्तिज्ञत्ता, पूर्यता अहरिहं अणज्ञमणा। सम्मत्तमणुसरंता, परित्तसंसारिया हुंति ॥१॥" इतिवचनात्

तथा समयसरणनइ अधिकारि पंच अभिगम बोल्या छइ
श्रावकनई सहो। बीजानड निश्चय नथी जाण्यड। तिम जिनभ्रुवनमाहि आवतां विवेकी श्रावकनई पंचाभिगम कास्त्रे बोल्याछई, परं ए बोल सुत्रनई मिलतड दीसइ छइ। तथा समयसरणाधिकारि हृत्तिकारिं पुष्पतांबुलादि त्याग इति वस्ताण्यडं छइ।
भोगार्थ पूजार्थनड विवरड नथी जाण्यओ॥ जिनभुवनाधिकारि सचित्त द्रव्य त्यागे भोगार्थ नतु पूजार्थ। इम जेश्रावकनई
अधिकारि ताणीनइ कहइ छइ। तिहां श्रीवीतराग बोलइ ते
प्रमाण। परं जे अधिकार समवसरणि छइ, ते जिनभुवनि पुण
दीसइ छइ। चतुर्भुखादिमासाद कराज्या दीसइ छइ। तथा
श्रीदक्षाणभद्र इंद्रादिकना महोत्सव लिख्या देहरासरे दीसई
छइ। नाम पुण चन्नवीस तीर्थकरनां, तथा विहरमाण तीर्थकरनां
प्रतिमाविषइ दीसइ छइ॥ तउ इम जाणिज्यो श्रावक श्रीजिनभवन समवसरणनी परि जाणइ॥ तिहां श्री अरिहंतनी

प्रतिमा देखी समवसरणस्थित श्रीवीतरागनीपरि उल्हास ऊप-जिवानउ टाम ॥ यदुक्तं-श्री आवश्यकनिर्युक्ती-

" तित्थयरग्रुणा पडिमासु, निध्य निस्संसर्यं वियाणंतो । तित्थयरत्ति नमंतो, सो पावइ निज्जरं विवर्छं ॥१॥ "

इति वचनातः ॥ "स्वामी पद्मासनविराजमान छत्रत्रयी चामरशोभित नाशाग्रन्यस्तदृष्टि चिदानंद स्वरूप निर्विकार" एहवो वीतरागनड ध्यान आणतां घणी निर्जरा छइ। तड हिवइं श्रावक अरिहंत विद्यमाननइ जिणि भावि वंदन पूजन करतां, तिणि विधि अरिहंतनी प्रतिमानी भक्ति हिवडां सं-भावियइ छइ । साधुनउ उपदिस्यउ डाहा श्रावकनउ कर्त्तेच्य सुत्रानुसारिए जाणीयः छः । अनंः वली जिहां सतरभेटपूजा छड. देवता मन्ध्यनी कीथी. तिहां जिनप्रतिमा एहवड नाम दीसड छड़। परं ऋषभ अजितादि तीर्थंकरना नाम नथी। हिवडां प्रतिमाना नाम तीर्थंकरना थाप्या दीसङ छङ । अनड जिहां श्रावक साधुनइ अधिकारि सुत्रमाहि जिनप्रतिमानइ नामि चैत्य अरिइंतचैत्य एहवा शब्द छइं । ते विशेष गीतार्थ कहड तिम प्रमाण । सुरियाभ द्रौपदी विजय देवतादिकनइ अधिकारि पंचाभिगम नथी बोल्या, अनई श्रावकनई जिन-अवनि पंचाभिगम बोल्या। पछड जिम हुइ तिम प्रमाण। अनइ जइ कोइ इम कहिस्यइ विद्यमान तीर्थकरनी मक्ति अनेरी । तिहनी स्थापनानी भक्ति अनेरी । जड़ इम तड स्थापनाचार्यनइं पुष्पादि पूजा स्नात्र निरंतर नथी कीजतड

## अ।चार्यश्रीभ्रातृचंद्रस्ररि यन्यमाला पुस्तक ५१ मुं. १६७

परंपराइ पुण नथी दीसतउ, ते किसउ विशेष। जिम श्री गीतार्थ कहइ तिम प्रमाण करियइ। हिव श्री जिनमितमानी
वंदना पूजना छइ, तिम " सुयस्स भगवउ करेमि काउस्समां।
वंदण वित्तयाए पूयण वित्तयाए।" इम कहाउं। ते जेतला
पुस्तक साधु श्रावक सदैव वांचेइ छइं, तेइनई स्नात्र पुष्पादि
पूजा नथी थाती, अपूज राषइ छइं, तेइनी आञ्चातनानउ किम
छइं, जिम गुरु कहइं, तिम करियइ। हिवं जे कर्त्वच्य जिनञ्चासनमाहि छइं, तिहां जयणा जाणियइ छइं। यदुक्तं-षष्टिज्ञतके-

" किचंपि धम्मकिचं, पूरापमुदं निर्णिदआणाए । भूयमणुग्गहरहियं, आणाभंगाड दुहदाई ॥१॥ "

केतलाएक इम कहरूं छइ, जे पूजा करतां पृथ्वी पाणी अग्नि वनस्पतीनी विराधना लागइ छइ, तिहा असंयम आरंभ दोष न कहियइ, ते धम्मेइज । इम सांभली मनि संदेह ऊप-जइ । शास्त्रमाहि असंयम बोल्यज । यतः-

" द्वध्यउप भावध्यउप, द्वध्यउ बहुगुणोति बुद्धिसिया। अनिडणमइवयणमिणं, छज्जीविहयं जिणा बिति ॥ १॥"

इति वचनात् ॥ ए द्रव्यस्तवकद्दइ छइ, साधु अनुमोद्दइ, ते सुत्रसिर्ख किमि मिलड् । तथा—

" छज्जीवकायसंजम, दबध्यए सो विरुझए कसिणो । तो कसिण संजमविज, पुष्फाईयं न इच्छेति ॥१॥ "

द्रव्यस्तिव संपूर्ण छज्जीवकाय संयम विराधाइ। तिणि कारणि साधु पुष्पादिक न ईछइ। इम कहतां ईछिवउं मनि,

#### उत्स्रत्रतिरस्कारनामा-विचारपट:

अनुमोदिवर्ज पुण मनि छइ। तद साधु किम अनुमोदइ। तथा कुत्रलानुबंधि-अध्ययने—

" साहूण साहुचरियं. देसविरयं च सावयजणाणं । अणुमन्ते सन्वेसिं, सम्मत्तं सम्मिह्हीणं ॥ ? ॥ "

इहां श्रावकनी देशविरति अनुमोदिवी कही । अनई जह ए पुष्पादि पूजा करतां श्रावकनइं विरति प्रमाण थाइ तड ए कत्तेच्य साधु सही अनुमोदइ । सावद्यानुष्ठान विरतिमाहि नथी जाण्यड । अनइ जिहां छकायनड आरंभ, तिहां सावद्य बोलाइ । अनई कदाचि पूजानइ अधिं सावद्य नथी तल साधु तथा सामाइकधर श्रावक स्यइं न करइ। तथा वली परंपराइइम सांभल्यलं जे प्रतिमा केतली एक वही पूठि श्रावक पुष्पादिक पूजा न करइ । तल सावद्यसही छइ ।

तथा श्री आवश्यकितियुँक्तिमाहिः—

" चेह्य कुल्लगणसंघं, अन्नं वा किंचिकाउ निस्साणं ।
अहवा वि अज्जवयरं, तो सेवंती अकरणिज्जं ॥१॥"
इहां वयरस्वामिनां आण्यां फुल अकरणीय वोल्यां ।
तड जाणिज्यो सावद्य सही थयउ । परं जे छक्कायनइ आरंभि
सावद्य न जाणइ, ए मित श्री जिनशासनमाहि नथी। अन्हं
जे आरंभनइ आरंभ जाणी किणही लाभ हेति हियानई
उल्हासि धर्म्भकर्त्तेच्य करइ तेहनी मित समी छह । जइ इम न
हुइ तड परदर्शन अनई स्वदर्शन अंतर किसड । यदुक्तं-श्री
उत्तराध्ययने-(१२) "क्रसं च जुवं तणकद्वमणिं, सायं च पायं

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५१ मुं. १६९

उदगं फ़ुसंता । पाणाई भूयाई विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पकरेह पावं ॥१॥" इति श्री साधुवचनात् । परं जइ एहवज भाव जिनशासनमाहि हजत तज परदर्शनीनई इम किम कहह । तथा

श्रीज्ञाताधर्मेकथांगि—थावचानउ वचन " रुहिरक्यं वत्थं, रुहिरेण चेव घोविज्जा " इत्यादि छइ, ते इणि उपदेशि किम मिलइ। इणि कारणि सावद्य भाषा साधु न बोलइ, तथा जइ पुष्पादि पूजा सावद्य नथी तड चारित्रियानइ स्यइ काजि निषेधी । पुष्पादि द्रव्यपूजा करतड साधु अनंतसंसार वधारइ, एहवा सुत्रमाहि अक्षर छइ । तथा जे करियइ नही, ते करावियइ अनुमोदियइ किम। अनई गृहस्थ हियानइ हर्षि जिनपूजा पुष्पादिकई करइ, ते निषेधइ नही, जिनभक्तिरागत्वात् ॥ जिम पूर्विइं दञ्चार्णभद्र, उदायन, देव, कोणिक, श्रेणिक, प्रदेशी, प्रमुख अनेक राजा महोत्सव करता निषेध्या नथी। अनई उपदेस पुण जाणीतउ नथी, जिहा उपदेश तिहां निरवद्य इज दीसइ छड । " किं बहक्तेन स्तोकाद्वह ज्ञास्यंति मेधाविनः '' इत्यर्थः । तथा हिवडां जे अरिइंत २४ नी प्रतिमा आगिल जन्माभिषेकनी परि बलात्कारि बालका-बच्छा आणी जन्मस्नात्रकरइ लइ, ते केहा साधुनड उपदेश। तथा-''छोणं जिणस्स भामिय खिप्पइ जलणे जलंतीम । फुरुइ कोणं नडयडस्स, ता कणयकलस भरिक्वंडिगयं-दमइ न्हावज नेमिकुमार ॥ तथा जयमंगलसूरि बोलड महावीर भिसेड । '' ''ता कणय कल्लिहिं, न्हवड भविया इहज पुज्जड

#### उत्सुत्रतिरस्कारनामा-विचारपट:

देख "। ए केहा साधुना उपदेश नई मिलड़। ए उपदेश किंकी आदेश कि हियह, डाइउ होड़ ते विचारी लेयो। तथा ए स्नात्रनी ग्रंथ थोडा दीहाडाना नीपना छइ। ए पहिली सृत्रमाहि अथवा पंचांगीमाहि जन्म स्नात्र जिनमतिमानई करिवाना ग्रंथ केहा हुंता ते विचारिवा योग्य छइ। तथा-जे लोकमाहि मंगल मदीए कहवाइ छइ। ते सुश्रावक बारत्रतधारक परमेश्वरना विव आगलि मूंकी तेहनई पूजइ ल्एणपाणी करइ, फूल मूंकइ। मोटउं टोडर त्रोडी एक खंड डावइ हाथि बांधइ बीजउ जिमण्ड हाथि त्रीजउ कोटि घाती दीवानई नमस्कार करइ। अपि वंदनीय जाणइ। ए केहा साधुनउ उपदेश, केहा सूत्रनीसाखि। तथा असमंजसपणउ घणा गीतार्थ कहइ छइ। ते लिल्विय छइ।

गाथा-''गद्दिर पवाहओं जो, पइ नयरं दीसए बहुविहो य । जिनगिह कारवणाई, सुत्त विरुद्धो असुद्धो य ॥१॥ पाए अणंत देउल, जिणपिडमा कारिया अणंताओ । असमंजस विचीए, नय सिद्धो दंसण लवोवि ॥२॥''

तथा-''पइदिण गमणेण तस्स पच्छितं । पव्यतिहीसुं च कारणे गमणं।'' तथा ''सन्नाण चरण दंसणपमुक साहू हिं०॥''

इत्यादि संकेत मात्रं॥

" प्रोत्सर्पेद् भक्ष्मराशि ग्रहसख दश्रमाश्रर्य साम्राज्यपुष्य-न्मिथ्यात्वध्वांतरुद्धे जगति विरस्ततां याति जैनेंद्रमार्गे ।

## आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५१ मुं १७१

संक्लिष्टद्विष्टमृदयखळजडजनाम्नायरकैर्जिनोक्ति-प्रत्यर्थीसाधुवेषैर्विषयिभिरभितः सोयमपार्थिपंथाः ॥१॥ अत्रोहेशिकभोजनं जिनगृहे वासो वसत्यक्षमा स्वीकारोर्थेग्रहस्थचैत्यसदनेष्वप्रेक्षिताद्यासनम् । साबद्याचरितादरः श्रुतपथावज्ञा जहद्वेषधी धर्मः कर्महरोत्र चैत्यधिभवेन्मेरुस्तदाऽब्धौ तरेतु ॥२॥ तथाच-गृही नियतगच्छभाक् जिनगृहे अधिकारी यतेः मदेश(य)मशनादिसाधुषु यथा तथारंभिभिः। व्रतादिविधिवारणं स्वविहितांतिकेऽगारिणां गतानुगतिकरदः कथमसंस्तृतं प्रस्तुतम् ॥३॥ तथा-इष्टावाप्तित्रष्ट्रविटनटभटचेटकपेटकाक्कलं निधुवनविधिनिबद्धदोहदनरनारीनिकरसंकुलप् । रागद्वेषमत्सरेर्ष्याचनमघपंके निमज्जनं जनयत्येव मृढजनविहितमविधिना जैनमज्जनम् ॥४॥ जिनगृहजैनविंबजिनपूजनजिनयात्रादिविधिकृतां दानतपोत्रतादिगुरुभक्तिश्रुतपढनादिचादतम्। स्यादिह क्रमतक्रगुरुक्रग्रहक्रबोधक्रदेशनांशतः स्फ्रुटमनभिमतकारिभोजनिमव विष्ळवनिवेशितः ॥५॥ आकृष्टं मुग्धमीनान्विडिश्वपिश्चितवद्विंबमादर्श्वजैनं तक्राम्ना रम्यरूपानुपवरकमठान्स्वेष्टसिद्धैर्विधाप्य । यात्रास्नात्राद्यपायैर्नेमत्रातकनिशा जागरादिच्छलेश्र श्रद्धालुनीमजैनैश्छलित इव शर्टेवैच्यते हा जनोऽयं ॥६॥

#### उत्स्वत्रतिरस्कारनामा-विचारपट:

किंदिग्मोहमिताः किमंधवधिराः कियोगचूर्णीकृताः किंदैवोपहताः किमंगठगिताः किंवाग्रहावेश्विताः । कृत्वा मूर्श्नि पदं श्रुतस्य यदमी दृष्टोरुदोषा अपि व्यार्टीतं कुपथाज्जदा न द्धतेऽसूर्यति चैतत् कृते ॥७॥''

श्रीसंघपट्ट श्रीजिनाज्ञातत्परयथार्थाभिष्यस्वरतस्त्रीजिन-ब्रामस्रिवचनात् ॥ तिणि गीतार्थिइं काई असमंजस दीठउं-तड इम कहाउं ॥ तथा-केतलउं एक सत्र विरुद्ध असमंजस दीसइ छइ ॥ गच्छे गच्छे पुण परस्पर विरुद्ध एक मानई एक न मानई। ते केटलाएक बोल लिखियेइ छइ। गीतार्थ कहर तिम ममाण ॥ पूछी २ करवड ॥ छः ॥ छः ॥ श्रीः ॥

१-तीर्थेकर सउं गृहस्थनई जोडावड मेलिवड ॥

२-ग्रहे वीर नेमि मिल्ल पार्श्वपतिमा अपूजनीय कथनं ॥
३-स्वस्वगच्छिनिश्रानामिलिखनेन परिग्रहणं पतिमायाः ॥४१०८ कूपोदक १०८ पात्री साधु कथन मीलनं ॥ ५-पतिमानां विवाह वधूपचार करणं ॥ मीडहल जवाली मउली
बंधनं ॥ ६-रात्री जिनगृहमध्ये पतिष्ठार्थं साधुनिवासः ॥ ७अस्नातसाधुभिः शलाकासंचारणाय रपर्शकरणं । करे कंकणमुद्रिका परिधानं, जवारक करणं, वेदिकायानवेष्टकाभिः कृतिः ।
स्वहस्तेन दभवेष्टितशलाकाभिः सचित्तजलावगाहनलोडनं ॥
नवग्रहस्थापनं, दिक्पालानां च ॥ स्वहस्तेन तिलकुट्टीवत्
फूलादि विकिरणं, लांगलीफलसुखाशिकादीनां ग्रहणं, आधा-

### आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५१ मुं १७३

कर्मिकादिवस्त्राज्ञनपान ग्रहणं । प्रतिमानां वर्णपुर कंकणच्छो-टनादि सर्वे विवाहविधि करणं अनेक दाडिम सदाफ-लेखुद्क कोमलफल कोमलफलिका पकानं सर्वेधान्य-सर्वे तेमन जेमन पूपाघृतादि समस्तवस्तुढौकनं श्रीअईतां पुरः कस्योपदेशात् ॥ अनेकतपसामुद्यापनानि ॥ तंदुछैः पर्वितमासादाकारकरणं तदुपरि कल्रशध्वजारोपः । पार्श्वे पार्वे अनेकनवीन घटित कलज्ञ वर्त्तुलिका तथा सचित्तफला-दि मोचनं कस्य साधोरुपदेशात्, चंदनबाला तपःकारणेन मुवर्ण रूप्यमय सुर्पं कुल्माषकारण पादयोः पट्ट सुत्रादिकक्षे-पणं पायसेन पात्र भरणं । दुग्ध भृत भाजने रूप्यमय बेडा-तारणं । चैत्राश्वयुग्मासतपसि सर्वीगीण सुवर्ण रूप्यमय तरु-करण ढौकनं च माध्यमासे घृतमय मेरु चुलिका पासादाकार्-करणं तत्क्षणविभंगश्च ॥ स्नात्रपंचाशके दिनदृयं यावत प्रदीपा-खंडज्वालनं कस्योपदेशातु ॥ स्थानातु २ लेख प्रति पेषणेन श्रावकाणामाचाम्लाष्ट्राहिकाभोगदीपकरणादेशः कस्य साधो-रनुसारी ॥ साधुभिः समीपे जिनप्रतिमारक्षणं । पुटादीनां च कर्पूर वासक्षेप भूपादि करणेन द्रव्यार्चन विधानं ग्रुग्धलोक-रंजनार्थे स्मरणीमधेण तदंतिकात् कपूर-मृगमदासुर्वादीनां ग्रहणं । प्रत्यहं प्रतिक्रमणावसरे पादपक्षालनं तद्विधिस्थापनं च । स्वस्वश्रावक निश्राकरणं स्वस्वनिश्रया नित्यपिंडग्रहणं । इत्यादिकृतः ॥ छ ॥ स्वस्व–गच्छनिश्रित–पासादे ममक-रणं ॥ मृते नरेऽनेकवस्तुढौकनं पूजानामकरणं मृतस्य च षट्- १७४

त्रिसंख्ययामंगलकरणं च ॥ शालामध्ये साधुजिनप्रतिमानां स्थितिः ॥ साधुभिस्तस्य संभालादिविधानं ॥ चातुर्मासकः-पारंभे प्रसमं पंचाशत्स्नात्र**लेखनं साधुभिः** शावकाणां॥ पर्युपणापर्विण स्वहस्तेन पुस्तकदानं जागरण करणं च ॥ चैत्र-शक्लत्रयोदशीजातस्य श्रीवीरस्य भाद्रपद-सक्लपतिपदपराहे जन्मोत्सवकारणं। अनेक गोधृम चूर्णसुपदालिष्टतगुड जीरकसुं-ठीनमुख वेषवारजुगमुञ्चलादिवस्तु समानयनं । तद्दृद्धिविधापनं च ॥ अजित शांतिस्तव कथने तैलस्य दृद्धि कार्षं ॥ मालारोपणे सुवर्णरूप्यप्रवास सुक्ताफससूत्र पट्ट सूत्रमाला कारणं कस्योप-देशातु ॥ श्चतुकरणे पर्वणि तालककुट्टनं पादपहारदानं । यः करोति स लिप्यते इत्यादि दुर्वचनकथनं पायश्चित्तदानं। देवग्रहे धृपदीपदानं कस्यायम्रुपदेशः ॥ सम्यक्त्रमोदक कारणे प्रतिष्ठा वासक्षेपथ वस्त्रादिग्रहणं कोयग्रपदेशः कस्मिन् सुत्रे मिलति ॥ अष्टोत्तरीस्नात्रकारणेनोपद्रवोपशांतिपरूपणं ॥ गुरुणा स्वयं मंत्रादिजापे श्रावकाणां समीपात् पृथक् फलादीनां प्रतिमापुरतो मोचनं ॥ मासजातस्य बालस्य तिलककरणं वासक्षेपनामस्थापनं ॥ पुस्तिकावेष्टन द्रव्यादिग्रहणं ॥ पंचम्या-दितपसामुद्यापने पंचादिवस्तुमोचनं ॥ पर्वादि दिवसेषु गुरूणां पुरतः कुंकुमेन गृहलिकाकरणं उपिर द्रव्यमोचनं स्त्रीभिः स्व-हस्तैस्तंदुलैगुरूणां न्युंछनकरणं तंदुलोच्छालनं स्पर्शेश्र । अत्रार्थे कस्य साधोरुपदेश इत्यादि बह्वस्ति परं वर्णिका-मात्रं लिखितमस्ति ॥ ये साधूनां विहितपतिष्टां न मन्यंते ते केषां-

चित् २ ग्रंथानाममानियतारः ॥ तथा च कैश्चित्स्त्रीणां पूजानिष्धः क्रियते । कैश्चित् श्राद्धानां प्रतिक्रमणं निषिद्धमस्ति। कैश्चित् चतुर्थस्तुतिपाटः श्रुतदेवता क्षेत्रदेवता स्तुतिपाटः । आस्यपोति-काग्रहणमास्तिकानामित्यादि बहु २ निषिद्धं वर्त्तते ॥ तथा च द्वितीयवंदनकं पादपतित एव समापयतीत्यादिष्टन्युक्तं ॥ प्रथमं सामायिकग्रहणं तत ईर्यापथिकीप्रतिक्रमणं कापि २ दृश्यते ॥ पाक्षिकं चातुमासिकं सांवत्सिरिकं च भिन्नं २ क्रियते इत्यादि विरुद्धता परस्परं गच्छे २ तेषां मध्ये के सत्य-वादिनः स्त्रानुसारिणः केऽसत्यवादिन चत्युत्रानुसारिण इति निर्णयः कार्यो यदि पत्तननिवासिनः संघम्रख्या धर्मार्थिनः संति । नोचेद् दृष्टिरागिणो मिथ्यात्वोपहताः पक्षरहित-द्वेषणः सपक्षभीरवः शास्त्रज्ञैनं प्रमाणी कर्त्तव्याः ॥ यतः—

"प्राप्य प्रमाणपदवीं, कः खलु मुग्धे तुले विवेकस्ते । नयसि गरिष्ठमधस्तात्, तदित्रमुचैस्तरं कुरुषे ॥१॥ मुहसीलाउ सच्छंदचारिणो, वेरिणो सिवपहस्स । आणाभद्वा बहु जाणह्, मा भणह संघुत्ति ॥१॥ एगो साहू एगा य साहुणी, सावगो य सह्ही वा ।

आणाजुत्तो संघो, सेसो पुण अहि संघाउ ॥२॥'' इतिव-चनात् ॥ आज्ञारिहतोराज्ञासिहितस्य तिरस्करणं न प्रमाणको-टीमाटीकते ॥ हिवं जे साधुवेषधर जिनाज्ञा बाहिरि बोल्या छइ, ते लिषियई छई ॥ अत्र श्रीजिनेंद्राणां तदाज्ञापाळकसा-धुसाध्वीश्रावकशाविकाभिधानश्रीसंघस्य च मतं ॥छ॥ ''ग्रुंजइ आहाकम्मं, सम्मं नय जो पिटकमाइ छुदो ॥ सविजिणाणा विग्रुहस्स, तस्स आराहणा निध्य ॥१॥'' जे आधाकिर्मिक आहार स्यइ । सम्यक्षकारि पिटकि मी पचक्लाण न करइ । ते बीतरागना दर्शन बाहिरि ॥

''गोयरग्गपविद्वस्स, निसिज्जा जस्स कप्पइ ॥ इमेवि समणायारं, आवझइ अवोहियं ॥?॥''

जे चारित्रियं विहरवा जाई ग्रहस्थनइ घरि वाजवट मंडावी बइसइ ए अनाचार, वोधिवीजनंड नाश थाइ ॥ श्रीस्यगडांगे-

"अंजू एते अणुवरया अणुहिया पुणरिव तारिसगा चेव'' " अंजू " कहतां ए वात स्पष्ट गृहस्थ सावद्यानुष्टानथक उअनु-परत-निवर्त्या नथी॥ जिणि कारणि सारंभ सपरिग्रह। तथा जके चारित्र छेईनइ सावद्यानुष्टानि प्रवर्त्तेइ आधाकर्मिकादि आहा-र स्यइ। ते पिण तेहवाईज गृहस्थ सरीषा जाणिवा॥

श्रीउत्तराध्ययने-

" सर्य गेहं परिचज्ज, परगेहंसि वावडे। णिमित्तेण य ववहरईं, पावसमणित्ति वुचईं ॥१॥ आयरिय परिचाईं, परपासंडसेवए। गाणं गणिए दुव्भूए, पावसमणित्ति वुचईं ॥२॥ "

इत्यादिवचनात् ॥ आपापणा आचार्य छांडी गच्छ परं-परा छांडी जुआ २ गच्छथया क्रोधादिवशयकी ॥ ते किम-श्रमाण करियइ ॥ श्रीउपदेशमालायां-

## आचार्यश्रीब्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५१ मुं. १७७

" जे घर सरणपसत्ता, छकायरिक स कि चणा अजया।
नवरं मुत्तृणघरं घरसंकमणं कयं तेहिं ॥१॥" तथा –षिष्ठ्यतके—
"सो न गुरू जुगपवरो, जस्स य वयणंमि वदृष् भेउ।
चिद्र भवण सह्दगाणं, साहारण दव्वमाईणं ॥१॥
गुरूणो भट्टा जाया, सह्दे थुणिकण छिति दाणाई।
दुन्निवि अमुणियसारा, द्सम समयंमि बुडंति ॥१॥ "
श्रीआवश्यकनिर्यक्तौ—-

" जे बंभचेर भट्टा, पाए पाडंति बंभयारीणं ।
ते हुंति डुंटग्रुंटा, बोही य सुदुल्लहा तेसि ॥१॥"
श्रीगच्छाचारमकीणेके—

"अत्थेगे गोयमा पाणी, जे उम्मग्गपदृष्टिए।
गच्छंमि संवसित्ताणं, भमई भवपरंपरं ॥१॥
कुलनाइ नगररज्जं, पयदिय जो तेसु कुणइ ममत्तं।
सो नवरि लिंगधारी, संजमसारेण निस्सारो॥१॥
इत्तोणागयकाले, केई होहंति गोयमा सूरी।
जेसिं नामग्गहणेवि, हुज्ज नियमेण पच्छितं ॥१॥ "?

ते सूरि केहा ॥ श्रीवीतराग भाषइ ते अन्यथा नहीं ॥ सुत्रमाहि बोस्यउं छइ, विसहस्र वरससीम साधुनउ उदय पूजा-सत्कारनही ॥ अनई ए घणा दीहाडाना मार्गना बोल्लणहार उदय पूजा लहई छइ । तेहनइ जे गृहस्थ साधुकरी जाणइ छइ । तज इम जाणियइ छइ, ते वीतरागना वचनमाहि नथी ॥ 100

#### उत्स्रत्रतिरस्कारनामा-विचारपटः

''जध्य य गोयम पंचन्ह, कहवि सुणाण इक्समवि हुजा।

तं गच्छं तिविहेणं, वोसिरिय वहक्त अन्नथ्य ॥१॥
स्रणारंभपवित्तं, गच्छं वेसुक्जलं न वासिक्जा ।
जं चारित्त गुणेहिं । उक्जलं तं तु वासिक्जा ॥२॥ "
खंडणी १ पीसणी २ चुल्ही ३ जलकुंभ ४ बुहारी ५
ए पांचसुना कहियइ ॥ एतलामाहि पाणीना घटा मात्र जिहां
दीसह ते गच्छ वोसिरावी मूंकिवच ॥ ए वीतरागनी आज्ञा ॥
तथा ऊक्जल वेसिहं गच्छ न वासिवच ॥ ए जिनाज्ञा जे न मानइ
ते दर्शन बाहिरि । पुढविदग-अगणिमास्य, वणस्सई णं तसाणविविद्याणं । मर्गंतेवि न पीडा,कीरइ मणसा तयं गच्छं॥१॥

''जध्य य मुणिणो कयविक्तयाई, कुन्वंति निश्चमरभुट्टा। तं गच्छं गुणसायर, विसंव दृरं परिवज्जए ॥२॥ आरंभेम्र पसत्ते, सिद्धंतपरम्रुहे विसयगिद्धे। मुत्तुं मुणिणो गोयम, विस्त्ज मज्झे मुविहियाणं॥२॥" ॥ ए श्री वीतरागनी आज्ञा छेः॥

<sup>&</sup>quot; इतिश्रीसुगृहितनामधेयश्रीसिद्धान्तरहस्यपारगामीपर-मगुरुदेव मातःस्मरणीयवृहत्तपागच्छाधिराज्ञयुगप्रवर-श्रीजैनाचार्यश्रीपार्श्वचंद्रस्रिश्वरेण छिखितोऽयमुत्स्त्रज्ञ-तिरस्कारनामा-विचारपटः ॥ श्रीरस्तु ॥ वाच्यमा-नश्चरं नन्धात् ॥ शासनाधीश श्रीवीरपरमात्मने नमो नमः ॥"

## आचार्यश्रीभातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५२ मुं.

## परमगुरुदेवश्रीपार्श्वचंद्रसुरीश्वरविरचिता-

# श्रीस्थापना पञ्चाशिका ॥

~. # W. Q.

जयड जियाजियवग्गो, समग्गलग्गोवदंसियसमग्गो। संपावियलोगरगो, वीर्राजणो जाणयसहसरगो ॥ १ ॥ नाण-भरकिरणविद्वलिय.-अन्नाणतमस्स सुगुरुदिणमणिणो. । उट-एणं मह विहसर, निच्चं मणकमलवणसंडं ॥२॥ जिणवरपडि-माणं जो. वंदण आराहणा विसंवायं। जंपइ संपइ तं पइ. भत्तिसरूवं परूवेमि ॥ ३॥ जिणआणा भंगभयं, जड वि न होहि तं तस्स किं भणिमो । अध्य तम्हाणं तब्भड, तओवि तुम्हे तं समं सुणह ॥ ४ ॥ उद्देस समुद्देसा,-णुन्ना पुट्यो स्रयंमि अणुओगो । स्रुतुण तिन्नि तुरियं, कस्साएसा कुणह कहह ॥ ५ ॥ " श्रीग्रहना भाष्या विना सुत्रार्थ आपणे छंदे कहेतां हित नथीः यदुक्तं-नियगमइ-विगप्पिय,-चितिएण सच्छंदबुद्धिरइएण । कत्तो पारत्तहियं, कीरइ गुरुअणुवएसेण ॥ १ ॥ " इय सच्चं जाणंता, वियख्खणा केइ समझगारविया। नंदिसुए पन्नत्तं, महानिसीहं न मन्नंति ॥ ६ ॥ कत्थिव लेहग-क्रुलिहिय,-दोसविरुद्धं पयं पुरो काउं। जिणवयणाणुगयं पि हु, पर्यं न मन्नंति किं भणिमो ॥ ७ ॥ यतः श्रीमहानिशोथे-"पुणोवि वीयरागाणं, पडिमाउ चेइयालए । पत्तेयं संधुणे

वंदे, एगग्गो भत्तिनिब्भरं ॥ १ ॥ " अइनिद्दोसं एयं, न हुँ मिन्नज्झड परस्स दोसेणं। कण्णे पुट्टे कडि चालणव, विजसाण नहु जुत्तं ॥ ८ ॥ अन्नंमि पए संकं, द्सिज्झड़ दोसदाणओ अन्तं । चरणामओय करहे, गयवरदहर्ण किमेर्यति ॥ ९ ॥ निडणो जथ्य ससंको, सहसा कारेण तं न दसिज्झा। जं जं जिणञाणाए, तं तं सन्वं पमाणिज्ञा ॥ १० ॥ अहवा चिहुउ एवं, जं सच्चं तस्स सिख्खिया बहवे । ताणंताण य सिढिलो, क्रोए भणिओ सहसहावो ॥११॥ अह जाणितु परिन्नं, परस्स जिणपडिमहीलणासन्नं । तद्वावत्तिकएहं. किंपि परूवेमि नेहेण ॥ १२ ॥ अंगाणि उवंगाणिय, महापुर्विनसीहविज्ञया छेया। नंदिअणुओगदारा, इयाय गंथा पमाणं भे ॥ १३ ॥ एए य जह पमाण, एसिं कत्ता तुमाण सम्मविक । जइ सम्मविक तो भे, पमाणमम्हाणवि तउत्तं ॥१४॥ जं नाए सुय जिणहर,-भणणं तं तह विऊण जुत्तयरं। जइ जुत्तयरं तो जिण,-पडिमाइ जिणाण तुल्लतं ॥ १५ ॥ भणियाउ अंगुवंगे, छत्ताइणं धराण पहिमाओ। जाओय जिणं भत्ती. पंजलिउड-सेवमाणीओ ॥ १६ ॥ देवच्छंदित्ति तहा, धृवं दाऊण जिणवराणं च । जिणउस्सेहति पयं, किमजुत्तं तं व जुत्तयरं ॥ १७ ॥ जइ जुत्तं ता मन्ने, जिणपडिमा जिणवराण तुल्लत्तं । अहयंच ग्रुत्त का-रय, चित्ता-भिष्पाय भणिएण ॥ १८॥ जिणपंडिमाणं विरहे, जिणाण सट्टीण वितनावेण। जाणव असरिसभावं, जस्सुवएसेण तं कहह ॥१९॥ तथाच-सक्तध्यवाइ भणणं, अन्नेसिं चेइयाण

#### आचार्य श्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५२ मुं १८१

नह अध्य । अरिहंतचेइयाणं, जिणव्य थुइ मंगलं तुरलं ॥२०॥ जं तो तिहिं जिणाणं, हियसुहनिस्सेहसाणुगामित्तं । जाणि-उन्नड भासिउन्नड, तहेव तच्चेडयाणंषि ॥ २१ ॥ डड्डी सुरलो-यंमिय. जिणपडिमाणं जिणेहिं जा भणिया। सा चेत्र जिण-वराणं, चेइयरूखा हि नाणाइ ॥ २२ ॥ उप्पन्नकेवल्राणं, कीरइ देवेहिं सत्तिभत्तीहिं। चैइयजिणाण एवं, जिणभत्ताणं समो रागो ॥ २३ ॥ तथाच-चरियाणुवायटाणा, पुर्विव महिया सुरेहिं बत्तीसं । विहिवाया नमणिज्झा, पुर्व्वं पच्छा दुवे तथ्य ॥ २४ ॥ सम्मदिष्टिसुराणं, मिच्छा नाणं न जुज्झए बुत्तुं । जिणभत्तिमया णंता. थुणंति थुत्तेहिं कहमेवं ॥ २५ ॥ जइ पुण इह लोगट्टो, जिणपहिमा संथवं च मन्नंति। म्रत्तसन्ना अम्रते, क्रुणंति अइमंगलं केसि ॥ २६ ॥ हियसहपर्ए हिं सरिसं, घण जिजपडिमाण जे फलं बिति । भासग मिच्छा सम्म-न्नाण-पहंते न चितंति ॥ २७ ॥ जं मिच्छा तस्स सूए, पए पए अध्य पयडपडिसेहो । जं सम्मं जिणदिहं, विहिवाया सेवणं तस्स ॥ २८ ॥ वेयावचं शुइमंगर्छं च, दुन्निवि भणितु विहि-वाया । जड जिलपिडमा निन्वुड,-पहहेड निवारणं भणिया ॥२९॥ ता एस सर्च किज्झइ, तेहिं नायं जगति विख्खायं I अप्पा रहा साहा. मोडिज्झ किमिह क्रसलेहि ॥३०॥ तथा च-सकहा-सहासियाणं, देवाणं जिणवराण भत्तीए । नो विस-यसेवं बुत्ता, विवाहपन्नत्ति अंगंमि ॥ ३१॥ जिणसकहा जिण-पढिमा, जिणवरनामाणुराग नमणिज्झा । जाणामि तेण तेसिं,

#### श्रीस्थापना पञ्चाशिका।

सम्मत्तं सुगुरुवयणेणं ॥ ३२ ॥ तथा-अणुओगदार भणियाः सत्त समासा समत्त सहाणं । द ति चड पंचाइ पय. संजुता ते हि किज्जंति ॥ ३३ ॥ अरिहंता भगवंतो, तेसिं जं चेइयाणि समयंगि। अरिहंनचेइयाणि य,एस समासो य तप्पुरिसो॥३४॥ पंचम अंगे भणिए, भिन्ने इह अरिहचेइयाणित्ति । सहे म्रणित् म्रणिया, पडिमा जिणमय महणिउझा ॥३५॥ चेइ-वंदणसहो. अध्य उवंगंमि (श्री जीवाभिगमउपांगे) जस्स अहिगारे । तथ्थेव चेडयाई, चारणसमणा पणिवयंति ॥ ३६॥ नंदणवर्णमि पंडगवर्णमि, तह चेइयाई वंदंति। पंचम अंगे एयं, सत्ता पडिमाणुवंगंमि (जंबूदीवपन्नति उपांगे) ॥ ३७॥ वंदंति चेइयाई, इह जं भणियं जिणेहिं तथ्थेव। तस्युत्तरं उवंगे, ( उदवाइ उपांगे ) चंपापुरि वन्नगे जाण ॥ ३८ । तथा-अरिहंत चेइयाणं, वंदणयं अंबडस्स विहिवाया। जनवाइए खबंगे, नायं जिणवीर भणियंति ॥ ३९ ॥ चेइय वेयाव<del>र्चं,</del> दसमे अंगे जिणेहिं पन्नत्त । विहिवाया ता जाणह, ग्रुणाण उठंभणं एयं । ४०॥ तथाच-गुरुणोय अणापुच्छा, पुट्यं न ह किंपि कष्पइ जइणं । एयं भणियं सुत्ते, असदृहंताण मिच्छत्तं ॥४१॥ आवस्सिया निसीही, अणुजाणणम्रुगाहस्स तह काउं। नि-ख्खमणं च पवेसे, भंतेत्ति भणित् जं करणं ॥४२॥ निंदण गरिहण आलोयणाइ, तह वंदणं पडिक्समणं। इचाइ अध्य-माणं दीसइ विरहे विणा ठवणं ॥ ४३ ॥ आवस्सयस्स करणे, जे पुण किङ्झंति बारसावत्ता। तत्थय कायप्फासो, ग्रहं विणा

#### आचार्यश्रीश्रातृचंद्रसुरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५२ मुं १८३

पुत्तियाइणं ॥४४॥ जइ पुत्तियाइ फासो, सो खमणिज्झो कहिज्झए कस्स । जड खमणिज्झो ठहिउं, तो गुरुठवणावि नि-ब्भंतं ॥ ४५ ॥ वायणप्रमुहो भणिओ, जिणेहिं मुणिणा अव-स्स करणिज्झो । पंचिवहो सज्झाओ. कम्माणं निज्झरहाए ॥४६ ॥ तथ्यवि पुथ्ययपुरओ, किज्झइ सिख्लिय ठियाइ गुरुवन्झं । एवंपि कीरमाणे, भावावस्सयमिणं ग्रुणह ॥ ४७ ॥ थुइ मंगल बंदण वायणाड, आवस्सयत्ति मन्नेह । दुन्हं ठव-णायरणं, तइयस्स कई तु पडिसेहो ॥४८३। ठविउण उत्तरिज्झं, सनामग्रहं तहेव समणस्स । जिणवीरस्स समीवे. पडिवज्झिय धम्मपन्नति ॥४९॥ विहरइ एगग्गमणो, नामेणं कंडकोलिओ एवं । सत्तमअंगे दिस्सइ, किरिया ग्रुरु ठवण अहिनाणं ॥५०॥ जइ नणु न होइ ठवणा, ता कीस सुरेण धम्मविग्घकए । सा चेव झत्ति गहिया, वीरयबलनिरहिलासेण ॥५१॥ विहिए नि-पिट्टपिसणे, तथ्येव ठवित्तु तं गओ अमरो । एएणं संभवेणं. जिणगुरुठवणा पमाणं में ॥ ५२ ॥ वेद अधि जिल्ला सुव-रिसे, (१५७४) पंडियसिरिसाहुरयणतीसेण । पासचंदेण विहिया, ठवणा पंचासिया एसा ॥५३॥ इति स्थापना पंचा-शिका संपूर्णा ।। संवत १५७४ वर्षे । ज्येष्टमासे चतुर्थी तिथी ञ्चनिवारे लिखिता पार्श्वचंद्रेण साः नाहुपुत्र साः सधारणपठ-नार्थे ॥ श्रीः ॥

## आचार्यश्री श्रातृचंद्रहरि बन्धमाळा पुस्तक ५३ मुं, परमगुरुदेवश्री पार्श्वेंद्रसुरीश्वरविरचित-

## श्रीसप्तपदीशास्त्र-ग्रजरातीभाषानुवादः

- 200 Com

अनु. क. प. पू, आ. श्रीसागरचंद्रसूरीश्वरजी महाराज-

[श्री सामाचारी समाश्रित-सप्तपदीशास्त्रनी अंदर बधी थइने २८७ प्राकृत गाथाओं छे, अने ७० मी गाथा वे छे. ते गाथाओं नो विषय जाणवानी खातर संक्षेपथी गुजराती भाषामां अनुवाद-अर्थे रूपे प्राकृत-संस्कृत भाषाना अजाण पण आ ग्रन्थनो कांइक लाभ लइ शके ए हेतुथी अने केटलाएक भावुक आत्माओंनी प्रेरणा थवाथी पू.आ. श्रीसागरचंद्र सुरि-जोए गुजराती भाषानुवाद करेल छे. ते आ छापवामां आवे छे.]

#### ॥ अर्हम ॥

पथम इष्ट्रदेवने नमस्कार करी ग्रन्थकार वस्तुनिर्देश करे छे:-अमरेन्द्र अने नरेन्द्रथी सेवाएला छे चरणयुगल जेमना एवा श्रीवीरजिनेन्द्रने नमस्कार करी साधुनी समाचारी सुत्रानुसारे कहीश. सात द्वारनां नाम:--

१-गच्छनी मर्यादा, २-संभोग-असंभोगनो विधि, ३-म्रुनियोनी दिनचर्या, ४-पांचे प्रतिक्रमणनो विधि, ५-उद्यतिथिनुं स्वरूप, ६-श्रावकना उपधाननो विधि, ७-अने

#### आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं १८५

उपदेशनो विधि, सत्रानुसारे सगुरुना मुखबचन सांभळीने हुं कहुं छुं, गाथा १ थी ३.

प्रथम गच्छमर्याद् हारः-श्रीवीरस्वामीना अगियार गणधर अने नव गच्छ हता. गणनो अर्थ गच्छ थाय छे गण अने गच्छ ए बन्नेनो एकज अर्थ छे. सात गणधरो सात गणने बाचना आपता अने पाछला बे गणनी अंदर एक एक गणने वे वे युगमधान गणधर बाचना आपता. एम गणधर अने गच्छनी संख्या जाणबी. आ बीना श्रीकल्पसूत्रमां जणा-वेल छे ४-६ बाचना मेदे गणभेद छतां एक संभोग, ए प्रथम भेद श्रीदशाश्चतस्कंघनुं आठमुं अध्ययन श्रीकल्पसूत्र, तेमां अने एक गण छतां समाचारी भेदथी असंभोग ए बीजो भेद श्रीनिशीथ चुणिमां बतावेल छे ६

हाल विचरतां सर्वसाधुओ एक गणना छे, ते जणावे छे:-हालमां विचरतां सर्व मुनिओ श्रीमुधर्मस्वामीना किष्यो छे, वाकोना दशे गणधरो किष्यसंतिति विनाना मोक्षे गया छे.७ ए कारणे श्रीमुधर्मा स्वामिना गच्छना थइने परस्पर असंभोगी अने जुदा आचारवाला केम थाय? ते संबंधीनुं स्वरूप वतावेल छे. ८ गणनिश्राविना साधुओनो धर्म न पवर्ते ते जणावे छे:-जिनेश्वरोए मुनिओना पांच निश्रास्थान-आलंबन कह्याछे. श्रीटाणांग सुत्रना पांचमां टाणे, तेथी साधुओ गण-निश्रामां वर्तनारा होय छे. ९ श्रीटाणांगसूत्रना चोथाटाणामां तथा श्रीच्यवहारसूत्रमां श्रीजिनाज्ञाक्ष्पधर्म अने पोताना गच्छ-

नी मर्यादा, तेनी चोभंगी बतावेल छे, तेमां जिनाज्ञा सहित गच्छमर्यादा रूप चोथो भांगो वखाणेल छै. १० अथवा जिना-ज्ञाविरुद्ध गच्छ मर्यादाने छोडी श्रीजिनाज्ञाने अनुसरनारा जे मुनिओ वर्ते हे. ते मुनिओ निन्दवा लायक नथी, एम श्रीगच्छाचार पयन्नामां बतावेल छे. ११ वळी जे पर्वे सेवेली गच्छमर्यादा छोडवा समर्थ नथी अने सुधर्मने निंदता नथी. ते पण जिनाजा आराधक जाणवा. ए बीना व्यवहार सूत्रनी वृत्तिमां पूर्वाचार्योष जणावेल हे. १२ जे गच्छ मर्यादा श्री-जिनेश्वरदेवे कहेल अने श्रीगौतमादि धीरप्रस्पोए सम्यक् प्रकारे सेवेल, ते गच्छमर्यादा ओलंघवी न जोइए. ए प्रकारे श्रीमहानिशीय सुत्रमां कहेल छे. १३ सम्यक् दर्शनमां रक्त, चरण सत्तरी अने करण सत्तरी संबंधि गुण ग्रहण करवामां उजमाळ, आगम मर्यादा सेववामां तलालीन अने संसारना भयथी डरनारा म्रनियो भाग्यज्ञाळी जाणवा. १४ श्रीवीर-जिनेश्वरे गौतम स्वामी प्रमुखोने आपकारे कहुं छे-हे गौतम! मारा ज्ञासनमां बारसो पचास कांडक अधिक वर्ष गए छते साधुओमां परस्पर भेद पेदा थरो, घणा क्रुगुरुओ थरो. अहं-कारी ममकारी रिद्धिगारवी रसगारवी सातागारवी थशे,घणा कवायी 'अमे साचा' एम बोलनारा थरो. नथी जाण्यो सिद्धान्त सदुभाव जैमणे एवा आचार्यो थशे, हे गौतम! कोइ-कज सन्मार्गी थशे: ए प्रकारे जाणो, एम श्री महानिशीय-सुत्रमां कहां छे. १५-१६ तेथी हाल जुदा जुदा गच्छोमां जुदो जुदो आचार देखाय छे, तेमां पण जे जिनेश्वरनां वच-नानुसारे होय ते प्रमाण छे. एम श्रद्धा राखवी । गच्छाचार करे छे अने पोतपोताना गुरुए आचरेल छे एम बोले छे. तेओ सुत्रने दृषित करता नथी अने जिनधर्मने शोभावे छे. एम श्रीगच्छाचारपयन्नामां कहेल हे. १७-१८ जे वळी गच्छा-चारने मानीने सुत्राचारनी हीलना करे छे. तेओ जिनेश्व-रोनी हीलना करे छे, अने पोताना गच्छनेज माने छे. १९ सूत्र, अर्थ, ग्रन्थ, निर्मृक्ति अने संग्रहणी, ए प्रवचन-सिद्धा-न्तनी पंचागी जाणवी. एना अनुसारे सर्वप्रन्थो अने अर्थी मने प्रमाण छे. आ बीना श्रीसमवायांग सुत्रमां, श्रीनंदीसू-त्रमां अने श्रीपाक्षिकसूत्रमां कहेल है. २० पूर्वीचार्योष अ-ग्यार अंगसूत्रनी वृत्तियोमां ठेकाणे ठेकाणे सुत्रानुसारी जे अर्थ होय तेज ग्राह्म-स्वीकार्य छे, एम कहेल छे. वळी नवांगी वृत्तिकारक श्रीअभयदेव सुरीश्वरे पण श्रीभगवतीसुत्र वृत्तिने विषे ' जे मत आगमने अनुसारि होय तेज स्वीकारवं अने ते सिवायनाने उपेक्षा करवी ' एम फरमावेल छे. २१ हालमां विचरतां सर्वसाधुओ श्रीसुधर्मस्वामिना वंशपरंपराना छे,तेथी श्रीसधर्म स्वामिनी कहेल समाचारी जणावे छे-श्रीवीरतीर्थ-नाथना चरण भक्त पांचमां गणधर, तेमणे जे समाचारी बताबी ते शुद्ध जाणवी. श्री उत्तराध्ययन सुत्रमां साधुओनी दञ्च प्रकारनी समाचारी सर्वेदुःखोनुं नाश करनारी संसारसागरथी तारनारी बतावी छे. १-आवस्सिया, २-निसीहिया, ३१८८

आपुच्छणा, ४–पडिपुच्छणा, ५-छंदणा,६–इच्छाकार,७– मिच्छाकार, ८–तहकार,९–अभ्युस्थान,१०–उपसंपदा.२२

प्रथम समाचारी आवस्सड-अवज्य कारणे उपाश्रयथी बाहार निकलतां 'आवस्सइ' कहेवी: अने उपाश्रयनी अंदर पवेश करती वखते सदाए 'निसीहि' एम कहेवुं ते बीजी समाचारी जाणवी. २३ काउसमा. तप अने सज्झाय अथवा बीज़ं कंइ पण कार्य करतां गुरुने पुच्छीने पछी करे. ते त्रीजी आपुच्छणा नामनी समाचारी जाणवी. २४ चिन्तवेल कार्यं करतां तेमां कंइ पण बीज़ं कार्य उत्पन्न थयुं ते करवा सारुं फेर गुरुने पुच्छे, ते चोथी पहिपुच्छणा समाचारी जाणवी. २५ आहार तथा बखादि द्रव्योथी अनुक्रमे गुरु तथा साधर्मिक वर्गने विनयवडे निमंत्रणा करवी, ते पांचमी छंदणा नामनी समाचारी जाणवी. २६ क्यांय पण कंड पण शिष्योनी थती भूछ जाणीने सुगुरुओ धार्मिक मेरणापूर्वक याद करावी फेर नहिं करवा सूचन करे त्यारे शिष्यो खुन्नी थयाथका कहे के आपनी हित्रिक्षाने अमे इच्छिए छीए, अमने सारणा कर-वाथी आपे अमारापर अनुग्रह कर्यी एम बोले, ते छठी इच्छाकार नामनी समाचारी जाणवी. २७-२८

हा ! आ में खोटुं कर्युं, एम पोताना अनाचारने निन्दतो जे मिच्छामि दुक्कडं आपे छे, ते सातमी मिच्छाकार नामनी समाचारी जाणवी. २९ सज्झायमां अथवा वैयावचमां के कोइ पण कार्यमां गुरुओए शिष्योने हुकम कर्यों, त्यारे

#### आचार्यश्रीष्रातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं १८९

'तहत्ति' करी स्वीकारी ले. ते आठमी तहत्ति नामनी समा-चारी जाणवी. ३० ग्रह्देवने जोइ उभा थवं, अंजली करवी. सन्मुख जवुं, रजोष्टरणे करी चरणनी शुद्धि, विधिपूर्वक ग्ररुपाट प्रमार्जना, कांबल अने दंड ग्रहण करवं, आसननी रचना करवी, अने विनयशी वर्तेंद्वं, ते नवमी गुरुपूजा नामनी समाचारी जाणवी. ३१-३२. ज्ञान ग्रहण करवा सार्र बीजा गच्छना आचार्य पासे जड़ने आटलो काळ हुं आपनी पासे रहीश. एम कहीने रहेवं, ते दशमी उपसंपदा नामनी समा-चारी जाणवी. आ दशे प्रकारनी जिनेन्द्रे कहेली समाचारी आदरपूर्वक सहहवा योग्य हे. ३३-३४. आ समाचारीने विधिपूर्वेक गच्छमां जे प्रवतिये, ते आचार्य सुगुरु, पोते तरे अने बीजाओने तारे. ३५ जे आचार्य गुरु ममाद दोषे करी-आलस्ये करी के भयथी शिष्य वर्गने प्रेरणान करे. तेणे आणा विराधी, एम जाणवुं. ३६.

हवे म्रनिओनी दिन-रात्रि चर्या बतावे छे:-अथ साधु-ओनी दिवस तथा रात्रि संबंधि करवानी क्रिया श्री जिने-श्वरना सूत्रानुसारे पूर्व महापुरुषीए आचरेल अने गुरु उप-देशयी जेम सांभळेल छे, तेने हुं कहीश. ३७ फेलाएल सूर्य-प्रभा-कान्तिना प्रभावे करी कमलवन विकसित थए थके. अंधकार समृह नाञ्च थए थके, नष्ट तेजवाळो तारानो गण यए थके अने सुक्ष्म हाथरेखाओं देखाए थके एवा प्रभातना समयमां वे खमासमण आपी पडिलेहणा करे. ३८-३९

#### भीसमपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुवाद.

खमासमण देइने ''इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् पडिलेइणं संदिस्सावेमि, इच्छं." तथा फेर खमासमणो देइने " इच्छा-कारेण संदिस्सह भगवन् पडिलेहणं करेमि " एम बोली विधिपूर्वक महपत्तिनी २५ पडिलेहणा होनाधिक विना करवी अने पचीस पडिलेहणा शरीरनी करवी. पादपोंच्छन, रजो-हरण, निसिद्या अने खोमीइय एटलावानानी पडिलेहणा प्रथम आदेशे करवी. ४०-४१ पछी वळी गुरुओनी पासे वे खमा-सण दइ विधिपूर्वक अंग पडिलेहण करे. तेमां चोलपट्टानी पचीस करे. ४२ वळी ग्रहओनी भक्ति अर्थे एक खमासमण दइ बोले '' इच्छा कारेण संदिस्सह भगवन पडिलेहणा पडि-लेहावाजी '' एम आदेश मागी स्नि मंडलीमां मोटा होय ते स्थापनाचार्यनी यतनापूर्वक पहिलेहणा करे अने बीजा अनु-क्रमे गुरुओना विनयने करे एटले नाना मोटाना वस्ननी पडिलेहणा करे. ४३-४४ पछी वे खमासमण आपीने दंह-पर्यन्त सर्व उपधिने पडिलेहीने फेर एक खमासमण आपीने " इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् ! वसहिं पमर्ज्जमि " एम बोली शुद्ध यतना पूर्वक कोमल दंडासणथी वसतिनी प्रमार्जना करे. काजो ले. त्रीजो अंग श्री ठाणांग. तेना पांचमां ठाणामां काजो स्रेवाना पुंच्छणा पांच प्रकारना बतावेसा है, तेमांनां कोईथी ग्रहपत्तिथी ग्रखढांकीने. रज उडी नाक अने ग्रखमां न पेसे एवी रीते मुनिओ वसतिने पुंजे. ४५ थी ४७ काजाने तपासी, षट्पदी विगेरे जीवोने उद्धरी, सुग्रहना वचनथी

# आचार्यभीत्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. १९१

जुदा पाडी, साधुओने समर्पण करी, सेस बाकी रहेछ काजो जंत रहित विशुद्ध भूमिमां परटवीने गुरु आगल आबी इरियावहियं पडिकमी आलोयणा करे. ४८-४९ गुरुने पुच्छी वसतिनी चारे बाजु यावत शो हाथ सुधी जोड जाणीने 'शुद्धावसइ' एम कहे. ५० त्यारबाद कालग्रहण करी विधि-पूर्वक सज्झायने पटावी गुरुथी अनुज्ञा कराएला पांच प्रका-रनी सज्झायने करे. ५१ त्यां सुधी के यावत दिवसनी चोथो भाग पोरसी काळमां कांइक न्यून थाय (रहे) त्यारे मोटा नानानां क्रमे करीने जे नाना शिष्य होय. ते उठीने एम बोले '' हे भगवन ! उघाडा पोरसी" त्यारे सर्व साधुओ पण उप-योग वाळा थाय, पछी विनयपूर्वक पोतपोताना आसनथी उठीने गुरु पासे आवी एक खमासमण आपीने इरियावही पडिक्से, खमासमण दइ मुहपत्ति पडिलेहण करे, पछी खमा-समण दइ बधाए बोले 'इच्छा कारेण संदिसह भगवन्! भंडोवगरण पडिलेहणं संदेसावेमि. बीजे खसासमणे भंडोवगरणं पडिलेहेमि. ' आ बीना श्री उत्तराध्ययनना छवीसमां अध्ययननी बाबीसमी गाथामां छे. ए प्रकारे वचन बोलीने भाजन निश्रित सात उपकरणोनी भंडक पहिलेहणा तथा प्रकारे करे. १-पात्र, २-पात्रबंधन, ३-पात्रने स्थापन करवानं वस्त्र, ४-पोंजणी, ५-पडला, ६-पात्रने ढांकवानं वस्त्र, अने ७-गुच्छाः ए संबंधी श्री उत्तराध्ययन सुत्रना छवीशमां अध्ययननी गाथा २३ थी ३१ सुधीमां विस्तारे विधि बताबेल छे. ए आगम वचनो ममाणे पहिलेहणा करे. ५२ थी ५५. पहिलेहण कर्या पछी काळवेला जाणीने दर्शन करवा माटे जिनालयमां जइ भक्तिपूर्वक श्री जिनमतिमाने वंदन करे. ५६ जिनालयना अभावे पूर्व अथवा उत्तरदिश्ची सन्मुख रही स्थापना राखी श्री जिन मतिमाओनुं वंदन करे. श्री अनुयोगद्वार सूत्रमां दश प्रकारनी स्थापना बताबेल छे, ते मांहेथी कोइनी पण स्थापना करे. ५७ आ आगम-सिद्धान्तना अक्षरो होवाथी स्थापना अरिहंतने स्थापी वंदन करे, तेनो विधि जे जे आगमोमां बताबेल छे, ते कहे छे—

छेद ग्रन्थ पवरश्री महानिक्षीय सूत्रमां कहेल छे के-स्तव, स्तुति विधिए करीने भावनायुक्त थयो थको त्रिकाल श्री जिनेन्द्र प्रतिमाने वंदन करे. तथा श्री ज्ञाताधमैकथांग सृत्रमां तेमज बीजा त्रिजा उपांगमां, श्री जंबुद्दीप प्रज्ञित्तमां अने श्री विवाहपन्नति आगमोमां जेम कहेल छे तेम करें। श्री रायपसेणी उपांगमां तथा श्री जीवाभिगम उपांगमां अर्थयुक्त, पुनरुक्त दोषे रहित एवी १०८ स्तुतिए करी श्री जिन प्रतिमानो स्तुति करी विधिपूर्वक 'नमोत्थुणं'थी वंदना करे. एवी रीते ज्ञाताधमैकथांग, श्री भगवतीजी, श्री जंबुद्दीपप्रज्ञप्तिमां तथा श्री रायपसेणी सूत्रमां सर्याभदेवनी उपमाए पूजा तथा श्री रायपसेणी सूत्रमां सर्याभदेवनी उपमाए पूजा तथा श्री रायपसेणी सूत्रमां सर्याभदेवनी उपमाए पूजा तथा श्री रायपसेणी स्त्रमां सर्याभदेवनी उपमाए पूजा तथा श्री रायपसेणी स्त्रमां सर्याभदेवनी उपमाए पूजा तथा श्री रायपसेणी वेसीने बोलबुं. काउसगनो अंतर करी श्रीइ बोलवी नहीं, अने लोकिक देवदेवीनी थोइ बोलवी नहीं,

एवी रीते सूत्रमां बतावेल विधिए चैत्यवंदन करवुं. जे कारण माटे गच्छाचरणाए जुदी रीते पण देखाय छे, ते जाणुवं जोइए. ५९-६०. आठ थोइ, पांच शक्रस्तव, काउस्सग्ग अने साथे लोकिक देवदेवीओनी थोइओनो पाट करवो ए प्रकारे. चैत्यवंदन सत्र-सिद्धान्तमां नथी. ६१. ज्ञान अने अविरत देवोमां चैत्य शब्द सुत्रनी अंदर संमत नथी, तेमनो वाचक नथी अने ज्ञानने के देव-देवीओने अरिइंतपणुं संभवतुं नथीज. ६२. तेथी चैत्यवंदनना समयमां एओनो अहि अधिकार नथी. प्रथम उपांग श्री उक्वाइ सूत्र, त्रीजो अंग श्री टाणांग सूत्र अने पांचमो अंग श्री भगवतीजीसूत्र, तेमां दश प्रकारना प्रायश्चित्त बतावेला छे, तैना नाम १-आलोयणारिहे, २-पडिकमणारिहे, ३-तदुभयारिहे, ४-विवेगारिहे, ५-विउस्स-ग्गारिहे, ६-तवारिहे, ७-छेदारिहे, ८-मूलारिहे, ९-अणवट-ष्पारिहे अने १०-पारंचियारिहे. तिहां काउस्समाने प्रायश्चित्तं पांचमो कहेल छे, अने पायश्चित्त क्षय स्थानमां (एटले दोषने दर करवामां) आवे, इहां (देववंदनना अधिकारमां) शुं पाय-श्चित्त आवे ? अर्थात न आवे. तो पछी काउस्सम्म देववंदनना अधिकारमां केम थाय ? अर्थात् न थायः पछी आग्रह रहित गीताथीं-सत्र अर्थना जाणकार जे कहे तेज प्रमाण, ६३-६४ सूत्रमां कहेल तेने छोडीने पूर्वीचार्योए कोइ पण कारणे ए आचरेल छे.शुं कारणे ए आचरेल छे.तेनुं तत्व तो तेओज जाणे. ६५.पण जे भावशुद्धिए आगममां बतावेल विधिपूर्वेक देववंडन

### श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुवाद.

करे छे, तेओनी जे हीलणा करे छे, ते हीलणा शुं युक्त छे ? ते तमो कहो. ६६. श्रीजिनेंद्र प्रतिमाओनुं वंदन करी, मध्याहकाळे त्रीजी पोरसी प्राप्त थए थके दोषरहित भात-पाणीनी गवे-पणा करे. ६७. वळी गोचरी जवाना काळे उपयोगनुं काउ-स्सम्म करीने बोले (श्रीव्यवहारस्त्रत्रनी गृत्तिमां गोचरीना काळे उपयोग करवानो विधि बतावेल छे.)

हे भगवन् ! भात-पाणी हुं ब्रहण करीश, एम कहीने आवस्सइ एम बोले, त्यारे गुरुओ पण तेओने आ प्रकारे आदेश करे के जैम पूर्वना साधुओए ग्रहण करेल छे, तेम सत्रविधिना उपयोगे ग्रहण करजो. श्री उत्तराध्ययन सुत्रना २६ मां अध्ययननी ३२-३३ मी गाथामां गोचरी प्रहण करवानो विधि बतावेल है. जोके त्रीजी पोरसीए भात-पाणी ग्रहण करवानुं कहुं, पण ते मगध देशनी अपेक्षाए जाणबुं. गीतार्थों क्षेत्र काळनी अपेक्षाए बीजी रीते पण भट्टी करे छे. तेमां दोष नथी. ६८-६९. उद्दुगमदोष रहित, उत्पादना दोषरहित अने एषणाशुद्ध एवं आहार ग्रहण करे. सर्व उप-गरणने लड अडधा योजन पर्यन्त गोचरी माटे जाव आव करी शके. ७० हवे भोजनना विधिने कहे छै-श्रीदश्वैकालिक सत्रना पांचमां पिंडेषणा अध्ययननी गाथा ८२ थी ९७ सुधीमां जे विधि बतावेल छे ते प्रमाणे जाणवुं. जे संयोज-नादि पांच मांडलीना देशिथी रहित शुद्ध मनवालो थयो थको आहारने करे. ते श्रमण कहेवाय छे, एम जाणवुं. ७०.

### आचार्यश्रीष्ठातृचंद्रस्रिर प्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. १९५

श्री उत्तराध्ययन सुत्रना छवीसमां अध्ययनमां बतावेल छे के-साधु-साध्वीओ छ कारणे आहार पाणीनी गवेषणा न करे, ए बीनाने जाणतो. वळी श्रीसिद्धांत (श्री उत्तराध्ययन सत्रना चोवीसमां अध्ययननी गाथा १७-१८मी ) मां बतावेल ( अनापात, असंलोक विगेरे रुडा दश गुणवाळी ) स्थंडिल संबंधी शुद्धि करीने अने तृण, दगल विगेरे ग्रहण करी उच्चारादिने परढवे. एज भाव श्रीआवश्यक वृत्तिमां छे. ७१. दिवसे उत्तर तरफ अने रात्रे दक्षिण तरफ मुख राखी जतनापूर्वक बेसी साध वडीनीत तथा लघुनीतनी वाधाने टाले. ७२. चोथी पोरसी प्राप्त थये उठीने वंदन करी खमा-समण आपी बोले पडिपुन्ना पोरसी ! ए प्रकारे सांभळी सर्वे वे खमासमण विधिपूर्वेक आपीने "भंडनिरुखेवं संदि-सह भंडनिरुखेवं निरूखवामि " एम बोछी पोतपोताना भांड उपकरणोने स्थाने मुके. ७३-७४. पछी विनयपूर्वक वंदन करीने साधुओ अंगबाह्य, अंगमविष्ट अथवा कालिकश्रत. उत्कालिक श्रुतनी स्वाध्यायने करे. यतः-श्रोउत्तराध्ययनसूत्र-ना छवीसमां अध्ययननी छत्रीसमी गाथामां कहेल होवाथी. ७५. ज्यां सुधी वे घडी न्यून पोरसी थाय त्यां सुधी ग्रह सन्मुख स्वाध्याय करीने त्यार पछी पडिलेहण काळ जाणी विनयपूर्वक इरियावहि पडिकमिने पडिलेहणा करे, तेमां मह-पत्ति. देह, पायपुंछन अने त्यार बाद रजोहरणनी पडिलेहणा करे. त्यार पछी वे स्थोभ वंदणे करी अंगपडिलेहणा करे,

तैमां भरीर संबंधी बस्त्रोनी पहिलेहणा करीने त्यारबाद एक खमासमण आपीने हे भगवन् ! वसति प्रमार्जना करं "वसिंह पमज्जेिम" एम बोलीने वसतीनी प्रमार्जना करे. पछी काजो लड. एकटो करी जोबुं विगेरेनो विधि सवारना विधिनी माफक इरियावहि पडिकमवा सुधी जाणवो. ७६ थी ७९. आ बीना श्रीउत्तराध्ययन सूत्रना छवीसमां अध्ययननी साड त्रीसमी गाथामां बतावेळ छे. त्यार बाद एक खमासमणी आपीने बोले '' इच्छाकारेण संदिसह भगवन पडिलेहणयं पडिलेहीम" मने पडिलेहणा पडिलेहाबोजी, त्यार बाद स्था-पनाचार्यनी प्रमार्जना प्रमुख विनय करे. पछी पांच नमस्कारे करी स्थापनाचार्यने यथास्थाने स्थापीने. ८०-८१ गुरुना गुरु स्थापनाचार्य अने शेषबाकीनानां ग्रुरु जे विद्यमान धर्माचार्य होय तेज जाणवा, तेनी आगल सर्व अनुष्ठान करवुं, ते प्रमाणभृत कहेल छे. कारणके पूर्वीचार्यीनो आवो वचन होवाथी,-"आ उपदेश दर्शन श्रद्धिना माटे छे. गुरु विरहमां स्थापना गुरु जाणवा, जेम श्रीजिनविरहमां जिनबिंव सेवनानी विचारणा सफल थाय छे." ८२. त्यार पछी सुगुरु महाराजना मुख्यी सुत्रमां कहेल विधिने जाणीने द्वादशावर्त्तवंदनक दडने पच्च-ख्खाणने करे. ८३. द्वादशावर्ते कृतिकर्म श्रीसमवायांगसत्रना बारमा समवायनी अंदर बतावेल है, त्यां श्रीअभयदेवसूरि-कृत दृत्तिमां बीज़ं बांदणुं "पादपतित एव समापयित" चर-णमां पडयो थको समाप्त करे, एम जणावेल छे. अने श्री

## आचार्यश्रीष्ठातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं १९७

आवश्यक निर्यक्तिमां कहेल है के-बाहेर क्षेत्रमां रहेल आज्ञा लड अनग्रहमां प्रवेश करे, प्रवेश करी ज्यां सुधी अनग्रह खेत्रमां रहे त्यां सुधी मस्तके करी चरण फरसे, आवुं वचन होताथी. बीजे बांदणे उभ्रं थवुं नहीं. गुरु चरण स्पर्शविना अवग्रहमां पण जे साधु उभो रहे, ते साधुने निश्चे गुरुनी आज्ञातना थायः ८४• श्रीदशाश्चतस्कंत्र मूलसूत्रमां विस्तार-पूर्वक तेत्रीस गुरु अशातना कहेली छे. बीजा सुत्रोमां पण बतावेल छे. ते दरेकना नाम आ प्रमाणे-श्री आवश्यक सुत्रना त्रिजा अध्ययनमां तेमज बळी तेनाज चोथा अध्ययनमां, तथा त्रिजा श्रीठाणांगसूत्र, चोथा श्रीसमवायांगसूत्र अने दशमां श्रीप्रश्नव्याकरण अंगसूत्रमां संक्षेत्रथी उपर प्रमाणे कहेल छे. ८५, ८६. प्रवचनमां बतावेल विधि क्रम प्रमाणे बीज़ं बांदणुं गुरु चरणमां पड्या थकां आपवुं. जे बीजा अन्यथा करे छे, ते गच्छाचरणाथी करे छे, एम जाणवुं. ८७. पछी उठीने प्रमार्जना करतो, अवग्रहमांथी बाहेर निकलतो 'आवस्सड' एम बोलतो अने जे किया कर-वानी होय तेनो आदेश मागे. ८८. वळी वंदन पूर्वक करेळ छे पञ्च रुखाण किया जेणे एवो त्यारपछी बाकी रहेल औधिक अने औपग्रहिक उपधीनी पहिलेहणा करे. ८९. पछी आचा-र्यने वांदिने "वसहिं पवेषमि, थंडिलाई पडिलेहेमि " एम आदेश मागीने वसति संबंधी श्रुद्धिने करे. ९०० बार पास-वणना, बार उचारना अने छ काळ ग्रहणना एम त्रीस मांड-

लाने दृष्टिथी जोड प्रमार्जना करे. ९१. जो के उपदेश माला-दिकमां त्रण काल मांडला लखेला है, अने हाल सर्वसाधुओ ते छ करता देखाय छे. पादोषिक-अर्द्धरात्रिक दक्षिण-उत्तरमां अने वैरात्रिक-पाभातिक पूर्व-पश्चिममां एम त्रण त्रण मांडला लखेला होवाथी छ थाय छे. पछो काळवेलाए पूर्वोक्त विधि प्रमाणे इरियावहि पडिक्सीने श्रीजिनप्रतिमाओने वंदन करी गोचर चरियादिनो घोस करे. ९२. त्यारपछी एक एक स्वमासमण आपीने आचार्य, उपाध्याय अने साध्योने थोभवंदनाए वंदन करे. त्यारपछी "देवसियं पडिक्कमणं ठावेमि " एम बोलीने उभा थका हाथमां ग्रहण करेल छे रजोहरण जेमणे अने स्वीकारेल छे योगमुद्रा जेमणे एवा जत्सर्ग-कायोत्सर्गसत्रोने बोले. ९३, ९४. हवे प्रतिक्रमणनो विधि सत्र. निर्युक्ति प्रमुख ग्रन्थोमां कहेल हे ते लखिए छीए-श्री उत्तराध्ययन सूत्रना छवीसमां अध्ययननी गाथा ३८ थी ४२ सुधीमां विधि बतावेल छे. वळी श्री भद्रवाह स्वामिकृत आवस्यक निर्धेक्तिमां पांचमां अध्ययननी छ गाथाओमां पण एज विधि बतावेल छे. वळी श्री आवश्यक सूत्रनी बृहद वृत्तिमां तथा आवश्यक चुर्णिमां विस्तारथी एज विधि बता-वेल छे. वळी श्री हरिभद्रसरिकृत 'पंच वस्तुक ग्रन्थनी अंदर आ प्रकारे विधि बतावेल छै:-गाथा-४४२ थी ४९० पर्यन्त लखेल छे अने तेमां विस्तारथी एज विधि बतावेल छे. विस्तारना भयथी तेनो अर्थ करेल नथी। जोवानी इच्छा-

# आवार्यश्रीभातृचंद्रसरि प्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं. १९९

बाळाए मूलग्रन्थथी जोइ लेवुं. आवश्यक चूर्णिमां अने श्री हरिभद्र सुरिए रचेल आवश्यक वृत्तिमां उपर बतावेल जे पतिक्रमण विधि कह्यों छे ते अमे संक्षेपथी कह्यो. ९५. अहिं देवसिय-राइय प्रतिक्रमणमां पांचमा अध्ययनमां त्रण वांदणा कहेला है अने चोथा अध्ययनमां चार बांदणा कहेला है. ९६. त्यां विचारणा छे-सत्र कोने कहेवाय-गणधर रचित होय तथा मत्येक बुद्ध रचित होय तेमज अतकेवळी रचित होय अने संपूर्ण दशपूर्वधर रचित होय तेने सूत्र कहेवाय छे. एम मलघारि श्री हेमचंद्र सरिना शिष्ये रचेल संघयणीमां कहेल छे. तथा श्रीआचारांग सूत्रना चोथा अध्ययनमां केवलज्ञानी अने श्रतकेवलीना वचन समान कहेला छै. तेम श्रीनंदीसृत्रमां संपूर्ण दश पूर्वी विनाना वचनमां सृत्रनी भजना बतावेल छे. ए प्रकारे सूत्रना वचनथी चौद पूर्वी अने केवलीनं कहेल सूत्र कहेवाय अने ते सूत्र अन्योन्य अविरुद्ध होय छे. ९७. आवश्यक लघु दृत्तिमां तथा बृहद् दृत्तिमां तेमज जीर्णनिर्धेक्ति पुस्तकमां पण सेंकडो प्रक्षेप गाथाओ कहेली छे, तेथी आ गाथा पण तेवीज हरो ? एम संभावना थाय छे, कारण के परस्पर विरुद्ध होवाथी, पछी तो जेम गीतार्थो कहे तेज पमाणः श्रीआवश्यकसत्रमां तथा श्रीऔपपातिकसूत्रमां कह्यं छे के-आज निर्ग्रन्थ प्रव-चन सत्य छे, प्रधान है, केवली कथित छे, संपूर्ण है, मोक्षने आपनार छे, यावत्परस्पर अविरुद्ध छे, आवा

### श्रीसप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुषाद.

वचन होवाथी. आ वचनथी विरुद्ध देखाय छे. तेथी बे मतांतरमां श्रुतानुसारी एकनुंज वचन होय, एम जाणवुं, अने तेज वचन प्रमाण जाणवुं. ९८. अहिं श्रीभगवतीसूत्रनी वृत्तिमां जे पथम कहेल छे के जे मत आगमानुसारी होय तेज प्रमाण कारण के केवली भगवानोनुं मत एकज होय छै. श्री आवश्यक निर्युक्तिना चोथा अध्ययनमां एक गाथा आपेल छै, तेमां जणावे छे के चार बांदणा प्रतिक्रमणमां अने त्रण वांदणा सज्झायमां एम पूर्वीह अने अपराहना मली चौजद वांदणा थाय छे. जेणे चौडद वांदणा कह्या तेणे तेंत्रीस वांद-णाने सचन करनारा ग्रन्थो अमान्य राख्या के नहिं ? ते विचा-रवं जोइए. पाउसिय अने अट्टरत्त ए वे काळ अट्टरत्तमां छे अने वेरत्तिय ए त्रिजो अथवा प्रामातिक त्रिजो, अने अहिं प्राभातिक चोथो, एम चार काळने विषे जो दरेकना त्रण त्रण बांदणा अने दरेक सज्झायना एटलाज त्रण त्रण बांदणा अने वे प्रतिक्रमणना आठ अने सांजना पच्चख्वाण करती वेळाए एक वांदणुं, ए सर्व मेलवीए त्यारे तेंत्रीस वांदणा अहि थाय छे. इवे क्यां तेंत्रीस अने क्यां दिवस-रात्रिमां चौउद. आ मोट़ आंतरुं प्रत्यक्ष अहि आ प्रकारे देखाय है. पछी तो जे पक्षपातरहितपणें गीतार्थी सारी रोते विचारीने पवचनेकरी शुद्ध सम्यक् प्रकारे प्ररूपे तेज निश्चेथी मने प्रमाण छे. ९९ थी १०३. घणा सुत्रोमां तेमज घणी वृत्ति अने पुर्णिओमां त्रणवांदणा कहेलां छे. तेने अप्रमाण केम कराय?

## आचार्यश्रीष्ठातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. २०१

अने करताने कोण निवारे ? ते कहा ? १०४० अथवा तो पच्छीथी कहेल होय ते बलवान जाणवं, पहेला चार वांदणा कह्यां अने पच्छी त्रण कह्यां ए कारणे. पच्छीथी जे कहेल होय ते प्रमाण छे. १०५. कारणके पूर्वीक्त अने परोक्तमां परोक्त विधि बलवान होय छे. वळी कहां छे के:-' सामान्य-शास्त्रयी खरेखर विशेषशास्त्र बलवान होय हे, अहिं पायेकरी जुओ परजास्त्रथी पूर्वजास्त्रनो बाघ थाय छे. ' आ वचनथी. तथा बळी ' प्रथम पद्थी द्वितीय पद श्रेष्ट ' ए बचनथी, ए प्रकारे पूर्वीचार्य कथित अक्षरोथी चार बांदणा दरेक प्रति-क्रमणमां एम कहीने फेर त्रण बांदणा देवानो विधि बताच्यो छे. ए कारणे बन्ने प्रतिक्रमणमां त्रण बांदणाज प्रमाण छे. पछी तो जे गीतार्थी कहे तेज सत्य जाणवं. ए प्रकारे प्रति-क्रमण करीने श्रुतभाषितविधिथी पाउसिय काळने ग्रहण करे अने वसति तथा काळनी पवेयणा करे. पछी उपयोगवाळा थया थका ते साधुओ सज्झायने पठाविने सज्झायने करे मथम पोरसी सुधी, मथम पोरसी पूर्ण थइ एम जाणीने पछी एक साधु उठीने 'हे भगवन्! बहु पडिप्रचा पोरसी 'एम कहे, एम कहीने गुरुने बांदीने मुनिओ चैत्यवदन करे. पूर्व-काळने परिकमी बळी विधि पूर्वक अहुरत्तकाळ ग्रहणकरी सूत्रार्थं सज्झायनीज चिन्तवणा करे. धर्मध्यानमां रहेला, उप-योगवाळा अने गुरु समिपमां जैम अर्थ ग्रहण करेल होय, तेने तेम सर्वज्ञ भाषित भावता थका सनिओ हृदयमां धारण

करे. १०६ थी ११०. हवे रात्रिनो त्रिजो पहोर आव्ये छते त्रिजी पोरसीमां श्रीटाणांग सत्रमां बतावेळ धर्मजागरिकाने साधुओ करे १११. मुनिओने रात्रिना चारे भाग-पहोर उत्तरगुणने करनारा छे. श्री उत्तराध्ययन सत्रना छवीसमां अध्ययनयां एभ कह्यं छे केः-'' रात्रिना त्रीजा भागमां निद्रानुं मोक्ष साधुओए करवं जोइए." ए तेमनी करणी छै. ११२. तेनी वृत्तिमां 'निहाम्रख्यो ' शब्दनो अर्थ निहा करीने एटले पहेला पहोरने मुकीने बीजा पहोरोमां ते निद्रा करवी एम कहेल है, ११३ जे सत्रमां कहेल होय तेना अर्थ-नेज वृत्तिकार ज्यां स्मरण करावे. अथवा जणावे ते वृत्तिने सर्व कोइ तहत्त करीने माने छेर ११४. निश्वेशी क्यारे पण लेशमात्र पूर्वीपर विपरीत सूत्र न होय, ए कारणथी निद्रा करवामां त्यां सुत्रमां विधि नथी. ११५. उत्तर गुण कहेल हे निदा मोक्ष अने धर्भजागरिका, ए त्रणे सूत्रना पदो छे तेओनो अर्थ निद्रा न संभवे. ११६. जो त्रिजा पहोरमां निद्रा करवी एम अर्थ होय तो तिहां 'निहा' ए पद होय. तो कोइ पण संदेह न थाय, पण 'सुरुखो' ए पद छते निदानी भजना जाणवी. ११७. 'मुख्ख' पदना अर्थी:-मोकलं करवं-छोडवं अने त्याग करवुं इत्यादि बीजा पण घणा थाय छे. इहां स्त्रोमां तथा द्वतिओमां युक्तिपूर्वक सूचन कराएळां छे.११८. अत्रे एक शब्दना एण घणा अर्थी संभवे छे, सिद्धान्तना जाण-कार सिद्धान्तना उचित-योग्यज अर्थनो सम्यक प्रकारे प्रयोग

### आचार्यश्रीऋातृचंद्रस्रारि बम्यमाला पुस्तक ५३ मुं २०३

करे छे. ११९. चालती बीनाने जणावे छे:-रात्रिना त्रिजा पहोरमां-त्रिजी पोरसीमां निदाने नहिं करनारा सुनिओ, तेओने लोकमां ए ज्ञियिलाचारी छे, एम कोइ पण कहेतो नथी. १२०. अने बळी बीजं-सुत्रमां पोरसी संबंधी कहेळुं कार्य जे न करता होय ते प्रमादी. शिथिलाचारी एम लोकमां पण कहेवाय हो. १२१. जिने श्वरोनो उपदेशविधि निद्रा करवा संबंधी नथी. तेथी ते निद्रा न करवाथी दोष नथी. बीजा सिद्धांतोमां पण निद्रा करवानो प्रतिषेध बतावेल छै. १२२. मवचन-सिद्धान्तमां रहेला निद्रानिषेधना अक्षरो लखिए छीए:-श्रीउत्तराध्ययन सुत्रना छवीसमां अध्ययनमां जणावेल छे के:--'' विचक्षण साधु रात्रिना चार भाग करे अने रात्रिना चारे भागने विषे उत्तरगुणनी रमणता करे. ? " हवे विचार-वानं के तिजा पहीरमां उत्तरगुण करवातं बतावेल होवाथी निद्रा उत्तरगुण नथी, जे उत्तरगुण, ते कर्तव्य होय माटे. वळी श्री उत्तराध्ययन सूत्रना चोथा अध्ययनमां जणावेल हे के:-'' द्रव्यथी निदासां स्रतेला अने भावथी मोहनिदामां पडेळा ळोको होय त्यारे साधु सावधान रहे." तथा श्रीउ-त्तराध्ययनना दश्चमां अध्ययनमां स्थाने स्थाने " हे गौतम! समयमात्र नमाद न करीश !'' ए प्रमाणे बतावेल छे तथा वळी श्रीआचारांगसूत्रना लोकविजय अध्ययनना प्रथम उद्दे-शामां जणावेल छे के:-" हे म्रानि! अनादि संसारमां दुर्लभ आ अवसर पामी-विचारीने धीरपुरुष थयो थको तुं एक मुहुर्तमात्र पण प्रमाट न करीश. " वळी श्रीआचारांगसूत्रना लोकविजय अध्ययनना चोथा उद्देशाने विषे जणावेल छे के:-''बारीक बुद्धिवाळा विद्वान् साधने पांचे प्रमाद करवाथी सर्यु, कारणके प्रमादधीज जीवे अनंता मरणो कर्या," इत्यादिः बळी तेज सूत्रना तेज अध्ययनना छठा उद्देशामां जणावेल छे केः−'' पोते जाते करेल मद्यादि प्रमाद वडे जीव ब्रतोथी रहीत थाय छे. अथवा प्रमाद सेवन करवाथी फेर संसारनी वृद्धि करनार थाय छे. "वळी श्रीआचारांगसूत्रना त्रिजा अध्ययनमां जणावेल है के:-'' अज्ञानी होय ते स्रतेला जा-णवा अने जानी मनिओ सदा-निरंतर जागता रहे छे. हे नरो ! सदा जागता रहो, जागता रहेनारनी बुद्धि दृद्धि पामे छे, जे सुए छे, ते भाग्यशाळी न जाणवी, अने जे जागे छे ते सदा भाग्यशाळी जाणवो. १. प्रमादीनुं श्रुतज्ञान सुइ जाय, अथवा तेनं शुतज्ञान शंकावाळुं अने स्खलना पामनारुं थाय छे, अने अपमादी तेमज जागतानु श्रुतज्ञान स्थिर अने अस्ख-लित थाय है. २. ज्यां आलस होय त्यां सुख न होय. ज्यां निद्रा होय त्यां विद्या न होय, ज्यां पांचे प्रमाद होय त्यां वैराग्य न होय अने ज्यां आरंभ होय त्यां दयाछुता न होय. ३. धर्मि पुरुषोनी जागरिका श्रेयस्कारी छे अने अधर्मिम पुरुषोनी तो निद्रालुता सारी छे, ए प्रमाणे अमण भगवान श्री महाबीर देवे वच्छ देशना महाराजानी ब्हेन जयन्तीने कहेल हो. ४. अजगर भृत थइने जे सुए हो, ते अमृतभृत श्रुत-

# आचार्यश्रीञ्चातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २०

ज्ञानने नाश करे छे, अमृतभृत श्रुतज्ञान नाश थए छते जीव आखला जेवो अथवा छांण जेवो बने हे. ५ " आम है. तेथी दर्शनावरणीय कर्मना विषाकोदयथी कदाचित उंघी जाय तोपण जे आत्मार्थी यतनावाळो छे, ते दर्शनमोहनीय महा-निद्रानां नाक्षथी जाग्रतः अवस्थावाळोज जाणवो. एम कहेल छे. अहिं निद्रा दुर्शनावरणीय कर्म विपाकोदयथी आवे छे एम कहां, ते कर्म पोतानी मेलेज उदय थाय छे पण कोइना उप-देशथी उदय थतुं नथी, अहिं ए तात्पर्य समजवुं. वळी श्री-आचारांगसूत्रना त्रिजा अध्ययनना चोथा उद्देशाने विषे जणावेल छे के:-'' सर्वेत्र-आ भवमां तथा परभवमां प्रमादीने भय छै पण अपमादीने सर्वत्र भय नथी. " वळी एज सूत्रना पांचमां अध्यनना बीजा उद्देशाने विषे कहेल छै केः-'' वि-षयादि प्रमादोमां पडेलाओं ते धर्मधी बहार छे एम समजो: समजीने अप्रमादि थया थका संयम अनुष्टानमां सावधान रहो. " बळी पण एज सूत्रनां नवमां अध्ययनना बीजा उद्दे-**शाने** दिषे कहेल छे के:-''ए प्रकारनी पूर्वे कहेल वस्तिमां त्रणे जगतुने जाणनारा, तपस्यामां उजमाल, निश्वल मन-वाळा उत्कृष्ट तेर वर्षे सुधी संपूर्ण रात-दिवस संयम-अनु-ष्ट्रानमां प्रयत्न करतां निदादि प्रमाद रहित अने निः**शं**कपणे धर्मध्यान-शुक्क ध्यान ध्यावता वज्ञी रह्या छे. ६८" वळी भगवान निदाने पण घणी सेवता नथी, "वार वर्षनी अंदर अस्थिक गाममां व्यन्तरे करेल उपसर्गना छेडे कायोत्सर्गमां

रह्या थकाज अन्तर्भुहर्त्तमात्र एक वस्ततज निद्रा प्रमाद थ**एछ** हतो. " तेटलामात्र निद्रा प्रमादथी सावधान थइने आत्माने जगाडे छे-मोक्समार्गमां महत्ति करावे छे. ज्यां थोडी पण निद्रा थइ त्यां पण निद्रानी प्रतिज्ञा न हती. मतलब के सवानी बुद्धिथी सता न हता. ६९. वळी श्री सुयगडांग-सुत्रना चष्रदमां अध्ययनमां जणावेल है के:-'' कानने मीठा लागे एवा शब्दो सांभळीने अथवा कानने भयंकर लागे एवा शब्दो सांभळीने. ते शब्दोमां राग-द्वेष रहितता वाळो थयो थको समितिवान साधु संयम-अनुष्ठानमां रमनार थाय, तथा उत्तम साधु निद्रा ममादने ममादनुं अंग होवाथी न करे. अने 'च' शब्दथी बीजा प्रमादों ने पण न करे. गुरुकुलवास-मां रह्यो थको आ पांच महाबतो में लीधेला है तेने केवी रीते पार पमाई ? आवा संश्वयनो गुरुक्रपाथी पार पामनार थाय. ६ '' तथा वळी श्रीठाणांग सुत्रना त्रिजा अध्ययनना बीजा उद्देशामां कहेल छे के:-''श्रमण भगवान श्रीमहावीर स्वामीए गौतमादि अमणनिर्यन्थोने "हे आर्यों" ए पकारे संबोधिने आम बोल्या-शाथी प्राणीओ भयवाळा छै ? हे श्रमण चिरंजीवीओ ! मरणादि दुःखथी भयवाळा पाणिओ छे. हे भगवन ! ते दःखो केणे कर्या ? प्रमादधी जीवे कर्या. हे भगवन ! ते दुःखो केम नाश थाय ? अप्रमादने सेवन कर-वाथी ते दुःखो नाश थाय. " तेमज बळी श्री ठाणांगसूत्रना चोथा अध्ययनना बीजा उद्देशाने विषे कहेल छै के:-''चार

### आचार्य श्री ब्रातृचंद्रसृति ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं २०७

स्थाने करी निर्प्रन्थ अने निर्प्रन्थीओने संपूर्ण केवलज्ञान अने केवलदर्शन उत्पन्न थवानुं होय तो उत्पन्न थाय हे. ते आ पकारे-स्त्रीकथा. भक्तकथा, देशकथा अने राजकथाने करनारा न होय १, विवेक करी अने कायोत्सर्गे करी सम्यक प्रकार आत्माने भावनारा होय २, मध्याह रात्रिना समय-अवसरमां धर्मजागरिकावडे जागनारा निद्रानो क्षय करनारा होय ३. फासु-निर्जीव अने करपे तेवो ते पण उंच्छ-थोडो थोडो अने यांचाथी प्राप्त थएल एवा आहार-पाणीनी सम्यक् प्रकारे गवेषणा करनार होय ४, आ चार कारणे साधु-साध्वीओने केवलज्ञान-केवल-दर्शननी प्राप्ति थाय." वळी आज सूत्रना पांचमा अध्ययनना बीजा उद्देशामां जणावेळ छे के:-''सूर्तेला साधुओनां शब्द, रूप, रस, गन्ध अने स्पर्ध जागता अग्निनी माफक शक्तिवाळा होय छे. केमके कर्मबन्धना अभावनुं कारण अममाद-सावधान-पणुं तेओने ते बखते न होबाथी शब्दादिक कर्म बंधननां कारणो थाय है. अने जागता साधुओना शब्दादिक स्रतेला-नी माफक सुतेला होवाथी राखधी ढंकाएल अग्निनी माफक हणाइ गएल शक्तिवाळा थाय छे, केमके कर्मबन्धननुं कारण प्रमाद तेनं ते वखते तेओमां न होवापणं होवाथी. शब्दादि कर्मबन्धनना कारण थता नथी. " वळी श्री भगवती सत्रना पांचमां अतकना चोथा उद्देशामां कहेल छे केः—'' हे भगवन्! छदुमस्थ मनुष्य सुखेथी जागे एवी निद्राने अने उभा तथा बेटा निद्रा करे ते पचला. तेने करे ? हा. हे गोतम ! करे."

206

#### श्रीसप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुवादः

वळी शीभगवतीसूत्रना बारमां शतकना बीजा उद्देशाने विषे जयन्ती श्राविकाए पुच्छेला पश्चना अधिकारमां उत्तर आ प्रमाणे आपेल छे:-केटलाक जीवोनुं जागवापणुं सारुं, हे भगवन् ! ते ज्ञा अभिनायथी एम कहो छो के केटलाक जीवोनं जागवापणं सारुं ? हे जयन्ती ! जे आ जीवो श्रत-चारित्र रूप धर्में करी धार्मिक है, श्रुत रूप धर्मना अनुसारे चालनारा छे, श्रुत रूप धर्म जेमने बहुभ छे अथवा धर्मि-आत्माओने जे बद्धभ है. धर्मने कहेनारा अथवा धर्मेथी प्रसिद्धि पामेला छे, आ लोकमां ग्रहण करवा लायक धर्मज छे एम जोनारा, धर्ममां प्रेमने धारण करनारा, सम्यक्चारित्र रूप धर्मने सेवनारा अने श्रुत-चारित्ररूप धर्मथी पोतानी आजीविका चलावनारा विचरी रह्या छे, एवा जीवोनुं जागवा-पणुं सारुं छे. ए जीवो जागता छतां चणा पाण, भृत, जीव अने सत्वोने दःख नहिं आपनारा अने परिताप नहिं कर-नारा एवी रीते वर्त्तनारा होय छे. ते जीवो जागता पोताने अथवा परने अथवा बन्नेने घणी धार्मिक सारी योजनाएकरी संयोजनारा थाय छे. ए जीवो जागता छता धर्मजागरिकाए करी पोताना आत्माने जागृत करनारा थाय छे. ए जीवोतुं जागृतपुणं सार्र है. ते कारणने लड़ हे जयन्ती ! एम कहेवाय छे के केटलाक जीवोनुं जागवापणुं सारुं छे. '' इत्यादि श्री सिद्धान्तना वचन होवाथी तथा श्रीदश्चैकालिकसूत्रना चोथा अध्ययनमां जणावेल हे के:-" सत्रमां बतावेल इर्या-

समिति पूर्वक यतनाए चालतो. हाथ. पग विगेरेनो विक्षेप न करतो यतनाथी उभो रहे, हाथ, पग लांबा, ढुंका न करतो यतना पूर्वक बेसे, रात्रिमां सावधान, अतिनिद्रा विगेरेने दूर करतो यतना पूर्वक सूष, स प्रयोजन अने प्रणीत आहारने त्याग करतो यतना पूर्वक खातो अने कालोचित, कोमल साधयोग्य भाषाए यतना पूर्वक बोळतो साधु माठा एवा क्वानावरणादि पापकर्म बांधे नहीं ८ '' अहि ' जयं सए ' एनो अर्थ यतनापूर्वक पयत्न करतो साधु श्रयन करे. अहिं कोइ एम कहे छे के:-श्रीजिनेश्वरे शयननं कथन करेल होवाथी निदानो उपदेश आपेल है. एम कहे छते कहेनाराने कहिए छीए:-श्रयन शब्दे एकान्ते निद्रा अर्थ न थाय, प्रच-लामां व्यभिचार आववाथी, बेठेलाने पण निद्रा आवे छै. निद्रामां सात अथवा आठ कर्मोनो बन्ध छे, अने श्वयनर्मा भजना है. यतनाथी अयनमां इर्यापथिकी क्रिया ने समय स्थितिवाळी पण होय छे, अने निद्रामां तो एकान्ते सांपरा-यिकीज क्रिया होय छे, तेमां संशय नथी. सुता-शयन करता थका अनन्ता मुक्तिए गया, अनन्ता जसे अने संख्याता मुक्तिने पामे छै पण निद्रा करतो कोइ मुक्तिए गयो नथी, जतो नथी अने जसे पण नहि. वळी श्रीसयगडांगसत्रमां तथा श्री भगवती सूत्रमां पण कहेल है के:-'' उपयोगे वर्तनार, श्रयन करनारने इरियावहिया किरिया लागे छे. " एम निद्रामां नथी, श्यनमां यतना शास्त्रोक्त जणाय छे, परंतु निद्रामां नथी

### श्रीसप्तपदीदाास्त्र-गुजरातीभाषानुवाद.

जे कारणे गाथाना चोथा पदमां कहेल छे के:-यतना पूर्वक शयन करतो पापकर्म बान्धतो नथी. निद्रामां सात अथवा आठ कर्मनो बंध छे. सत्रमां कहेल खोढ़ं न होय. जो साध-ओने निद्रा प्रमाद करवा योग्यपणाथी उपदेश कराशे ? तो मद्य, विषय, कषाय अने विकथा पण करवा योग्यपणे केम नहिं थाय ? अहिं घणी विचारणा है. छतां पण गीतार्थी मध्यस्थपणाए सुत्रमां कहेल नीतिए जे कहे तेज प्रमाण छे, तेमां संशयके विचारणा नथी. तथा वळी श्रीसयगडांगसत्रना पुंडरीकाध्ययनमां कहेल छे के:-'' जे कंड आ संपराइक कर्म कराय छे, जे कर्में करीने चारे गतिमां जीव रखडे, ते सांपरा-यिक कर्म कहेवाय, ते कर्मने पोते करतो नथी, बीजाओनी पासे करावतो नथी अने बीजा करतां होय तेने साहं जाणतो नथी, ते साधु जाणवो. " आबुं सुत्र वचन होवाथी. सांप-रायिक कर्मनो निषेध साधुओने उपदेशेल छे. निद्रामां तो सांपरायिक कर्षेज थाय छे, अने शयनमां तेनी भजना छे. तथा श्री महानिश्चीयस्त्रमां कहेल हे कै:-" दिवसे शयन करवुं नहीं, करे तो 'दुवालस' पायिशत्त आवे." अहिं दिवसे स्वानो पण निषेध करेल है, तो निद्राना माटे श्रं कहेवं ? राते तो कारणे संधारा करवानो विधि छै, त्यां सुवानी यतना बतावेल छे. अहिं गीतार्थीज साक्षीओ थइ जे कहे तेज प्रमाण छे. निद्रा विधिनो उपदेश जिनेश्वर तथा छद्मस्थोना कथित उपर बतावेळ सूत्र तथा तेओनी दृत्तिओमां नथी. तो निद्रा

### आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रसुरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २११

करवानो विधि क्यांथी कहेवाणो १० १२३. छदमस्थोने दर्श-नावरणीयकर्मना उदयथी जी के निद्रा होय है, तोपण जिने-श्वरे कहेल विधिथी निद्रा छे, ए कथन सहहवा योग्य नथी. १२४. रात्रिना त्रीजा पहोरे केवल ज्ञाननी उत्पत्तिनो प्रतिषेध जो होय तो ए वस्तु मानवा योग्य छै. कारणके निद्रामां केवलज्ञाननी उत्पत्ति होति नथी. १२५. छञ्जस्थने प्रमाद होय. अने केवलीने प्रमादनो लेख पण न होय: ए बन्नेमांथी आणामां कोण? अने कोण आणामां नहीं ? जेनी प्रवृत्ति सूत्र प्रमाणे हे अने केवल इरियावहि किरिया जैने लागे हे ते आणामां है, अने इळी जेने संपराइय किया लागे है, ते आणामां नथी एम जाणवुं. १२६, १२७. उपशांतकवायीने तथा क्षीणकषायीने इरियावहिनी क्रिया होय छै, अने ते सिवाय बीजाने संपराइय क्रिया होय छे. आ बीना श्रीभग-वतीजी सत्रमां कहेल छे. तेना ७ मां २०मां अने २८ मां ब्रतकने विसे रहेल आ बीना जाणी साची श्रीजिनेश्वरनी वाफ़ी तेने सांभळीने सहहवी जोडए १२८,१२९ श्रीभग-वतीजी सूत्रना ७ मां २० मां अने १८ मां शतकने विषे कहेल छे केः-''जेना कोघ, मान, माया अने लोभ नाश नथी पाम्या अने जे संपराइयाकिया करनारा है. ते उत्सुत्रेज चाले है '' आबुं सुत्र वचन होवाथी. अहिं वृत्तिकारे ' उत्सूत्रमना-ब्रैव ' उत्सुत्र ते अनाज्ञाज ए प्रकारे व्याख्यान करेल **छे. अने** " जैना क्रोध, मान, माया अने छोभ नाश पापेला छे. तेने

इरियावहिनी क्रिया होय छे अने ते सूत्र प्रमाणेज पृष्टति-करे छे. '' आवां सूत्र वचन होवाथी निद्राना अधिकारमां जपर बतावेल थोडुं लख्युं छे. अहिं रहस्य आ छे:-गया का-ळमां अनन्ताछद्मस्थ साधुओनुं निद्रा करवापणुं थयुं, आवता काळमां अनन्ता छद्यस्थ साधुओनुं निद्रा करवापणुं थरो अने चालता कालमां पण छद्मस्य साधुओने निद्रापणुं छे. परंतु स्वाभाविक कर्मना उदयथीज होय छे, तेमां विधिरूप जिन-वरनं उपदंश होतं नथी. बळी जे आपकारे कहे छे के:-श्रीवीतरागना उपदेशविधि विना निद्राने करता साधओ स्वच्छंदी गणाय इति. ते पते गीतार्थीए आम कहेवं जोइए:-रात्रिना त्रिजा पहोर पहेला अथवा पछी कारण विना निदाने करता साधुओ स्वच्छन्दीज छे, तो एम प्रमाण करो. अने बीजुं जे कोइ पण छद्यस्थ साधु एक पहोरथी अधिक समय-मात्र पण अहोरात्र मध्ये निद्राने न करतो होय तेवा एकने बतावो, कदाचित एक बतावासे, पण तेनाथी अन्य बीजा बधा साधुओ तेम न करता स्वच्छन्द पणाथी विराधकोज थशे. एम विचारीने जे योग्य होय तेज करवु जोइए एपकारे हाथ जोडी करातुं मारी विनितनुं विधान तेने गीताथेरि सफल करवं जोइए. उभा रहेता के बेठे छते निवारण न थाय तेवुं कारण उत्पन्न थए छते. जे साधु सुवानी इच्छावाळो थाय, ते साधु संथाराने करे. १३०. जे कारणे संथारो अने उत्तरपटो औपग्रहिक उपधिमां कहेल है. ए औधिक उपधि-

### आचार्यश्रीम्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २१३

मां नथी. तेथी जाणबुं जोइए के ए कारणिक छे. १३१. साधु-वर्गने संथारानुं करवुं श्रीज्ञातासूत्र छट्टा अंगना प्रथम अध्य-यनमां चरितोपदेशे-चरितानुवादे कहेल छे एम जाणो. १३२. संथारो करवानो विधिः-भूमिने प्रमार्जना करीने वस्त्रोनी प्रमार्जना तो चोवीस न थाय पण एक दृष्टि पहिलेहणा करीने. १३३. त्यार पछी अही हाथ मापवाळो संथारो पाथरीने जंबाओने संकोची उपयोग वाळो थइ यतनापूर्वक तेनापर सूए १३४ इरियावहि पडिक्रमीने त्यार पछी आचार्यने वांदीने वे खमासमण आपीने 'वायणा संदिसाएमि अने वायणा करेमि ' कही वाचना करे. १३५. उक्कडासने बेसीने रकोहरण वडे अथवा महपत्तिए करीने मस्तकथी लड पग पर्यन्त शरीरनी पमार्जना करीने. १३६. उक्कुडासने रहेल अने डाबा पगवडे संथाराने दबावीने बेटो थको. त्यारपञ्ची ग्ररूए बतावेल विधि जाणवो. १३७. हे ज्येष्ठ आर्यो! हे ज्येष्ठ आर्यो ! अनुज्ञा आपो, अन्यकार्यने निषेधुं छुं, क्षमागुणमां रमण करनार महाम्रनिओने नमस्कार थाओ, एम कही नव-कार. करेमिभंते सामाइयं अने अरिहंतो महदेवो० त्रण वार कहे, त्यारपछी गुणगण रत्ने करी शोभित शरीरवाळा हे परमगुरु ! आप अनुज्ञा आपो तो हं वह पडिप्रसापोरसी रात्रि संथाराने स्थापन करुं. १. आ गाथा बोलीने संथाराना उपर यतनापूर्वक बेसीने एक पग उंचो अथवा लांबो करीने बोलवुं जोइए. संथारानी अनुज्ञा आपो! बाहुरूप ओसिके

#### श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुवाद

करी, डाबा पडखे कुकडीनी माफक पग पसारतो अन्तर-मध्यनी भूमिने पुंजे २. जंघाने संकोचता अने पाजा फेर-वामां शरीरने पहिलेवे, द्रव्यादि उपयोगवाळो उश्वासने रेांकी विचारे. ३. जो आ मारा शरीरनो रात्रिमां प्रमादे-नाश थाय तो आहार, उपि अने आ देहने छैल्ला शासीश्वासे वीसरावं छुं. ४. एम बोली पछी चत्तारि मंगलं. अहार पापस्थानोने वोसराक्वा. चोरासीखाल जीवाजोनीओने खमाक्वी अने बार भावनाओ भाववी जोइए. हुं एकलो छुं, मार्रुकोइ नथी, बीजा कोइनो पण हुं नथी, एवी रीते अदीन मनवाळो थयो थको पोताना आत्माने शिखामण आपे. १. जीव एकछो छै, अने एकलोज उत्पन्न थाय छे, एकलानो मरण थाय छे. कर्भ-रज रहित थयो थको एकलो सिद्धिने वरं छे. २. ज्ञान-दर्शनगुणे सहित, शाश्वतो मारो आत्मा एकलो छे, बाकीना सर्वे भाव पदार्थी संयोग संबंधथी एकठा थएला हे, ते माराथी जुदा हो. ३. संयोगने लड्डनेज जीवे दुःखपरंपरा पाप्त करेल छे. माटे सर्व संयोग संबन्धोने भावथी हुं त्याग करुं छुं. ४० पहेला नहीं पामेल एवा सुभाषित अमृत सरखा श्रीजिनवच-नोने पामीने स्वीकारेल छे मुक्तिमार्ग जेणे एवो हुं हवे मरणथी बीहितो नथी. १३८० त्रस-थावर जीवोने सुख आपनार अने निर्वाणमार्गनो रस्तो देखाडनार एवा श्रीजिनेश्वरे दर्शावेल ए सत्य उपदेशने त्रिविधे हुं सदहणा करुं छुं. १३९. इत्यादि, ए संथारानो विधि जाणवोः श्रीआचारांगसूत्रना सिज्जणा

### आचार्यश्रीब्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. २१५

अध्ययनना त्रिजा उद्देशामां जणावेळ छे के:-" ते साधु अथवा साध्वी निर्देषि एवा सिज्जा-संथाराने पाथरीने निर्देषि सिज्जा-संथारापर बेसवानी वांछा करे. ते साधु अथवा साध्वी निर्देषि सिज्जा-संथारा पर बेसवा पहेलाज मस्तकथी पग पर्यन्त कायाने पुंजे पुंजीने त्यार पछी सम्यक् यतना पूर्वकज निर्दोष सिज्जा-संथारा पर बेसे बेसीने त्यारपछी सम्यक्-यतनापूर्वक निर्देषि सिज्जा-संथारापर सूए, ते साध-साध्वी निदेषि सिज्जा-संथारा पर सुते छते एक बीजाने हाथे करी हाथने, पगे करी पगने, कायाए करी कायाने स्पर्श न करे, एवी रीते स्पर्श कर्या विना सम्यक् यतनापूर्वक निर्देषि सिज्जा-संथारा पर सूए. ते साध-साध्वी श्वास छेता, श्वास मुकता, खांसी करता, डॉंकता, बगासा खाता, ओडकार खाता अने वा संचार करतां पहेलाज मुख के अधिष्ठानने हाथे करी ढांके, ढांक्या पछी सम्यक् यतनापूर्वकज श्वास ले यावत् वा संचार करे.'' आवा सिद्धान्तना वचन होवाथी. आवी यतना बतावेल है. आवी यतनाथी सुतेलाने निद्रा करवी केम बने ? एवी रीते सुतो अने सम्यक् धर्म जागरिकावडे जागतो जिनेश्वरना उप-देशने सद्दृष्णा करतो थको यतनाथी सृष् १४०. उपयोग-वाळो छतां पण दर्शनावरणीय कर्मना उदये करी निद्राशी व्याप्त थएला नेत्रवाळो, मारो आत्मा प्रमादथी छलायो, एम जाणी आ प्रकारे विचारणा करे. १४१. जे बुद्ध उपयोगवाळा, केवलज्ञानयुक्त एवा जिनवरेन्द्रो सुबुद्धि जागरिकाए जागे छे, ते

श्रीसप्तपदीद्यास्त्र-गुजरातीभाषानुवाद.

धन्य छे, हुं तेओने नमस्कार करुं छुं. १४२. चौदपूर्वी थइने निद्राना दोषे करी घणा भव हुं भम्यो, एम भुवनभानूए सभामां पूर्वभवना निज चरित्रने कहेता कहेल छै. १४३. कहुं छे के:-'' जो चौद पूर्वधर निद्रादि प्रमादे करी निगोदमां अनन्तकाळ वसे. तो हे जीव! तारुं श्रंथशे ? " आवां वचन होवाथी। वळी दिवसमां चिन्तवेल कार्यने करवा-वाळी ' थीणद्धिया ' निद्रा जैने होय, ते दुर्गतिमां जाय छै: माटे अहो ! निद्रा प्रमाद महा शञ्ज छे. १४४. निद्रा प्रमाद दोषे करी साधुए हाथीना दान्त उखेडी नाख्या, आ दृष्टान्त घणा बाह्योमां संभळाय छे. १४५. आवा कारणे जिनेश्वरना ज्पदेशमां निदाकरणना आदेश न होय. पण तेज निद्रा<del>त</del>ुं त्याग विधिपूर्वक जिनेश्वरोए बतावेल छे. १४६. निद्रा त्याग करी, उठीने इरियावहियं पडिकमिने रात्रि पायश्वित विशो-धनार्थ-कुसुमिण दुसुमिण उड्डावणार्थ काउस्सम्म करे, शो शासीश्वास प्रमाण-अने कारण होय तो एक नवकार-आठ शासीश्वास अधिक चार लोगसनो करे. पछी शकस्तव भणीने वैरात्रिक काळने ग्रहण करे. विधिपूर्वक सज्झायने पटावीने पछी संवेगने पामेळो असंयति-अविरतियो जेम न जागे तेम सज्झायने करे. १४७थी १४९, वे घडी अवशेष रात्रि बाकी रहे त्यारे मुनि पाभातिक काळ ग्रहण करे. पछी त्रण थोभ वंदनाए आचार्यांदिकने वांदीने. १५०. पछी चोथे खमासमणे राड प्रतिक्रमणने ठावे. हवे सत्र, निर्येक्ति, वृत्तियोमां, तथा

# आचार्यश्री भ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं. २१७

आवश्यक चुर्णिमां अने पूर्वाचार्यीए करेला ग्रन्थोमां जेम विधि कहेल छे, तेमां पण केवलीना वचनानुसारे जैम कहेल छे तेम हुं कहुं छुं. १५१, १५२. श्रीउत्तराध्ययनना छवीसमां अध्ययनमां कहां छे के:-" सर्व दु:खोने नाश करनार काउ-स्साग करे. ४६. अने रात्रि संबंधी अतिचार ज्ञानमां, दर्शन-मां, चारित्रमां अने तपमां जे लाग्या होय. तेने अनुक्रमे चिन्तवन करे. ४७. पछी काउस्सग्ग पाळी त्यारबाद गुरुने वंदन करी वळी रात्रिना अतिचारोने अनुक्रमे आछोचना करे. ४८. पछी पडिकमी निज्ञल्य थएलो एवो गुरुने वंदन करे, करीने त्यारपछी सर्वे दुःखोनो नाज्ञ करनार काउस्सम्म करे. ४९. ते काउस्समामां ' हं आजे शं तप स्वीकारुं ? ' ए प्रकारे चिन्तवणा करे, पछी काउस्सग्गने पाळीने श्री जिने-श्वरोनं स्तवन करे. ५०. पछी पारेल छे काउस्सम्म जेणे एवो गुरुने वांदीने, जे तप धारेल होय तेनं पचल्लाण करीने सिद्धोतुं स्तवन करे. ५१ " वळी राइपतिक्रमणनो विधि श्री आवश्यक निर्धेक्ति मध्ये पांचमां अध्ययनमां बतावेल छै:-" माया करणथी, वेगपूर्वक करवाथी, करवानुं न करवाथी दोषो अथवा अतिचारोने निद्राधी प्रमादधी स्मरण न करी शके तेथी प्रभातना प्रतिक्रमणमां पहेला त्रण काउसग्ग. तेमां प्रथम चारित्राचारविशुद्धिनो, बीजो दर्शनाचार विश्रद्धिनो अने त्रीजो श्रतज्ञाननो पण तेमां अतिचारोने चिंतवे. २ त्रीजामां रात्रिना अतिचारोने चिंतवे अने छेल्लामां

#### श्रीसप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुवादः

शुं तप करुं ? श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीए छमासी तप कर्युं हे जीव ! तं करी शके ? न शकुं, एम एक एक दिवस उर्णु करतां करतां जाव पोरसी अथवा नवकारसी सुधी चिंतवे. ३ '' वळी श्रीहरिभद्रसुरिकृत पंचवस्तुक ग्रन्थमां जणावेख छे के:-'' पादोषिकादि सर्व-कालग्रहण अने स्वाध्यायादि ते विशेष सूत्रथी अहिं जाणी लेवुं. हवे हुं राइपतिक्रमण अनुक्रमे कहीश. १. सामायिक लड़ पहेलाज इहां चारित्राचार विश्वद्धि माटे पचीस शासाभास प्रमाण धीर पुरुषो काउरसम्म करे. २. विधिपूर्वक 'नमो अरिहंताणं' कहीने शुद्ध चारित्रिया ' लोगस्स उज्जोअगरे ' बोलीने दर्शनशृद्धि निमित्ते एक लोगस्सनो काउस्सम्म ' चंदेस निम्मलयरा ' सुधी करे. ३० पछी विधिपूर्वक 'नमो अरिहंताणं' कहीने 'पुरुखरवरदीव ०.' श्रुतस्तव बोलीने त्यार पछी उपयोग वाळा थया थका अति-चार चिन्तवनरूप काउस्सग्ग करे. ४. हवे जे चिंतवन करे, ते बतावे छे:-सांझना प्रतिक्रमणना अनन्तर स्त्रतिथी लड़ने आ चालता काउस्सम्म व्यापार पर्यन्त रात्रि संबन्धी सर्वे अति-चारोने रुडी रीते चिन्तवे. ५. त्रीजा काउरसम्ममां रात्रिना अतिचारो चिन्तवीने विधिपूर्वक ' सिद्धाणं बुद्धाणं ' कहीने विधिपूर्वेक प्रतिक्रमण करे. ६. सामायिकनुं बहुधा करण, ते पूर्वक श्रमणना व्यापार छे: अने आ स्मरण कराववामां प्राये ते कारणभूत छे. ७. पछी गुरुने खमावीने सामायिक उचार-पूर्वक काउस्समाने करे, तेमां आबुं चिन्तवन करे, गुरुए

# **अा**चार्यश्रीभ्रातृचंद्रसृरि बन्धमाला पुस्तक ५३ मुं. २१९

आपणने क्यां जोड्या हे. ८. गुरुए बतावेल कार्यनी जेम हानि न थाय तेम उद्यम करे, तप करवामां छ मासथी लइ यावत् पोरसी नवकारसो सुधी सरल भावनाए चिन्तवे. ९. पछी आटछुं तप करवाने हुं समर्थ छुं एम हृदयमां निश्चय करीने गुरुने बांदणा दइने गुरु समीपे जे चिन्तवेल तेज नव-कारसी, पोरसी विगेरे ग्रहण करे. १० " जेवो प्रतिक्रम-णनो विधि उपर बतादेल ग्रन्थोमां कहेल छे तेवोज आवश्यक बृहद् वृत्तिमां जणावेल छे. १५३. तेवोज आवश्यक चुर्णिमां बखाणेल छे. तथा श्री हरिभद्रमृरिकृत पंच वस्तुक ग्रन्थमां:-'' आचरणाए श्रुतदेवी विगेरेनो काउस्सम्म छे. वळी कोइक चोमासीमां, संवच्छरीमां क्षेत्र देवतानो काउरसमा अने परुखीमां शय्यासूरी-भवनदेवीनो अने कोइक चोमासीमां पण काउस्सम्म करे छे. ४९२ " आवुं बचन तेमां होवाथी. परंतु आचरणाए पण देवसिअ प्रतिक्रमणमां श्रुतदेवी तथा खेत्रदेवीनो काउश्समा सूत्र, दृत्ति अने चूर्णिमां बतावेल नथी. १५४. परुखीमां, चोमासीमां अने संबच्छ-रीमां देवीनो काउम्सग्ग कोइकज करे छे, एम कहेल छे. आवा विधिवादो सर्वेने मान्य छे एम कहेल नथी. १५५. आचरणाए करेल होय, तेने न करवाथी आणाभंगनो दोष नथी, आचरणाने अन्योन्य-देखादेखी कोइ करे अने कोइ न करे. १५६. सर्वेनी पोतपोतानी गच्छाचरणा भिन्न भिन्न होवा छतां पण अने जुदी जुदी रीते कराती छतां कोइथी

श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुवाद.

पण निन्दाती नथी. १५७. केटलाक त्रण थोइ कहे छै, वली केटलाक चार थोइ कहे **छे, काउस्सग्गमां देवीओनी** थोड <mark>कहे</mark> छे, ते देवीओनी थोइ पण सर्वेने प्रमाण नथी. १५८. देवी: ओनी स्तुति करवार्या प्रयोजन आलोकनोज होय छे अने ते प्रगट देखाय छे, कारण के 'बंदण वित्तयाए ' ए पाठ त्यां बोलता नथी. १५९. काउस्समा अभितर तपमां छे, वळी नव-कारनं चिन्तवन कराय छे, अने जैनसिद्धान्तोमां वंदनीय अरिहंतादि पांच छे. १६०. श्रीदश्चवैकालिकसूत्रना नवमां अध्ययनमां ' आ लोकना अर्थे तप न करवं ' एम तिहां खुद्धी रीते निषेध करेल छे. ते जाणवं जोइए. १६१. वळी श्री आवश्यक सुत्रमां, श्री ठाणांग सुत्रमां, श्री समवायांग सुत्रमां, श्री पश्च व्याकरण सूत्रमां अने श्री उत्तराध्ययन सूत्रमां आ लोकना अर्थे तप करवानुं निषेध बतावेल हे. १६२. श्री दश्चवैकालिकसूत्रमां कहुं छे के:-'' निश्चेथी तपसमाधि चार प्रकारनी है ते आ प्रकारे आ लोकना माटे-आ लोकना निमित्ते लब्धि आदिनी वांलाधी तप-अनसनादिरूप न करवं. धम्मिळनी माफक १. तथा परलोकना माटे-जन्मान्तरना भोग निभित्ते तप न करवं, ब्रह्मदत्तनी माफक २, वळी कीर्ति, वर्ण, शब्द अने श्लाघाना माटे तप न करवं ३. परंत कर्मनिर्जराने माटेज तप करवुं, तेने छोडी बीजी कोइ पण बांछाथी तप करवुं नही. ४ " आ प्रकारे सिद्धान्तनां वचन होवाथी. बळी श्रीआवश्यकसूत्रमां बत्रीस योगसंग्रह बता-

### आचार्य श्री भातृचंद्रस्रार प्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं २२१

वेला छे, तेनां नाम:-" आलोचन १, निख्नलाप २, आपदि सुदृहधर्म ३. अनिश्रितोपधान ४, श्रिक्षा ५, अने निष्पतिकर्म ६ '' इत्यादि नाम बतावेलां छे, तेमां चोथो योग-संग्रह-अनिश्रितोपधान छे, तेनो अर्थ 'आलोकना फलनी वांछा कर्या विना तपनुं करवापणुं' एम बतावेल छे. " एज प्रमाणे श्रीटाणांगसूत्रमां, श्रीसमवायांगसूत्रमां, श्रीपश्रव्या-करणसूत्रमां अने श्रीषत्तराध्ययनसूत्रमां बतावेळ हे. एक दिवसना पर्यायवाळो-आजनो दीक्षित, बाल अने अज्ञ एवो पण साधु क्षो वर्षनी दीक्षित अने बहुश्रुतवाळी पण साध्वीने वंदन करे नही. १६३. विस्तिने धारण करनारी, गुणना स्थानभूत एवी पण साध्वी बंदाति नथी, एवी व्यवहार है, तो अविरति देवीओने साधु केम बांदे ?, ते कहो ? १६४. देवीनी थोइ आचरणाए छे, ए कारणे ते शुद्ध नथी, आच-रणाना लक्षणे करीने पण योग्य नथी, कारणके आचरणानुं कक्षण त्यां लागु पहतुं नथी. १६५. आचरणानुं लक्षण पूर्वीचा-र्योप आ प्रमाणे बतावेल छे:-''कोइ पण अञ्चठ पुरुषे कोइ स्थाने जे कंड निर्देष-पापरहित आचरण कर्यु होय. अने तेनं बीजा-ओए निवारण कर्युं न होय, ते आचरण कहेवाय, तेवी आ-चरणा अमने प्रमाण छे. १ " आवुं पूर्वाचार्यनुं वचन होवाथी. तेमां जे जिनेश्वरं निषेधेल अने ते निषेधेलनुंज विधान करवुं एज सावद्य-पापकारी छे, छक्षण विरुद्ध एवुं आ आचरण अहिं केम प्रमाणभूत मानी शकाय?

२२२

#### श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुबाद.

१६६. क्षेत्रना अवग्रह कार्यमां क्षेत्रदेवीनं संस्तव-स्तृति करता माधुओने वसति दोष छे, ते उत्पादनना शोलदोष मांहेलो अग्यारसो 'पुन्नापच्छव संथव' नामनो जाणवीः १६७. आ आचरण जे सत्र विरुद्ध अने जे स्वच्छंदमतिए कल्पाएछी गीतार्थीए कहेवाती, ते आचरणा निश्वेथी मारावडे नही थाय. १६८ हवे परुखी संबंधी, चोमासी तथा संवच्छरी संबंधी मतिक्रमणनो विधि कहे छै:-श्रीआवश्यक निर्शेक्तिना पांचमा अध्ययनमां जणावे है के:-'' देवसिय, राइय, पिरुखय, चोगासिय अने संवच्छरीय ए पांचे प्रतिक्रमणमां, एक एक प्रतिक्रमणमां त्रण त्रण गमा जाणवा. १. प्रथम सामायिक उच्चार करी काउस्समानी पहेला, फरी बीजीबार पडिक्रमतां अने त्रिजीवार काउस्सम्म करतां पहेलां सामायिकनो उच्चार शा माटे कराय छे ? गुरु उत्तर आपे छे के:-समभावमां रही काउस्सम्म करे, एवीज रीते समभावमां रही प्रतिक्रमण करे अने समभावमां स्थितात्मा काउस्सम्म करे, ए माटे त्रण वखत सामायिकनो उच्चार बतावेल है. २-३. आ पांचे देवसिय विगेरे प्रतिक्रमणोमां एक एक प्रतिक्रमणनी अंदर त्रण त्रण गमा जाणवा सामायिकनो उच्चार करी पडिकमणने माटे अतिचार चिन्तदनरूप काउस्सम्म करवं ते पथमममो, फेर सामायिकनो उच्चार करी प्रतिक्रमणसूत्रनं कहेवं. ते बीजो गमो अने सामायिक अध्ययन उच्चारण करीने चारित्र शुद्धि करवा काउस्सग्गनं करवं ए त्रिजो गमो, एम त्रण गमा जा-

# आचार्यश्रीभातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २२

णवाः अहि बीजो कोड प्रश्न करे हैं:-प्रतिक्रमणना माटे प्रथम काउस्सग्गना आदिमां सामायिकनो उच्चार करीने फेर केम बीजी वार प्रतिक्रमणसूत्रनी आदिमां तेनो उच्चार करवामां आवे छे ? अने वळी त्रिजी वार चारित्र शुद्धिनी आदिमां ते सामायिक सुत्रनो उच्चार करवामां आवे छे ? एस कहे छते गुरु कहे छे:-समभावमां रहेल आत्मा प्रथम उच्चारण करेल छे सामायिक जेणे एवो ते काउस्सम्ग करीने अने एवीज रीते बीजी वखत उच्चारण करेल छे सामायिक जेणे, ते प्रतिक्र-मणसूत्र भणे अने त्रिजी वार पण समभावमां रहेल. उच्च-रित सामायिकवाळो चारित्रनी शुद्धि माटे काउस्समा करे. प्रथम समभावमां रहेलनेज पतिक्रमण कर्युं गणाय, ते शिवाय न गणायः एटला माटे अणवार करेमिभंते कहेवाय छे. अथवा ''सज्झाय, ध्यान, तप, काउस्सम्म, उपदेश, स्तुति, पदान अने संतग्रुण कीर्तन एटलामां पुनरुक्तदोष नथी गणतां. १" आवं वचन होवाथी. पांचे मतिक्रमणमां अतिचार चिन्तवन रहेलज है. उपर बतावेल निर्युक्तिना बले परुखी. चोमासी अने संबच्छरीयतिक्रमण देवसी प्रतिक्रमणनी साथे कराय छे. अने तेमां काउस्सरम जे जे आवे छे ते ते जीतकल्पथी छे. १६९. देवसियप्रतिक्रमणमां शो श्वासोश्वास, अने राइप्रति-क्रमणमां ते पचास होय छे. पिल्लिमां त्रणशो, चोमासीमां पांचशो १७० तेमज एक हजारने आउ शासोश्वास संब-च्छरी प्रतिक्रमणमां जाणवाः एम श्रीआवश्यकनिर्धेक्तिमां

कहेल है. १७१. पिल्लय, चोमासी अने संवच्छरीप्रतिक्रम-णनो बीजो कोइ विधि सूत्रमां देखातो नथी. हत्तियोमां जे विधि कहेल छे. ते पण सर्वगच्छोमां थतो नथी. १७२. सर्वेनी पूर्व सुरिओए करेल पोतपोतानां गच्छनी आचरणा छै, तेमां जे प्रवचनमार्गना अनुसारे आचरणा, ते आचरणा पण आणा सरत्वी छे. १७३. हवे पिल्तिय क्यार करवुं तेनुं अधिकार जणावे हे:-पिल्लय अने पोषधमां समाधिने प्राप्त थएला साधुओनां चित्त समाधिस्थान श्रीदशाशृतस्कंधसूत्रने विषे दश कहां छे. १७४. अहिं चूर्णिमां जणावेल हे के:-'' पिरुवमां पिरुवकार्य अने पिरुवमां पोषधोपनाम आठम अने चौदशमां, समाधि एटले ज्ञान, दर्शन अने चारित्ररूप भावसमाधिमां पाप्त थएला '' इत्यादि वचन होवाथी. अहिं श्रीदश्वाश्रुतस्कंधसूत्रने विषे पिरुखय शब्द छे ते चौदश्वीने कहेनार जाणवो, जे कारणे पख्खिनो पर्याय चौदश शब्द कहेल छे पण पिल्खिय शब्दे पूर्णिमा कहेल नथी. १७५. वळी श्रीभगवतीसूत्रना बारमा शतकनां पहेला उद्देशामां परूखिय-पोसह शब्दें चतुर्देशीनो संभव छे. १७६. जे कारण माटे प्रथम दिवस विना पोषघ पण ग्रहण कर्युं नथी, तेथी एक दिवसनुंज आराधन इहां खुल्छुं जणाय छे. १७७. तेनी 'श्रीभगवतीसूत्रनी ' इत्तिमां चौद्य के पूनम आदि स्रेवानुं विशेष कांड जणावेळ नथी: ए कारणे चौदशीमांज पिल्खय थाय. १७८. जे माटे पूर्वाचार्योए कहेल छे के:-''अट्टम. छट्ट

# आचार्यभीष्ठातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ सुं. २२५

अने चडत्थभत्त-एक उपवास संवच्छरी, चोमासी अने पिल्लमां पोषध तथा तप कहेल है, असमर्थ अने गिलानने माटे माफी छे ? " तेमज बळी श्रीनिशीयभाष्यमां कहेल छे केः⊢'' पख्लिमां चोथभत्त⊢एक उपवास करवुं '' हवे पूर्णिमां अने अमावास्या गणवामां आवेतो चोथभत्त-एक उपवास केम थइ शके ? आवा कारणथी चौदश्चमांज पाक्षिक जाणवुं. वळी श्रीव्यवहारसूत्रनीवृत्तिमां कहेलछेके:-''आठम-तिथी तथा परूखमां चउत्थमत्त अने चोमासीमां छट्ट तथा संवच्छरीमां अंहम तप न करे तेने पायश्चित्त आवे ? '' तथा आवश्यकचूर्णिमां कहेलछे के:-'' आठम अने चौट-शमां अरिहंत अने साधुओ वांदवा " एम जणावेल है. बळी फेर त्यांज " वळी ते श्रावक आठम, चौदशमां उपवास करे, पुस्तक वांचे, त्यारे सागरचंद्रनामा श्रावक आठम चौदश्चने विषे शुन्य घरोमां अथवा स्मज्ञानमां एक रात्रिसंबंधी पहिमा-अभिग्रह विशेषने स्थापे.चंपानगरीमां सुदर्शन श्रेष्टिपुत्र आठम अने चौदश्रमां चौटाने विषे श्रावक प्रतिमाने स्वीकारे. उदायनराजा आठम अने चौदशमां पोषध करे. " आवा आवश्यकचूर्णिना वचन होवाथी तथा वळी-''आठम, चौदशमां प्रभावती श्राविका भक्तिरागे करीने निरंतर अवझ्य साधुवंदनादि खपचारने करें" एम निशीथचूर्णिना वचन होवाथी घणा स्था-नोने विषे पाक्षिक-कृत्यो पौषध, चैत्यपरिपाटी, साधुवंदन विगेरे चतुर्दशीमांज देखाय छे. ए कारणे पाक्षिक शब्दे करी

चतुर्दशी जाणवी. कार्तिक अमावास्याए श्रीवीरजिनवरेन्द्रनं निर्वाण थयुं, ते कारणे त्यारे शुद्ध पोषध-उपवास स्थाप्युं. १७९ काजी. कोज्ञल देशना राजा विगेरे अहार गणराजाओ मलीने पिक्लिय तथा अमावास्यामां त्यारे कर्यु. १८०. आ सुव-चनश्रीदश्राश्चतस्कंधसूत्रनां आठमां अध्ययनमां कहेल हे. फेर बळी, तेज सूत्रमां पिरुखनी आरोपण अथवा आलोवणा कहेल छे. १८१. ते आलोबणानुं ग्रहण करवुं अमावास्याए निषेधेल छे, माटे अमावास्यामां पिछल न होय: ज्यारे अमावास्यानं निषेध कर्युं, त्यारे पूनमनुं पण पिछ्ख न थाय एम जाणवुं. १८२. जे कारणथी पंचमांग श्रीभगवतीसत्रज्ञा पनरमांशतकमां श्रीवीरनाथनो विहार पडवाना दिवसे अने तेना पहेला दिवसे चोमासी एम कहेल छे. १८३. तेथी त्रण चोमासी प्रनमना दिवसे जाणवी. वळी पिछ्ख तथा चोमासी एक दिवसमां न थाय. १८४. अंगस्त्रत्रोमां तथा उपांग-सुत्रोमां चत्रदंशी. अष्टमी, उद्दिष्टा-जिनकत्याणिक तिथी तथा त्रण पूर्णिमां ए रीते चार पर्वतिथीओनां नामो कह्यां छे. १८५. बीजोअंग श्रीसुयगडांगसूत्र, तेनां त्रेवीसमां अध्य-यननीवृत्तिमां चोपर्वी संबंधी खुला अर्थ रहेला छे, एम जाणवं. ते आ पकारे:-आठम तथा चौदश १८६. तेमज उद्दिश शब्दे करी श्रीजिनवरेन्द्रोनी महाकल्याणकतिथिओ अने चोमासीनी त्रणपूर्णिमा तिथीओज हे. एम जणावेस छै. १८७. ए कारणे चौदसना दिवसे पख्लिय जाणवुं, जे

## आवार्यश्रीभ्रातृचंद्रस्रि प्रस्थमाला पुस्तक ५३ मुं २२७

कारण माटे पूर्णिमां चोमासीनीतिथी कहेल छे, तेमां कोइ प्रकारे पण परिस्त थाय नहीं. १८८. हवे परिस्तय चौदशना दिवसे थाय, तेमां पहेला देवसिय थाय. एम योगशास्त्रनां अर्थमां श्रीहेमचंद्रसरीश्वरे कहेल छे. १८९. जे कारण माटे पूर्वीचार्योष कहेल छै के:-''बीजी पण द्वियोमां तेमज चुर्णियोमां अने वळी श्रीअभयदेवसुरि प्रमुखोए उद्दिश शब्दे अमावास्या निर्देश करेल है. १. एम उद्दिष्टानी अर्थ अमा-वास्या जो मानीए तो श्रीजैनशासनमां समसिद्ध कल्याणक तिथीओ पाप्त थड शके नहिं, अने ज्यारे सूत्र के अर्थमां कहेल न होय तो ते केवी रीते आराधि शकाय १२. बीजी क्रियाओमां नाग विगेरेनी पूजा, समुद्रना जलनी दृद्धि अने शैलक यक्षना उपचारमां त्यां उद्दिणनो अर्थ अमाबास्या जाणवो. ३. एम उद्दिष्टापदे करी प्रवचन-सिद्धान्तमां अमा-वास्या कहेल छे. ज्यां शेष लोकस्थिति एम विशेष जणावेल होय ४. त्यां विवेक करको जोइए, पर तीर्थीओनुं के स्व-तीर्थी ओनं आराधन छे. धर्मकियामां कल्याणिकतिथीओने मुकी जिनमतनो जाणकार बीजो अर्थ केम ग्रहण करे. ५. " ए कारणे स्वतीर्थे उद्दिष्टा शब्दे कल्याणिक तिथी जाणवी अने जगत्स्वरुपे उद्दिष्टा ज्ञब्दे अमावास्या जाणवी. बळी संदेह विषीषधीमां जिनवहाभसुरिए पण ऋषुं छे के:-चोमासी प्रति-क्रमण पिरुवयदिवसमां चतुर्वियसंघे (१) १९०० निश्चेथी पक्षनी आदम अने मासनी पिरुखय जाणवी, अने त्यां

पिल्लिय शब्दे चर्तदशी एम श्रीपूर्वाचार्यीए कहेल छे. १९१. वळी बीज़ं श्रीजंबुद्दीपप्रज्ञप्ती, श्रीचंदपज्ञप्ती, श्रीस्र्यपज्ञप्ती, श्रीभगवती अने श्रीअनुयोगद्वारस्त्रत्रोमां अने बीजी जगोए पण एजममाणे कहेळ छे. १९२. पनरदिवसें पक्षथाय, वे पक्षनो मासथाय, बारमासनो वर्ष थाय, ए काळ प्रमाण छै, ए पर्वत्रमाण न होयः १९३. जे तिथीओमांज प्रतिक्रमण थाय एवा मोटा त्रणपर्वी परुखी, चोमासी अने संवच्छरी ते आवा काळ प्रमाणनी गणनाए न थाय. १९४० श्रावण वद पडवाए तथा अभीचनक्षत्रे संवच्छरनो पारंभ थाय छे, एम जिन्धरोए कहेल छे. १९५. अने जो एवीरीते गणिए तो आषाढीपूर्निमें वरसथाय, पण भादरवासुद्पांचमनादिवसे ए वरस केवीरीते थाय ? १९६० तेम बीजापक्षमां मास थाय तो मासस्थानमां चोमासी केम थाय? वळी आड मासने विषे अने बारमासनेविषे शुं करवं ? एम करीए तो एवधुं विरुद्धजेवुं थाय. १९७. ए प्रमाणे श्रुतने सांभळीने दिवसोनी गणना करी पर्वनं करवं संभवतं नथी. अहिं गीतार्थी जे कहे तेज प्रमाण १९८० ए प्रमाणे परुखीसंबंधी अधिकार जाणवो. हवे उदयिकतिथीनो अधिकार बताबे छे:-श्रीचंदपन्नतिसूत्र तथा श्रीसूरपन्नत्ति-सुत्र ए वे उपांगसुत्रमां तथा पंचमअंग श्रीविवाहपन्नत्तिसुत्रमां उदयतिथीनुं ममाण बतावेल हे. १९९. अहि सुत्रनां पुरावा बतावे छै. श्रीजंब्द्वीपसूत्र मूलमां जणावे छै के:-'' हे भगवन्!

# आचार्यभी बातृचंद्रस्रि यन्यमाळा पुस्तक ५३ मुं २२९

एकमासना पक्ष केटला कहा छे ? हे गौतम ! वे पक्ष कहा छे. ते आप्रमाणे, एक वदिपक्ष अने बीजो सुदिपक्ष, हे भगवन् ! एकपक्षनां केटला दिवस कह्या छे ? हे गौतम ! पन्नरदिवस कहा छे, ते आ प्रमाणे-प्रतिपदा दिवस, द्वितीया दिवस यावत पंचदशी पन्नरमो दिवस. हे भगवन आ पन्नर दिवसोना केटला नाम कहा छे ? हे गौतम ! पन्नर नाम कह्या छे, ते आ प्रमाणे:-प्रथम पूर्वीन, २. सिद्धमनोरम, ३. मनोरथ, ४. यशोभद्र, ५. यशोधर, ६. सर्वकामसमृद्ध, ७. इन्द्रमृद्धीभिषिक्त, ८. सौमनस, ९. धनंजय. १०. अर्थ-सिद्ध, ११. अभिजात, १२. अत्यक्षन, १३. शतंजय. १४. अग्निवेब्म, १५. उपश्चम. ए दिवसोना नाम जाणवा. हे भगवन ! आ पन्नरदिवसोनी केटली तिथी कहेल छे ? हे गीतम ! पन्नरतिथी कहेल छै, ते आपकारे-नंदा, भद्रा, जया. तुच्छा-रिक्ता अने पूर्णी एमने त्रणवखत आवर्त्तन करीए एटले पन्नरदिवसनी पन्नरतिथीओ थाय. जैम के १-६-११ नंदा. २-७-१२ भद्रा, ३-८-१३ जया, ४-९-१४ तुच्छा. ५-१०-१५ पूर्णाः हे भगवन् ! एकपक्षनी रात्रिओ केटली कही छे ? हे गौतम ! पन्नररात्रिओ कहेल छे, ते आप्रमाणे-पडिवारात्रि यावत पन्नरमीरात्रिः हे भगवन ! आ पन्नर राविओना केटला नाम कह्या छे ? हे गौतम! पन्नरनाम कहा छे. ते आ प्रमाणे-उत्तमा पडवेनी रात्रि. सनक्षत्रा बीजनी रात्रि, एलापत्या त्रीजनी, यशोधरा चोथी,

२३०

सौमनसा पांचमी, श्रीसंभुता छठी, विजयासातमी, वैजयन्ती आठमी. जयन्ती नवमी. अपराजिता दशमी. इच्छा अग्यारमी. समाहारा बारमी, तेजा तेरमी, अतितेजा चौदमी, देवानन्दा पन्नरमी, आनुं बीजुंनाम निरति पण छे. आ रात्रिओना नाम जाणवा. हे भगवन्! आ पन्नर रात्रिओनी केटली तिथीओ कहेल छे ? हे गौतम ! पन्नरतिथीओ कहेल छे, ते आ प्रमाणे:-१. उग्रवती, २. भोगवती, ३. यज्ञोसती, ४. सर्वेसिद्धा, ५. शुभनामा, ६. उग्रवती, ७. भोगवती, ८. यशोमती, ९. सर्वेसिद्धा, १०. शुभनामा, ११. उग्रवती, १२. भोगवती. १३. यशोमती. १४. सर्वसिद्धा. १५. श्रभ-नामा, आ पन्नररात्रिओना नाम जाणवा, आवां सूत्रवचन होवाथी. उपर प्रमाणे सुरपञ्चतीमृलस्त्रमां पण दश्चमां प्राप्तुतना चौदमां अने पन्नरमां प्राप्तुतप्राप्तुतने विषे सरखो पाठ होवाथी लखेल नथी. आ स्थाने एनीवृत्तिमां आम जणावेळ छे:- '' एकेक पक्षनी पन्नर पन्नर रात्रिओ कहेली छे. ते आ प्रकारे-पडवे पडवा संबंधीनी प्रथमा रात्रि, बीजा दिवस संबंधीनी बीजी रात्रि. एवी रीते पन्नरमां दिवस संबंधीनी पन्नरमी रात्रि " आवा वचन होवायी. जे दिवस, तेज रात्रि पटले दिवसना संबंधवाळी रात्रि जाणवी. श्रीकल्प-स्त्रमां जणावेल हे के:-" जपशम नामा दिवसे देवानंदा ते रात्रि '' एम कहेल होवाथी वृत्तिमां जणावेल छै के:-'' कोड शंका करे है के-दिवसीथी दिथीओमां शं विशेषता है ? के

## आचार्य श्री भातृचंद्रस्ररि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. २३१

जेथी एओने जूदी केवाय छे. गुरु उत्तर आपे छे-अहिं सूर्ये निष्पादन करेल एटले सुर्यथी निष्पादन थएला अहोरात्र छे अने चंद्रधी निष्पादन थएल तिथीओ छे. तथा बळी आ पूर्वीचार्योंनी परंपराथी आवेल रहस्यभूत उपदेश छै. बासटभागे पविभक्त थएल अहोरात्रना जे एकसट भागी तेटला प्रमाणवाळी तिथी जाणवी. अने त्रीस सुहूर्च प्रमाण अहोरात्र ते तो सुप्रसिद्ध छे. वळी श्रीभगवतीसूत्रनां बारमा शतकनां छद्रा उद्देशकमां आम कहेल छैं:--" हे भगवन ! शा प्रयोजने एम कहेवाय छै के सुर्य आदित्य छे ? हे ! गौतम सुर्य जेनी आदिमां छे एवा समयादि अथवा आविलकादि अथवा यावतु उत्सर्विणी, अवसर्विणी काल छे, ते कारणथी सर्व आदित्य कहेवाय छे. '' तेनी वृत्ति आ प्रमाणे छे-" हवे आदित्य शब्दनो अन्वर्थ-सार्थकता जणावता जणावे छे सर्य है आदि पथम जेओनो मध्ये ते सुर्यादिक कहेवाय, कोण कहेवाय ? बतावे छे समयो-अहोरात्रादि काळ भेदोमां जेओनां बीजो विभाग न थड शके एवा अंशो. ते समयो कहेवाय. ते आ प्रकारे-सर्योदयनी अवधिने करीने अहोरात्रनो आरंभक समय गणाय है, तेमज आवित्रका, ग्रहत्तदिको पण गणाय है. ते कारण माटे सुर्यने आदित्य एम कहेवाय छै. अहोरात्र, समयादिओनी आदिमां थएल ते आदित्य कहेवायः आ वमाणे व्युत्पत्ति करेल होवाथी. '' एवीज रोते श्रीसूर्यपङ्गप्ति सुत्रमां जणावेल है के:-हे भगवन् ज्ञाथी सूर्य आदित्य एम

कहेवाय छे ? उत्तर आपे छे के:-सूर्य जेमनी आदिमां छे एवा समयो, आवलियो, शासोश्वास, स्तोक यावत् उत्सर्पिणी काल एम निश्रेथी जाण सूर्य आदित्य, एम कहेवाय छे, एम बोलाय. " एवीजरीते श्रीचंदपन्नत्तिमृलसूत्रमां पण जणा-वेल छे. हवे तेमनी वृत्ति जणावे छे:-" हे भगवन ! ज्ञा-कारणथी सूर्य आदित्य एम कहेवाय छे, एम बोलाय? भगवान कहे छे. सूर्य आदि मथम छे जेओने ते सूर्यादिक कहेवायः ते कोण ? समयोः समय एटले अहोरात्रादि काळ, जेना बीजा विभागो न थइ शके ते समय, सूर्य जेनी आहि छे, सुर्य जेमनं कारण छे, एवा जाणवा. ते आ प्रमाणे-सूर्यना उदयनी मर्यादाकरी अहोरात्रनो आरंभक समय गणाय छे. बीजीरीते न गणाय एवीरीते आविलकादि पण सर्य जेमनी आदिमां छे, एवा जाणवा. विशेष असंख्याता समय सम्रदाय रुपने आवलिका कहिए, संख्याति आवलिकाओनो एक शासीश्वास एटले ४३५२ आवलिकाओनी एक शासी-श्वास, एम दृद्धसंपदाय छे. तथा कहेल पण छे के:-'' एक शासोश्वास ४३५२ आवलिका प्रमाण अनंतज्ञानीओए कहेल छे १ " सात शासोश्वासनो एकस्तोक इत्यादि यावत शब्दे ग्रुह् त्रीदिक जाणी लेवा. ते सुगम होवाथी जणाव्या नथी. एवी रीते निश्चेयथी सूर्य आदित्य एम प्रसिद्धिथी बोली शकाय. आदिमां जे थएल होय ते आदित्य आवी व्युत्पत्ति होवाथी. " आवा अक्षरो जोवाय छे, तेथी उदयतिथी प्रमाण

## आचार्यश्री भातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं, २३३

है. अन्य बास्त्रोनेविषे पण कहेल है के:-''उदयमां जे तिथी होय तेज प्रमाण, बीजी स्वीकारवी नहीं बीजी स्वीकारता आणाभंग थाय.आणाभंगथी मिध्यात्व लागे ?'' जे तिथीमां सूर्य उदय थाय ते तिथीमां पचरुखाण, पूजा, प्रतिक्रमण अने पौषध अनुष्ठान करवं जोड़ए २'' इत्यादि बतावेल है. अत्यन्त थोडा अंधारावाळी माटेज अजवाळी छतां अंधारीपडवे कहेवाय छे, अरुप जेमां उद्योत-अजवाळं छे खरेखर संपूर्ण जेमां अंधारुं छे, छतां पण अजवाळी पडवे कहेवाय छे. २००. एवीरीते उदयतिथी पण जाणवी. संपूर्णअंधारी एवी उज्वलतिथीनी माफक. आव-भ्यक वेलाए तिथीनुं ग्रहण कोइ जगाए पण देखवामां आवेल नथी. २०१. छतां पण ए सबंधीना अक्षरो जो गीतार्थी बतावे तो ते अक्षरो मने प्रमाण है, तत्वतो तेज गीतार्थी जाणे २०२० आवश्यकवेळाए पर्वतिथी होय तेमां प्रतिक्रमण, ते पर्वतिथी पूर्वीह्रमां उत्पन्नथएली होय के अपराह्मां पण उत्पन्न थएली होय, ते विचार करो. २०३. ते पर्वतिथी अपराह्मां जो उत्पन्न थएली होय तेमां प्रतिक्रमण करवं ते व्याजवी छे. पण पूर्वी-हमां उत्पन्न थएली होय तेमां प्रतिक्रमण करवं ते व्याजबी नथी. ते पण जो सत्रमां कहेल होय. पछी भले ते अजवाळीया पक्षनी होय के अंधारीया पक्षनी होय, ते ते सर्व मने प्रमाण है. २०४. निश्चेथी पहेलो दिवसहीय अने ते दिवसनी रात्रि ते दिवसना पाछल आवनारी जाणवी, ए बीना श्रीजंबुद्वीप-पन्नति, सर्यपन्नति तथा चंदपन्नतिसूत्रोमां कहेल छै. २०५.

२३४

## श्रीसप्तपदोशाख-गुजरातीभाषानुबाद.

ते सत्रपाठ पहेला लखेलज छे, त्यांथी जाणी लेबुं. ते कारण माटे दिवसना अंतमां-समाप्तिमां प्रतिक्रमण करवं, ए मार्ग व्याजबीज छे. माटे पवचन-सिद्धान्तमां कहेल उदयतिथीमां पर्वतिथी आराधवानी रमणता करवी. २०६. ए प्रकारे उद-यतिथी आराधवानो अधिकार समाप्त थयो. अथ साध अने श्रावक प्रमुखोना देवसिय विगेरे पांचप्रतिक्रमणनी क्रिया सुत्रानुसारे सरखी जाणवी, २०७. हवे श्रावकोना प्रतिक्रमणमां जे विशेष छे, ते कहेवाय छे:-इरियावही पडिकमीने धर्मना उपगरण, ग्रुहपत्ती, शरीर प्रमुखनी पडिलेहणा करीने बळी पण इरियावही पडिक्रमवी. २०८. सम्यक्षमकारनी जयणा करवा सार्रं, त्यारबाद वे खमासमण आपीने 'इच्छाकारेण संदिस्सह भगवं सामाइयवयं संदिस्सावेमि, इच्छाकारेण संदि-स्सद्द भगवं सामाइयवयं ठावेमि' २०९. एक नवकार गणवा पूर्वक सामायिकदंडम करेमिभंते उच्चारण करे. पछी आवस्यक कियानी वेळा प्राप्त थएल छे एम जाणीने २१०. आवड्यक किया करवानो काळ पाप्त थए छते पतिक्रमण करनाराओने बेसवानं होतुं नथी, तेथी नजीकमां पाप्त थएल आवस्यक काळथी पराएला बेसवानो आदेश निरर्थक अर्हि मागे नही. २११, काळे करातो स्वाध्याय श्रीजिनमतमांस्रविश्रद्ध कहेल छै, स्त्राध्यायकरवानी अनुज्ञा श्रीजिनेश्वरदेवोए अकाळे करेल नथी. २१२. बेसणे तथा सज्झायना खमासमण आप्या पछी क्रियानुं संभव छे, ए भाव जो गीतार्थी मानताहोय तो

साचुं २१३. ए ए कारणे जो मारी मान्यता श्रीसुत्रविरुद्ध होय तो मार्रु मिच्छामि दक्कडं थाओ, पछी द्वादशावर्त्त वंदन २१४. आपीने पचरुखाण करीने त्यार पछी चैत्य-देववांदीने पछी आचार्य, उपाध्याय अने सर्वेशाधवांदीने प्रतिक्रमण ठाइने अनुक्रमे काउस्सग्गने करे. २१५ बाकीनो विधि देव-सियपतिक्रमणसंबंधी साधु सरखो जाणवो, अने एज प्रमाणे राइप्रतिक्रमणनोविधि जाणवोः व्रतोनुं उच्चारकरीने पछी अनुक्रमे राइपायश्चित्तसंबंधी काउसग्गने करवुं. २१६. प्रथम चैत्यवंदनकरीने पछी पतिक्रमणठावे. ए प्रमाणे श्राव-कोनं देवसिय तथा राइयमतिक्रमण जाणवं. २१७. अने वळी बीज़ं ग्रहपत्ती पांडलेहणा कर्यापछी वे वखत द्वादशावर्त्तवंदन देवामां वे वार मस्तक अने उपरनी कायानी प्रमार्जना करवी. २१८. एवीरीते आखादिवसमां पञ्चख्खाणथी मांडीने आठ वार मुहपत्तीनी पडिलेहणा अने श्वरीरनी ममार्जना पण आठ वारः २१९.अने छ वार रात्रिमां जाणवीः ग्रहपत्ती पडिलेह्या-विना जो वांदणा आपे तो पूर्वसरिओए तेनं प्रायश्चित्त बता-वेल छे. २२०. दृष्टिनिरिक्षण पडिलेद्दणा वारंवार करवी, अने बन्ने काळ पचीश पचीश महपत्तीनी तथा शरीरनी पहिले-हणा करवी. २२१. बाकीना त्रण आवश्यक साधुनी माफक करवा, अने पोतपोताना व्रतना अतिचारो अनुक्रमे करीनेज चिन्तववा. २२२. रुडीरीते आलोबीने त्यारपछी पडिकमीने विश्वद्धि करे, सर्वेप्रतिक्रमणीनुं परमरहस्य ए छे. एम

#### श्रीसप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुवाद

जाणवुं २२३. अहिं गीताथीं मध्यस्थो सूत्रानुसारं दृष्टिराग रहितपणे महेरबानी धारणकरीने जे कहे तेज प्रमाण करवं. अथवा अहिं मध्यस्थ गीताथीं जे कहे, तेज प्रमाण करवुं. माटे सुत्रानुसारे दृष्टिराग रहितपणे कृपाकरी बोलबुं जोइए. अथ उपधाननो आधिकार लखिये छीए-१.अंगप्रविष्ट्रभ्रत अने अंगबाहयश्रुत, तथा वळी आवश्यकश्रुत अने आवश्यक व्यतिरिक्तश्रुत, तेमज कालिकश्रुत अने उत्कालिकश्रुत. २२४. श्रीटाणांगसूत्रमां तथा श्रीनंदीसूत्रमां तेमज श्रीअन-योगद्वारसूत्रमां सुत्रना उपर बताव्या ते छमेद श्रीजिनेश्वरोए कह्या छे. एथी अधिक, ए विना बीजा कोइ पण सूत्र जणाता नथी. २२५. हुं पुच्छुं छुं के पंचमंगलनामे जे महाश्रुतस्कंध. जेना पांचअध्ययन अने एक चूला छे, ते जो होय तो ते कोइ जगाए होवा जोइए पण ते कोइ जगाए प्राप्त थता नथी. २२६. वळी पतिक्रमण श्रतस्कंध अने शक्रस्तव नामे बीजो श्रुतस्कंध, त्रीजो अरिइंतचैत्य अध्ययन, चोथो स्तवअध्ययन, पांचमुं नामस्तव अध्ययन अने छठुं श्रुतस्तव अध्ययन, एम चार अध्ययन अने वे श्रुतस्कंध. २२७. २२८. द्वादशांग गणि-पिटक-आचार्यश्रीनो खजानो बारअंग कहेल हे, तेमां कड जगाए उपरनी वस्तु बतावेल छे, ते गीतार्थी कृपाकरी मने बतावे, तो हे भगवन् ! हुं तेनुं सुखेथी स्वीकार करुं. २२९. माटे सर्वमनोगत कषायनो त्यागकरी मारापर कृपाकरो. कारणके उत्तमपुरुषो नमनार उपर वात्सल्यभाव धारणकर-

## आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रसुरि बन्धमाला पुस्तक ५३ मुं २३%

नाराहोयछे. २३०. उपर जणाव्या एओना उपधान श्रीम-हानिशीथसूत्रमां श्रावकोने उद्देशीने जे कहाछे, ते कारणे श्रावकोने विना उपधाने आवज्यकसूत्रन् भणवं पण नकरपे. २३१. तो पछी आवश्यकना उपधान वह्या नहीय तेओने निश्चेथी आवश्यकनी क्रियाकस्वानं शंकहेबं ? विना उपधाने आवश्यकनी क्रियाकरनारने ज्ञानाचारनी विराधना प्राप्तथाय छे. २३२. अने विपरीत सहहणाए सहहणा करनारने दर्शना-चारनी विराधना थायछे, तेमज निदेषिता रहित सदौषिक्रया करनार चारित्राचारनी विराधना करेले. २३३. आवा कारणे आवश्यकसूत्रना शृद्धउपधान जे करवा योग्य, ते साध तथा श्रावकोए अवस्य करवा जोइए. २३४. कारणके श्रीअनुयोग-द्वारसूत्रमां कहेलछे के:-साधु तथा श्रावके दिवस-रात्रिना मध्यमां जे कारणे अवश्यकराय ते कारणे एनं नाम आवश्यक कहेवाय छे.'' तथा वळी एज सुत्रमां जणावेल छे के:-'' जे आ प्रतिकमणआवश्यकने साधु, साध्वी, श्रावक अने श्राविका बन्ने वखत सांज—सवारे करेंछे. ते लोकोत्तर भावावश्यक कहे-वायछे, केवा थया थका करे, ते बतावे छे:-ते आवश्यकियामां चित्तना उपयोगवाळा, ते आवश्यकक्रियामां मननाविशेष उपयोगवाळा. ते आवश्यकनीक्रियामां श्रभपरिणामरूप लेक्यावाळा, तथा ते आवक्यकनीक्रिया सारीरीते करवामां तिच्चत्तादि अध्यवसाय-भावनावाळा.तथा ते आवश्यकक्रियामां तीत्रभावनावाळा एटले आदश्यकित्रयानी श्रुरुआतथीलड

## श्रीसप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुषाद्

छेवटसधी दरेकक्षणे वधती भावनाना प्रयत्नवाळा, तथा ते आवश्यकियाना दरेक सुत्रोना अर्थमां उपयोगवाळा अने तेनेलड अत्यन्त बखाणवायोग्य संवेगग्रणथी विश्वद्धि पामनारा, ते आवश्यककरवामां यथास्थाने स्थापेलाछे देह, रजोहरण, मुखबस्त्रिका वगेरे जैमणे एवा, तथा आवश्यकनी क्रियावडे भावित करेलछे आत्मा जैमणे एवा, बीजी कोइ जगाए मन, वचन अने कायाने नकरता-न प्रवर्तवता बन्ने काळ जेओ आवश्यकने करंछे, ते लोकोत्तरभावावश्यक कहेवायछे." आवुं सूत्रवचन होवाथी साधु, साध्वी श्रावक अने श्राविकाओने आवश्यक कर्त्तच्य करवानुं उपदेश करेल छे ते आवश्यकन् करवुं सूत्रपाठविना कोइरीते थ**इ**सकतुं नथी. ते सुत्रपाठ गुरुकुपाथी पाप्तथाय एम अनुयोगद्वार सुत्रमां प्रसिद्ध छेः ते सूत्रवाचना सम्रहेशविना संगत थाय नही, अने सम्रदेश उद्देशपूर्वकहोय एम श्रीअनुयोग-द्वारसूत्रमां देखाय छे. ते आपकारेः-"ज्ञान पांच प्रकारना कह्या छे तेआ, पतिज्ञान, शुरुज्ञान, अवधिज्ञान, मनपर्यवज्ञान अने केवलज्ञान, तेनां चारज्ञान थापवा योग्यले, तेओने स्थापीने कारणके तेओना उद्देश, समुद्देश अने अनुज्ञा होती नथी, परंतु श्रुतज्ञानना उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग प्रवर्ते छै. ते शुं अंगप्रविष्ठ शुतज्ञानना ? उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग पवर्ते छे ? के अंगवाहिरसूत्रना उद्देश, सम्म-देश अनुक्षा अने अनुयोग पवर्ते छे ? अंगप्रविष्टसत्रका

# आचार्यश्रीब्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २३९

उद्देश. सम्रद्देशादि पवर्तेछे अने अंगवाह्यस्त्रना पण उद्देश, सम्बद्देशादि पर्वर्ते छे. जो अंगबाहिरसूत्रना उद्देश सम्बद्देशादि पर्वते हे, तो भ्रं आवश्यकसूत्रना उद्देश, समुद्देशादि पर्वर्त हे ? के आवश्यकसूत्रथी जुदाना उद्देश, समुद्देशादि पवर्ते छे ? आवश्यकसूत्रना पण प्रवर्ते छे अने आवश्यकसूत्रथी जुडा सुत्रना पण पवर्ते छे. जो आवश्यकसुत्रना उद्देश. सम्रदेशादि पवर्ते छे. तो श्रं सामायिकना, चडविसत्थाना, वंदनना पडि-कमणानाः काउस्सग्गना अने पचरुखाणना उद्देश, सम्रद्देशादि प्रवर्ते छे ? उत्तरः-ए सर्वे छए आवश्यकोना उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा अने अनुयोग पर्वतिष्ठे. " आवुं सुत्रवचन होवाथी आवस्यकना उद्देश. सम्रहेश अने अनुज्ञाविना सूत्र भणाय नहीं. उद्देश, सम्रदेशादिना अर्थ आ प्रमाणे छे:-आ अध्ययनादिक तमारे भणवं, आवं जे गुरु वचन, ते उद्देश, ते अध्ययनादि सारीरीदेभणोने श्रीगुरुने संभळावे त्यारे गुरुकहे एमां स्थिर परिचय करो ! आबुं जे गुरुवचन ते सम्बद्देश अने ते प्रमाणेकरी गुरुने निवेदनकरे त्यारे गुरुकहे के रुडीरीते धारणकरो अने बीजाने पण भणावो आवुं ग्रुरु वचन ते अनुज्ञा कहेवाय छे गुरुना उपदेशनी पाये अपेक्षा राखनार अतज्ञान छे. आ बीना विशेषे श्रीअनुयोगद्वार-इत्तिमां छे. एम मुत्रना अनुसारे साधुओ तथा श्रावकोने आवश्यकनी किया सर्खी छे अने ते आवश्यकसूत्रना उप-धान पण सरखा छै. २३५. अने श्रीमहानिश्रीयसूत्रमा जे

## श्रोसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुवाद.

उपधान कहेला छे ते आवश्यकसूत्रना उपधान नथी. माटे उपधान विना श्रीआवश्यकसृत्रनुं भणवुं अने श्रीआवश्यक-सूत्रनीकियाकरवी, ते योग्य नथी. २३६. श्रीआवश्यक सूत्रमां धर्मराजाना इस्तीस्कंधसरखो एक श्रतस्कंध छै अने वळी एकसरगवाळा तेनाज छ अध्ययनो छै. २३७. ते आवश्य-कसूत्रना छए अध्ययनना उद्देश, समुद्देश अने अनुज्ञानीकिया छ दिवसमां थाय छे अने सातमे दिवसे श्रीआक्ट्रयकसूत्रना श्रुतस्कंधनो समुद्देश करवोः २३८. अने आठमां दिवसे श्री श्रुतस्कंधनी अनुज्ञासंबंधी क्रियाकरवी एवीरीते श्रीआव-क्यकसूत्रना आढ दिवसना उपधान साधु तथा श्रावकने सरखा कहा छे. २३९. कारण के श्रीजिनागममां श्रीजिने-श्वरदेवोए साधु तथा श्रावकोने अन्तेवासी, उग्रा अने उग्रवि-हारी ज्ञब्दोएकरी परुष्या छे. २४०. तथा श्रीसातमोअंग उपाशकदशांग पांचमोअंग श्रीभगवतीसृत्र अने श्रीआचारांग-सूत्रने विषे पासत्थादिक पण साधु, श्रावक बन्नेने 'वसुवा अणुवसुवा'विगेरे शब्दोथी सरखा कह्याछे, एपण विचारो,२४१. ' हे आर्यो !' आवा आमन्त्रणेकरो गुरुए साधु तथा श्रावक बन्नेने एक बब्दे आमंत्रण करेल है. साधुओना पाछल चाळनारा तेथी देशयतनावाळा एवा श्रावको छे एम तमे जाणो ! २४२. वळी श्रावकना उपधाननो विधि जे श्रीमहा-निश्नीथसत्रमां कहेल छे, ते कोइक मानेछे अने कोइक घणा नथी मानताः २४३. श्रीआवश्यकसूत्रसंवंधी आठ-

# आचार्यथी ञातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं २४१

दिवसनी उपधानक्रियाने प्रथम चारित्रिया ' सामायिक चारित्र नानी दीक्षाने धारणकरनारा सर्वेग्रनिओने श्री आवश्यकसूत्रना योगनी क्रिया करवी, ते सर्वगच्छवासीओ सुप्रमाण मानेछे. २४४. श्रीआवश्यकसूत्रनो उपधानविधि बीजो कोइपण देखातो नथी, जेथी आचार्यों तो सदा निर्ति-चार शिक्षाने करे छे. २४५. कहूं छे के:-" काळे भणवुं, विनयपूर्वक भणवुं, बहुमानपूर्वक भणवुं, उपधानवहीने भणवुं, जेनी पासे भणीए तेने ओछववुं नहीं, शुद्ध अक्षर, शुद्ध अर्थ अने बन्ने शुद्धशीखवा ए आठ प्रकारनो ज्ञानाचार छे ?'' आबुं बचन होवाथी. श्रावकोने पण उपधानकिया विना आवस्यकसूत्रनुं भणवुं, तेथी ज्ञानाचारना अतिचार लागे. वळी पतिक्रमणसूत्रमां श्रावकना अधिकारे कहेल हे के:-'' वे पकारनां वंदन, बार प्रकारनां व्रत, बे प्रकारनी ( ग्रहण अने आसेवनारुप ) शिक्षा, त्रण गारव, चार संज्ञा चार कषाय. त्रण दंह, त्रण गुप्ति, पांच समिति अने 'च' शब्दे श्रावकनी अगियारपहिमा तेनेविषे जे अतिचार लाग्यो होय तेने हुं निदुंछुं. '' आबुं वचन होवाथी. जो श्रावकोने **उपधानविना श्रीआवस्यकसूत्रनुं अध्ययन-भणवुं** गीतार्था स्वीकारता होय अथवा उपधानविधिए करी शुद्ध आवश्यक-सूत्रनी क्रियाने स्वीकारता होय तो तेम प्रमाण करोए. हवे मुनिओने उपदेशनो विधि बतावेछे:-पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अने उत्तर विचरता शुद्धभ्वनि शुद्धधर्मनो उपदेश करे २४६.

अहिंसा लक्षणवाळो धर्मे श्रीजिनेश्वरदेवोए व्यवहार-निश्चयथी अने उत्सर्ग-अपवादथी कहेल हो. २४७. विधिवाद उपदेशमां सावध-पाप न होय एम आगममां कहेलछे अने अपवादमां विधि न होय. ए यथास्थित उपदेश जाणवो. २४८. उत्सर्ग-मार्गमां विधि छे एम अतीतकाळना अनन्ता श्रीजिनवर-देवोए कहुं, भविष्यकाळना अनन्ता कहेशे अने वर्तमानकाळमां विचरता संख्याता श्रीजिनेश्वरदेवो कहे छे. २४९० भृत अने भविष्यकाळना अनन्ता अने वर्तमानकाळमां विचरता संख्याता जिनेश्वरोनो उपदेशविधि तेनी वानगी लखिए छीए. श्रीआवश्यकसुत्रमां जणावेलछे के:-" हे भगवन्! हुं सामाध्कि कर्रुं छुं, सर्वेपापकारीव्यापारनो त्याग कर्रुं छुं, जावजीव सुधी त्रिविधे त्रिविधे मन. वचन अने कायाए हैं न करुं, न कराबुं अने बीजा करता होय तेने हुं सारुं न जाणुं, तेमां जे कांइ दोष लागे तेनाथी हेभगवन्! हुं पाछो इदुंछं, पोताना दोषनी निन्दा करुंछं, श्रीग्रुरुनी साक्षीए गर्ही करुंई अने पापकारी मननो त्याग कर्रुंछुं. " तथा श्रीदश्चवैकाल्ठिकसूत्रना चोथा अध्ययनमां कहेल है के:-'' हेभगवन् ! पहेला महाव्रतमां जीवोना प्राणनो नाज तेथी विराम पामवं. हेभगवन ! सर्वे प्राणातिपातने हुं पचखं छुं, ते सूक्ष्म अने बादर, ते अकेक बे प्रकारे छे त्रस अने स्थावर, सुक्ष्म त्रस कुंथुंआ विगेरे, सुक्ष्म स्थावर वनस्पति विगेरे. नादर त्रस गाय विगेरे, बादर स्थावर

## आचार्यभीत्रातृचंद्रसृरि प्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं २४३

पृथ्वी विगेरे ए पाणीओने हुं जाते नाश करुं नहीं, बीजानी पासे नाश कराबुं नहीं, कोइ प्राणीओने नाश करतो होय तेने हुं सारुं जाणुं नहीं. जावजीव सुधी त्रिविधे '' इत्यादि, एज प्रमाणे श्रीआचारांगसूत्रमां पण बतावेल है. दळी श्रीदश्चवैकालिक सुत्रना आठमा अध्ययनमां जणावेल छे के:--''पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु अने वनस्पति ए पांच एके-न्द्रियकाय अने त्रसप्राणी बेइन्द्रियादिक ए जीवो छे, एम श्रीमहावीरमञ्जूष कहेल छे. २ माटे प्रथ्वीविगरे जीवोनो नाज्ञ न थाय एवा मन, वचन अने कायाए अहिंसक व्यापार-बाळा साधुओए थवुं जोइए, एम वर्ते ते संयत कहेबाय, ते सिवाय नही ३ " वळी श्रीपाक्षिकसूत्रमां कहेल छे के:-"ते पाणातिपात चार पकारनं कहेल छे. द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी अने भावधीः द्रव्यथी पाणातिपात छजीवनिकायनेविषे. क्षेत्रथी प्राणातिपात सर्वेलोकनेत्रिषे, काळथी प्राणातिपात दिवसमां अथवा रात्रिमां अने भावथी पाणातिपात रागे करी अने देवे करी" इत्यादि एम सुत्रवचन होदाथी तथा श्री उत्तराध्ययनसूत्रना आठमा अध्ययनने विषे कहेल है के:-''लोकमां रहेला जीवो त्रस अने स्थावर, तेओनो नाश न करे मन, वचन अने कायाए करी निश्वेथी, तेमज नाज्ञ न करावे अने नाश करताने भछं न जाणे. ? '' तथा बळी एज सुबना चोवीसमा अध्ययनमां कहेल छे के:-''संरंभ-बीजाने नाश करवामां समर्थसंकल्पने सूचनकरनार शब्द-वचन ते. समा-

रंभ-बीजा जीवोने संताप उत्पन्न थाय तेवुं वर्त्तन ते, तेमज आरंभ एटले पाणीओना पाण जेमां नाज थाय एवा व्यापार ते. व्रतमां अथवा वचनमां प्रवृत्तिकरनार मुनि यतनावान् संरंभ, समारंभ अने आरंभथी निवृत्ति पामे अर्थात तेओनो त्याग करे १" बळी श्रीऔपपातिक उपांगसूत्रमां तथा श्रीठा-णांगसूत्रमां अने श्रीविवाहपन्नतीअंगसूत्रमां जणावेल छे के:-" सातप्रकारे विनयछे, ते आ,-ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय, मनविनय, वचनविनय, कायविनय अने लोको-पचारविनयः 'तेमां पण वचनविनय केटला प्रकारे ? वचन-विनय वे प्रकारेछे, एक वखाणवायोग्य वचनविनय अने बीजो नहि वखाणवालायक वचनविनय, तेमां नहि वखाणवा लायक वचनविनय केवा स्वरुपे छे ? जे वचन पापकारी होय, क्रियासहित होय, कठण, कडबुं, निद्रुर, कर्कश होय, आस्रव करनार, भेद करनार, परिताप करनार, उपद्रव करनार अने जीवने उपघात करनार होय तेवां वचन उच्चारण करे. ते अप्रशस्तवचनविनय जाणवोः हवे वखाणवायोग्य वचनविनय कोने कहिए? ते कहेछे:-अमगस्तवचनविनयथी उल्रहं ते प्रश्नस्तवचनविनय जाणवो ?? वळी श्रीआचारांगसत्रना प्रथम अध्ययन-श्रह्मपरिज्ञानामे. तेना प्रथम उद्देशामां जणाव्यं हे के:-" मन, वचन अने कायाना व्यापारमां भगवान वीरवर्द्ध-मानस्वामीए वे प्रकारनी परिज्ञा बतावेलले. एक जपरिज्ञा अने बीजी प्रत्याख्यानपरिज्ञा, तेमां ज्ञपरिज्ञाए 'पापकारी

## आचार्यश्रीश्रातृचंद्रसृरि प्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २४५

व्यापारथी कर्मनो बन्ध थायछे' एम भगवाने जणावेल्छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाए 'पापकारी मन, वचन अने कायाना व्यापार, तेमज कर्मवंधना हेत्रुओ त्यागकरवा' एमकारे भगवाने बतावेलके. वळी असार, विजलीनी माफक चंचल अने बहुकष्ट्वाळुं एवं जीवितव्य जीववामाटे जीवो आरं-भादिकक्रियामां प्रवृत्ति करेछे. तथा वंदावा, पूजावा मना-ववामाटे कर्मी करेछे. तथा जन्म-मरणथी छटवामाटे पाप-कारी कियामां प्रवृत्तिकरता जीवो कमेनि ग्रहण करेछे. तथा दुःखनो नाज्ञ करवामाटे अने पोतानी रक्षा करवासार्रु आरंभोने पोते सेवन करेहे. बीजाओ पासे करावेहे अने बीजा करता होय तेने सारुं माने छे. एवा प्रकारना सर्वछोकने विषे कर्मना आरंभो जे थइ रह्याछे, ते जाणवाजोइए अने जैने ए कर्मना आरंभो लोकनेविषे जाणवामां आव्याछे खरेखर ते म्रनि परिज्ञातकर्मवाळा जाणवा. एम श्रीसुधर्मस्वामी श्रीजंबुस्वामी नामना शिष्यने कहे छै. " वळी श्रीआचारां-गसत्रना पहेला अध्ययनना सातमा उद्देशानेविषे जणावेल छे के≔'' एकज पृथ्वीकायविगेरेना आरंभमां प्रवृत्त थएला जे जीवो बधी जीवनिकायना आरंभथी उत्पन्न थएला अने श्रहणकराता कमेथि। ते जीवो बंधाय हे एम जाणोः कारणके एक जीवनिकायसंबंधी आरंभ शेषजीवनिकायना नाश विना करी शकातो नथी माटे कोण तेवा कमे प्रहण करेछे? जे निश्वयथी परमार्थज्ञान विनाना ज्ञानादि पांचपकारना आचा-

## श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुषाद.

रमां रमता नथी, ते पृथ्वीकाय विगेरेना आरंभथी ग्रहण कराता कमेविडे वंधाय छे. हवे कोण ज्ञानादि आचारमां नथी रमण करता ? ते कहेछे, पृथ्वीकायविगेरे जीवोना आरंभमां प्रवृत्त थएला छतापण संयमने कहेनाराछे एटले अमे संयमी छीए एम पासत्था अने शाक्यादि बोलनाराहे अने आरंभ करे छे. ज्ञानादि आचारथी रहित छे. ञ्चा कारणथी एम कहे छे? ते जणावे छे:-स्वच्छंदपणाने लइ, पूर्वापर विचार कर्या विना विषयना अभिलापवाला आरंभना मार्गने सेवता असंयमी छता अमे संयमी छीए एम बोले छे, वळी अत्यन्तविषय-भोगनी आशक्तिवाळा तेओ छे. एवा तेओ शुं करे छे? आरंभ -पापकारीक्रियामां तत्पर थएला आठ प्रकारना कमेनि संगने करनारा अने तेथी संसारमां रखडनारा थायछे. छ कायजीवोनो घातकरनारा अनेक प्रकारना कहा पामेछे. हवे जे आरंभथी निष्टत थएल होय ते केवो होय ते जणावे छे:-छकायजीवना हननथी निवृत्त थएल ते सम्यक्त्वादि भावलक्ष्मीवान अने सर्वप्रकारे मेलवेल छ विशेष बोध-ज्ञान जैणे एवो आत्मा आलोक अने परलोक विरुद्धकार्य 'अक-रणीय' अकार्यकरवा पयत्न करतो नथी, शुं ते अकार्य?. ते जणावे छ. 'पापकर्म' नीचे पाडनार जे कर्म. ते पापकर्म– अढारपापस्थान, तेने पोते करे नहीं, बीजाओनी पासे करावे नहीं अने बीजा करता होय तेने सार्ह जाणे नहीं, ते अढार-वापस्थानोने जाणनार मेथावी-मर्यादावान पोते छजीवः

## आचार्यश्रीबातृचंद्रस्रि बन्धमाला पुस्तक ५३ मुं २४५

निकायनो आरंभ करे नही, बीजा पासे करावे नही अने करता होय तेने सारुं जाणे नहीं. जेने ए छजीवनिकायशास्त्र समारंभो सारीरीते जाणवामां होय छे, ते खरेखर 'झपरिज्ञा' वडे जाणीने अने 'प्रत्याख्यानपरिद्वा' वर्डे तेओनो त्याग करनार मुनि जाणवोः ते सर्वथा पापकर्मीथी विराम पामेलो होय छे. एम श्रीसधर्मस्वामी पोताना शिष्य श्रीजंबूने कहे छे के जेम श्रीवीरपरमात्माए कहा तेम ह कहुं छुं, " वळी श्री आचारांगसूत्रना बीजा अध्ययनना बीजा उद्देशाने विषे कहेल छै के:-''आत्मानुं वल-शक्ति ते मने थाओ' एम घारीने अनेक मकारना उपायोवरे आत्मपुष्टिनामाटे आलोक तथा परलोकना-हितने नाशकरनारी तैवीतेवी क्रियाओ करेछे, पंचेंद्रिय विगेरे जीवोना घातमां प्रवृत्ति करे हैं। स्वजननं बल मने प्राप्त थरो तेना माटे. वळी मने मित्रबलनी पाप्ति थरो, जैथी आपदा-अोने हुं सुखेथी दूर करी शकीश. वळी भविष्यमां बलनो मने पाप्ति थशे अथवा मने देवशक्ति पाप्त थशे ए हेत्रए तेवा प्रकारनी क्रियाओं करें अथवा मने राजवल पाप्त थहीं माटे राजानी सेवा करे अथवा चोरोना गाममां वसे, चोरोनी साथे संबंध राखे के जेथी मने चोरीथी आवेल द्रव्यनो भाग मलशे. अतिथि एटले निस्पृह पुरुषोनं बल मने थशे एम धारीने तेओनी सेवा करे. एवीरीते कृपणनी तथा श्रमणनी सेवा करे आत्मबलनेमाटे अनेक जीवोनी हिंसा-आरंभने आदरे. एम पूर्वीक्त अनेक मकारना कार्य-पयोजनने छड्ने

#### श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुवाद.

जेथी प्राणीओ हणाय 'तेनुं नाम दंह ' तेवा दंहने ग्रहण करे, पोताना बलने वधारवा खातर जो हुं तेम नहीं करुं तो मने बलनी प्राप्ति नहीं थाय एम विचारीने अथवा भयथी परमार्थने नहीं जाणता ' पापथी हुं छुटीश एम धारीने अनेक प्रकारना पाप आचरण करे अथवा द्रव्यनी आञ्चाथी मोहित-मनवाळा भविष्यमां हुं सुखी थइक्ष एम धारीने अनेक आरंभ करे- ते बधुं 'ज्ञपरिज्ञाए' जाणीने 'मत्याख्यान परिज्ञाए' तेनो त्याग करीने 'मेघादी '-जाणेल छे हेय उपादेय जेणे एवो थयो थको उपर बताव्या ते कारणे जीवोनो घात पोते न करे. बीजा पासे न करावे अने कोड़ करतो होय तो तेने पण सारू न जाणे ए मार्ग आर्योए एटले तीर्थंकरोए कहेल है. " वळी श्रीआचारांगसूत्रना छठा अध्ययनना पांचमा उद्देशानेविषे जणावेळ छे के:-" रागादिरहित सम्यकदृष्टि आत्मा सर्वेत्र जीवलोकने द्रव्यथी जाणीने दयाळु थयोथको धर्मनो उप<mark>देश</mark> करे. क्षेत्रथी पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अने उत्तर विगेरे दिश्वी विभागोने जाणीने कृपाळ धर्मनो उपदेश करे, काळथी जाव-जीवसुधी अने भावथी राग-द्वेष विनानो थयोथको धर्म उपदेश करे. ते आ प्रमाणे:-' सर्वजीवो दुःखना द्वेषी छे अने सुखनी इछावाळा छे. माटे पोताना सरखा जाणवा ' एम धर्मने कहेतो द्रव्य, क्षेत्र, काळ अने भावे करी अथवा आक्षे-पणी. विक्षेपणी. संवेदिनी अने निर्वेदिनीकथा विशेषेकरी अथवा प्राणातिपात विगेरेनी विरती विशेषेकरी धर्मनो विभाग

## आवार्यभीत्रातृचंद्रसूरि बन्थमाला पुस्तक ५३ मुं. २४९

करी कहे. तेमज व्रत अने क्रियाना फलने वखाणे. आगम-सिद्धान्तनो जाणनार, भावथी उठेला-तत्परथएला सुनिओने विषे धर्मने कहे अथवा श्रावकोने, धर्मसांभछवानी इच्छा-वाळाने अने गुरु विगेरेनी सेवा-भक्ति करनाराओने, संसार सागरनो पार पमाडवाने धर्मनो उपदेश करें केवा प्रकारनो धर्म कहे ? ते बतावे छे-शांति-अहिंसा तथा विरतिना स्वरूपने कहे.तथा उपश्रम एटले क्रोधने जीतवो अने निर्देति-निर्वाणना स्वरूपने कहे, तथा शीच-चित्तनी पवित्रता तेम शर्छता, तथा कोमलता अने लाघवता एटले बाह्य तेमज अभ्यंतर परिग्रहना त्यागथी उत्पन्न थनार गुण एमनं स्वरूप जेम आगममां कहेल होय तेम फेरफार कर्या विना समजावे. हवे कोने समजावे ते कहे छै:-सर्व पाणीओने-दश्चविध पाणने धारणकरनारा संब्रि-पंचेंद्रियोन तथा सर्वभृतोने-मुक्तिगमन योग्य जे भन्य थएला होय तेओने तथा सर्वजीवोने-संयम जीवितेकरी जीवता अने जीववानी इच्छावाळाओने तथा सर्व सन्वोने-तिर्यंच, मनुष्य अने देवो जे संसारमां क्लेशने पामता अने दयाना पात्र एवा-ओने क्षमादिक दश्चमकारना धर्मने स्वपर उपकारनामाटे धर्म-कथा करवानी लब्धिवान साधु उपदेश करे. ते पण पूर्वीपर विचार करीने जे पुरुषने जे कहेवायोग्य धर्म होय ते मर्यादाशी कहे. पूर्वीपर विचार करनार साधु धर्मना स्वरूपने कहे तो पोताना आत्मानी आञ्चातना न करे, बीजानी आञ्चातना न करे, बीजा प्राण, भूत, जीव अने सत्त्वनी आञ्चातना न

#### श्रीसप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुबाद.

करे. तेज मुनि पोते आशातना नहीं करनार, बीजाओपासे नहीं करावनार अने आज्ञातना करता होय तेने पण सार्ह नहीं जाणनार होय छे, मतलब के पाण, भृत, जीव अने सच्चोने पीडा न उत्पन्न थाय एवीरीते धर्मने कहे. ते अना-शातक मुनि पीडापामता पाण, भूत, जीव अने सच्च तेओनी आज्ञातना नहीं करनार जेम 'असंदीण ' नामनो द्वीप जीवोने श्वरण थाय छे तेम ते पण महाम्रनि श्वरण थाय छे '' तथा वळी श्रीआचारांगसूत्रना सातमा अध्ययनना पहेला उद्देशामां जणावेल छे के:-'' अहिं मनुष्यलोकमां केटलाक अशुभ कर्मैना उदयवाळाने मोक्षसंबंधीकिया सारीरीते जाणवामां आवेल न होवाथी ते आलोकमां आरंभी बने हे अने आरंभ जेमां रहेल छे एवा धर्मने कहेनारा तथा कहेवरावनारा बने छे, आ प्राणीओने हणो एम बीजाओनी पासे हणावता अने हणताने सारुं जाणता एवा होय हो. " तेमज वळी श्रीआचा-रांगसूत्रना बीजा श्रुतस्कंधना चोथा अध्ययननेविषे कहेल्छे के:-'' हवे चार पकारनी भाषाओं छे. तेमां न बोखवा योग्य भाषाने न बोले ते साधु जाणवा. चारभाषानां नाम-सत्यभाषा, असत्यभाषा, सत्यमुषा अने असत्यामुषा. आ चारभाषा-मांथी असत्यभाषा तथा सत्यमृषाभाषा साधुने ए वे भाषा बोल-वानी नथी. सत्यभाषा पण आवी होय ते न बोलाय, ते जणावे छे-पापकारी होय, अनर्थदंडवाळी होय. ओछा अक्षरवाळी होय, चित्तने उद्देग करनारी होय, निष्ठर-हाकोटावाळी होय.

## आचार्यश्रीभ्रातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. २५१

मर्भने उघाडनारी होय अने आश्रवने करनारी होय, छेदन भेदन करनारी होय अने प्राणीओनो घात करनारी एवी सत्यभाषा पण मननी साथे विचारकरी साधु न बोले." तथा श्री स्यगडांगस्त्रनेविषे जणावेल छेके:- ''क्षमादि दशभेद स्वरूप जे धर्म तेनी परूपणा पते शंका करे मृढताना कारणे अने पापना साधनभूत जे आरंभो ते प्रते जेमने शंका पण थती नथी, ते सद्विवेकरहीत जाणवा तैमज सत्शास्त्रना बोध रहीत जाणवा. ११ अथ अज्ञानवादिमतना कहेला कहेल क्रियावादि दर्शन एटले क्रिया छे तेज प्रधान मोक्षनं अंग छे ए प्रकारे कहेवाना स्वभाववाळा ते क्रियावादी जाणवा, तेओनुं जे दर्शन-आगम ते क्रियावादिदर्शन जाणवुं, ते क्रियावादिओ केवा छै ? ज्ञानावरण्यादिकर्भना विचारथी शुन्य अविज्ञानादिथी वृद्धिपामेला चारपकारना कर्मबन्धने इच्छता नथी, तेथीज कर्मनी चिन्तारहित तैमनं दर्शन हे. तेने लड़ने संसारनी दृद्धि करनारा है पण संसारना नाजक तेओ नथी. २४ तेज जीव अने तेज जरीर आदिने कहेनारा, गोशालकना मतने अनुसरनारा अने त्रैरा-श्चिक, ए रागद्वेषादिकथी पराभव पामेला छे, शब्दादिविषयथी अथवा प्रबल महामोहथी उत्पन्न थएल अज्ञानथी पराभव पामेला छे, एम तुं हे शिष्य जाण! एवा ए मतना आग्रहीओ असत्य उपदेशमां प्रवर्त्तेला होवाथी कोइना शरणभूत अथवा रक्षाकरवामां समर्थ थइ अकता नथी, कारणके ते बालकनी

२५२

## श्रीक्षप्तपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुवाद

माफक सत् असत् विवेकथी रहित होवाथी, बोले कंड अने करे कंइ, पोते अज्ञानथी घेराएळा तथी बीजाओने पण अ-ज्ञानी बनावनारा एवा छतापण पोताना आत्माने पंडित माननारा तेओ छे. धनधान्य-स्वजनादि-संयोगने छोडीने अमे पत्रजित थया छीए एम ग्रहस्थपणामांथी निकलीने फेर परिग्रह आरंभमां आसक्त थएला गृहस्थोनी जेम पचन-पा-चन, खांडबु, पीसबुं विगेरे पापकारी व्यापारना उपदेशने करनारा तेओ थाय छे, अने पांचसुनाना व्यापारवाळा गृह-स्थनी जैम पोते पट्टित करनारा थाय छे. १ वळी १ सत्य, २ असत्य, ३ सत्यमृषा, अने ४ असत्यामृषा आ चारप्रका-रनी भाषामध्ये त्रीजी सत्यमृषा के जैमां कंइक सत्य छे अने कंड़क असत्य छै, जैम कोइ नगरमां 'दश छोकरा जन्म्या अथवा मुआ' एम बोल्ये छते न्यूनाधिक थएछते संख्यामां फेरफार थवाथी सत्यमृषापणुं थवाथी जीव भवान्तरमां तेवा ढोषथी उत्पन्न थएला कर्मेकरी पीडा पामेळे, अथवा आज भवमां पश्चात्ताप करनार थायछे. ज्यारे मिश्रभाषा दोषभणी थायछे तो बीजी असत्यभाषानं तो कहेबुंज शुं ? तेमज पहेली सत्यभाषा पण जे पाणीओने दुःख उत्पन्न करे एवा दोष-वाळी ते पण न बोलवी, चोथी असत्यामृशाभाषा जे ज्ञानी-ओए न बोलवानी कहेलीछे ते पण न बोलवी. सत्यवाणी पण जे हिंसावाळी होय जेम 'आ चौर छे माटे एने मारो' 'आ क्यारामांथी घास काढीनाखो ' 'आ बळद जोडवा

## आचार्यश्रीभातृचंद्रस्रि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं २५

लायक थयाडे ' अथवा जे वाणीने लोको पण छानी राखे छै तेवी वाणी न बोलबी आ आज्ञा, आ उपदेश श्रीभगव-न्तोए कहेल छे. '' ए प्रकारे उपदेश करवानो अधिकार बतावेल हे. वळी श्रीआचारांगसूत्रना चोथा अध्ययनना बीजा **उद्देशाने** विषे कहेलछे के:-''जे हुं कहीश ते दिव्यक्षानथी अमोर जोरलछे जाणेलछे ते कहीश अथवा अमारा पूज्य श्रीतीर्थंकरोए आगममां फरमावेलछे अथवा अमारा गुर्वा-दिक पासेथी अमोए जे सांभळेल छे अथवा अमारा ग्रहओ अथवा शिष्योए ते बीना स्वीकारेल छे युक्तियुक्त होवाथी. अमने अने अमारा तीर्थंकरोने ते व्याजवी लागेले अथवा तन्त्रभेट पर्यायेकरी अमोए तथा अमारा तीर्थंकरोए पोतेज विशेषेकरी जाणेल है परोपदेशथी नहीं. आ नोचे जणावेल बीना उंचे. नीचे. तिर्छे सर्वेदिशीओमां सर्वेपकारे प्रत्यक्षादि प्रमाणे करी. मननी एकाब्रहताएकरी अमोए अने अमारा पुज्यतीर्थेकरोए विचाराएल छे. श्रं विचाराएल छे ? ते जणावेछे -सर्वेपाणिओ,सर्वजीवो, सर्वभूतो अने सर्वसन्त्रो ते हणवायोग्य छे, हणाववानी आज्ञाकरवायोग्य छे. पकडवायोग्यछे, परिताप उत्पन्न करवायोग्यले. उपद्रवकरवायोग्य हे अथवा हिंसाकरवा योग्यछे एमां कोड जातनो दोष नथी एम जाणे छे. बळी धर्मनी विचारणामां पण एम जाणे छे के-यज्ञादिकमां पशुवध छे ते दोष करनार, पापनुं अनुबंध करनार नथी. एम केटलाक पाखंडीओ धर्मविरुद्ध, परलोक विरुद्ध भाषण करेंछे.

#### २५४ श्रीसप्तपदीशाख-गुजरातीभाषानुवाद.

ते आ-तेमनो उपदेश पापने वधारनार जीवोने नाशकरनार करकर्मीजीवो अनार्यलोकोनं ए उपदेशवचन छै. तेमां जे आर्यजीवो छे ते तो एम बोले छे. जे हमणां कर्षे ते सार्र जोवाएल नथी, तमाराथी के तमारा देवोथी, तमारा गुरुओ के तमारा देवो पासेथी तमोए सारुं सांभर्युं नथी, तमारो के तमारा देवोनो ए अभिमाय सारो नथी, तमारो के तमारा देवोनं विशेष जाणपणुं सारुं नथी, सर्वप्रकारे विचार्या विनानं छे बळी तमो जे आम कहोछो, भाषण करोछो, परूपणा करोछो के सर्व पाण भूत, जीव अने सन्त्रोने हणवा, मारवा विगेरेमां दोष नथी अने यज्ञादिक-पाणिओना नाजकारक अनुष्टानमां पाप-दोष नथी एवा तमारा वचन धर्मविरुद्ध अनार्य सरखां वचन छे. अमे तो वळी जेम धर्मविरुद्धवाद न थाय तेम कहिए छीए, भाषण करीए छीए, परूपणा करीए छीए के सर्वे पाण, भूत,जीव अने सस्त्रोने हणवा नहीं, पोडवा नहीं, परिताप उपन करवो नहीं विगेरे, एम एवो उपदेश करीए छीए. तेथी अहिं दोष नथी. अने ते आर्थवचन छे.'' वळी श्रीसुत्रकृतांगसूत्रना सातमा अध्ययननेविषे जणावेल छे केः-''वनस्पतिकायनी उत्पत्तिने अथवातेनी द्रद्धिने अथवा बोज-फलने विनाश करता हरितकायने जे छेदन करेछे ते कर्मने करनार यहस्थ होय के दीक्षित होय पण ते खरेखर परमा-र्थेथी विचार करवामां आवे तो तेओ परोपघात करता पोताना आत्मानेज दंडेछे. आलोकमां हरितकायने छेदनकरनार

# आचार्यश्री भातृचंद्रसृरि ग्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं. २५५

अनार्यधर्मी कहेल है. बीज विगेरे वनस्पतिकायनी हिंसा करेछे ते अनार्य जाणवा ९" वळी श्रीसत्रकृतांगस्त्रना अग्यारमा अध्ययननेविषे जणावेलछे केः-''धर्मश्रद्धावाळाओना गाम-नगरोनेविषे रहेवाना स्थानो होय छे. ते स्थानने आश्रय करनार कोइ धर्मेपिदेशयी के धर्मनी श्रद्धार्थी अथवा धर्मबुद्धिथी कुवा तलाव खोदाववा विगेरेनी क्रिया करनार एम पूछे के आ करवामां धर्म छे के नथी ? एवीरीते पूछाएछते, तेना आग्रहथी के भयथी पाणीओना नाज्ञने सारुं जाणे नहीं, केवो थयोथको साधु मन, वचन अने कायाएकरी ग्रप्त अने पोताना आत्मानी रक्षा करनार तथा जितेन्द्रिय सावद्य अनु-ष्टानने सारुं माने नहीं. १६ कोड राजा विगेरे पुछे के क्रवा खोदाववा विगेरेमां प्रण्य छे के नथी? एवी वाणी सांभ-ळीने साधु पुण्य छे एम न बोले, तेमज पुण्य नथी एम पण न बोले बने प्रकारे महाभय समजीने, दोषना हेत्रपणाने लड़ने तेनुं अनुमोदन न करे, मौन रहे. १७ शा माटे 'पुण्यछे' एम न बोले ? ते बतावे छे-अन्नपाणी आपवामाटे आहार अने पाणी छे, आहार पचन पाचनादि क्रियाथी अने पाणी कुवा विगेरे खोदवाथी पाप्त थाय हे, ते क्रियामां त्रस-स्थावरजीवो हणाय छे, तेथी तेओनी रक्षाना माटे तथा साधु पोताना आत्मानी रक्षाना कारणे जितेन्द्रिय एवी तमारा अनुष्टानमां 'पुण्यछे' एम न कहे. १८ जो एम होय तो 'पुण्य' नथी एम कहे, तेम पण न वोले, ते जणावे छे-जे जीवोने माटे तेवुं अन्न-

#### २५६ श्रीसमपदीशास्त्र-गुजरातीभाषानुवाद.

पाणी विगेरे धर्मेबुद्धिथी प्राणीओनो नाशकरो उत्पन्न करे छे. तेनो निषेध करवाथी ते आहारपाणीना अर्थीने माटे लाभान्तराय थाय, तेथी तेओ पीडापामे, माटे कूवा खोदवा विगेरे कार्योमां पुण्य नथी एम पण मुनि न बोले. १९ वळी पण एज अर्थने स्पष्ट बतावता कहेछे:-जे कोइ एम प्रशंसा करे के दानशाळा करवी, पाणीनी परवो मंडाववी विगेरेनुं 'दानछे ते घणा जीवोनो उपकार करनार छे' एम बोलनार परमार्थने नहिं समजनार प्रश्नंसाकरनार घणाजीवोना वधने इच्छेछे, कारणके ते दाननी प्राणातिपातकर्याविना उत्पत्ति थती नथी. वळी जे पोताने तीक्ष्ण बुद्धिवाळा अमे छीए एम माननारा अने आगमना सदुभावने नहीं जाणनारा ते दाननो निषेध करे ते सत्र अने अर्थना नहीं जाणनारा पाणीओनी आजीविकाना छेद करनारा छे. २० ते माटे कवा, तलाव यज्ञ विगेरे करवामां उजमाल थएला राजा के दोठ-साहकारे साधुओने पुच्छचं होय के 'ए कार्यमां पुण्यनो सदुभावछे के नहीं ? ' ते जणावे छे:-जो 'पुण्यछे' एमकहे तो अनंता सक्ष्म बादर जीवोना सदाए पाणत्यागज थाय अने लाभ तो थोडा जीवोने थोडुं थाय, माटे तेमां पुण्यछे एम न कहे, तो पुण्य नथी' एम निषेध कर्येंछते पण तेना अर्थिओने अंतराय थाय, एटलामाटे बन्ने प्रकारे 'पुण्यछे' के 'पुण्य नथी' एम साधुओ न बोले, किन्तु कोइथी पुच्छाएला साधुओ मौन-धारण करे. कोइ आग्रह करीने पूछे तो कहे के अमने बेता-

# आचार्यभो बात्चंद्रस्ररि प्रश्यमाळा पुस्तक ५३ सुं २५७

लीस दोषरहित आहार करुपे। आवा प्रकारना विषयमां साधुओने बोलवानो अधिकार नथी अने जो ए बन्ने प्रका-रमां बोले तो कर्मीनो बंध थाय माटे निरवद्यभाषा बोल-नारा म्रनिओ मोक्षने पामे छे. २१ '' वळी श्रीमश्चन्याक-रणसूत्रना संवर नामना बीजा अध्ययनमां जणावेलके के:-"सदुगुरुना समीपमां सांभळीने मुषावादविरतिरुप संबरना माटे अने सांभछवाथी हेय, उपादेय वचननं तात्पर्य रुडीरीते जाणीने बोलवुं जोइए. पण वेगथी-विकल्पना व्याक्कलपणाथी बोलवं नहीं, त्वरित-जतावळथी बोलवं नहीं वचननी चप-लताथी बोलवुं नहीं, अर्थथी कडवुं बोलवुं नहीं. अक्षरोथी कठण बोलवं नहीं, साइसथी-विचार्या विना बोलवं नहीं, बीजाने पीडाकरनार वचन बोलबं नहीं. त्यारे केवां वचन बोलवां ते बतावे छे:-पापरहित होय, सत्य होय, हितकारी होय, मित-थोडा अक्षरवाळ होय, पतीतिने उत्पन्न करनारं होय. शुद्ध-पूर्वे कहेला वचनना दोषोए करी रहित होय, संगत-पूर्वीपर विरुद्ध न होय. मणमणा अक्षरेकरी रहित होय अने पहेळां बुद्धिथी सारीरीते विचाराएळ होय, एवं वचन संयमी-साधुए अवसरे बोलवं, आवां सूत्रनां वचन होवाथी ते सिवाय बोळवं नहीं." बळी श्रीसत्रकतांगसत्रना अग्यारमा अध्ययनने विषे जणावेळछे के:-''एज हमणां कहेळ हिंसाथी निवर्तन छे ते जीवनुं स्वरुप तेना वधथी कर्मीना बंधने जाण-नार एज ज्ञानीओना ज्ञाननो परमार्थथी प्रधान सार छै. वळी

पण अहिंसा वस्तुपर आदर जणाववा माटे एज आगे कहेछे. जे माटे सुखनी इच्छाकरनार कोइपण जीवनी तेओ हिंसा करता नथी, खरुं ज्ञान पण तेज के परने पीडा न थाय तेम वर्तवुं, मतलबके पाणातिपातथी निवर्त्तेवं, एज अहिंसाप्रधान सि-दान्तने जाणीने मुमुश्च साधुनी इच्छित कार्यसिद्धि थायछे विशेषनी जरुर नथी.१०" आ प्रकारे सिद्धान्तनुं वचन होवा-थी कोइ जीवनी हिंसा करवी नहीं. वळी श्रीराजपश्रीय उपांग सुत्रमां सुर्याभदेवना नाटक करवा संबंधी पश्चना अधिकारने विषे जणावेल छे के:-'' हं इच्छुंछं देवानु वियनी आगे भक्ति-बहुमानपूर्वक श्रीगौतमादिक श्रमणनिर्ग्रन्थोने दिव्य एवी देवनी ऋदि. दिव्य एवी देवनी ग्रति.दिव्य एवी देवनो प्रभाव देखाडवा अने बत्रीस प्रकारना नाटचविधिने बताववा इच्छंछं. त्यारे अमण भगवान श्रीमहावीर सुर्याभदेवे एम कह्ये छते सूर्याभदेवना ए अर्थने आदर-स्वीकार न करे. सारुं पण न माने,मौन रहे.'' आवां आगमनां वचन होवाथी बोलवामां बहुविचार राखवो जोइए. आ जिनवरोनो उपदेश ते विधि-वादे मुनिओनो जाणवो, तेज निश्चयथी मुनिवरोए मयत्नपूर्वक सद्दृहवो जोइए. २५० । बीजुंअंग श्रीसृत्रकृतांगसूत्रना बीजा श्चतस्कंधना बीजा उद्देशानेविषे त्रण पक्ष बताव्या छे. १ धर्मपक्ष २ अधर्मपक्ष अने ३ मिश्रपक्ष. २५१ । ए त्रण पक्षोनो अवतार धर्मपक्ष अने अधर्मपक्ष ए वे पक्षनी अंदर करेल छै। पहेला धर्मपक्षमां सम्यग्रहष्टि अने बीजा अधर्मपक्षमां मिध्याद्दष्टि जीवो

## आचार्यभी भातृचंद्रसूरि प्रन्यमाळा पुस्तक ५३ मुं. २५९

बताव्याञ्चे. २५२ । अविरतिमिध्यादृष्टी एकान्ते अधर्मपक्षमां जाणवा कारणके तेओमां श्रतधर्म के चारित्रधर्म ए बन्नेमांथी एक पण होतो नथी। २५३। सम्यगृदष्टी अने विरति ए बन्ने धर्मपक्षमां छे,अविरतिसम्यगृदृष्टी पण सम्यक्त्वने छइ धर्मपक्षमां छै एम जाणवुं २५४। मिथ्यादृष्टी विरति चारित्रने छडने मिश्र-पक्षमां छै: सम्यग्दछीविरताविरति श्रावक पण मिश्रपक्ष-मांज जाणवा. २५५ । वळी मिथ्यादृष्टी विरति होय के अविरति होय तोषण ए अधर्मपक्षमां छे एम जाणवुं. कारणके तेमां सर्वथा कांइपण श्रुतधर्म नथी. २५६ । वळी सम्यगृद्दष्टी, सर्वेविरति होय. अविरति होय के विरताविरति होय, ते बधा धर्म पक्षमां जाणवा २५७। व्यवहारथी के निश्वयथी चारित्रधर्मनेलड जे मिश्रपक्षवाळा होय ते मिश्रपक्षने विशुद्ध एवा मुनि सार्र छे एम स्थापन न करे अने खोडुं छे एम निषेध न करे. २५८। म्रनि अधर्मपक्षनो प्रतिषेध करे अने धर्मपक्षनी स्थापना करे. आ त्रण प्रकारना धर्मपक्षोनी विचारणा सूत्रमां बतावेल हे. २५९ । ए कारणे उत्सर्गमार्गमां सावद्य एटलेपापनो लेशमात्र पण न होय अने अपवादमार्गमां पण निश्चयथी सावद्यनो कर-वामां विधि श्रीसिद्धान्तोमां बतावेल नथी। २६०। जिने भरोए छन्नस्थोने माटे कोड स्थळे अपवाद पण बतावेल है. पण ते कोइ मकारे पोतानी मेळे उत्पन्न थायछे: अने जे जेवो होय ते तेवो यथास्थित कहेवायः २६१। अने तेर्मा जे जिनवचन-ना अनुसारे होय ते निरवध-(पापरहितविधि) उपदेश जाणवो.

तेनाथी जे बीजो ते यथास्थित होय छे. २६२। जे चरितानुवाद छे, ते पण त्रण प्रकारनो छे:-अधर्मचरितानुवाद, धर्मचरिता-नुवाद अने मिश्रचरितानुवाद, तेमां पण साधुनो उपदेश पहेला कहेल्छे ते प्रमाणे जाणवो.२६३। छट्टं अंग श्रीज्ञातासुत्र अने पांचम्रं अंग श्रीभगवतीसुत्र, तेनी दृत्तिमां श्रीअभयदेवसुरिष द्रौपदीना अधिकारमां तथा श्रंखश्रावकना अधिकारमां जेम कहेल छे तेमज जाणबुं. २६४। एवीरीते त्रण प्रकारना उपदेश-विधिवादोपदेश, चरितानुवादोपदेश अने यथास्थितवादोपदेश ज्ञानीओए कहाछे, ते ब्यवहारथी तथा निश्चयथी आदर्वा योग्यने आदरवा, जाणवा योग्यने जाणवा अने छोडवा योग्यने छोडवा ५६५। वळी धर्मपक्ष, अधर्मपक्ष अने मिश्रपक्ष ए त्रण पक्ष कहा छे, एम अग्यारस्थानी-भेदी श्रीसुगुरुना सुख्यी जाणवा जोइए. २६६ । पवचन-सिद्धान्तना अनुसारे आ अग्यारढाणा जेम लखेला है तेम महेरवानी करी निश्चेशी एओने गीतार्थी ग्रहणकरनारा थाओ. २६७। जो सुत्र-प्रव-चनयी अविरुद्ध ए अग्यार बोलक्षे एम जो जाणो तो सममाण करो अने बीजाने सुप्रमाण करावो. जो एमां कांड़ पण सत्र-सिद्धान्तथी विरुद्ध लखायं होय तो तेनुं मने मिथ्यादुष्कृत थाओं २६८। अने वळी कंइ अपवादने सेवतो पण श्रीजिनेश्वरोए कहेल उत्सर्गमार्गनेज मानतो अने पोताना कारणने कहेंतो साधु विराधक न ज जाणवो. २५९। तेमज उपयोगवाम् साधु चारे भाषाने बोळतो पण आरा-

# आचार्यभीत्रातृचंद्रस्तरि ग्रन्थमाळा पुस्तक ५३ मुं. २६१

धकज श्रीपन्नवणाजी उपांग सूत्रमां कहेल्छे २७०। ए प्रकारना वर्णनो श्रीदक्षाश्रतस्कंघसत्र तथा श्रीटाणांगसत्र विगेरे सिद्धान्तोमां अपवादपदे ऋहाछे, त्यां बतावेछ बीना ते यथास्थित उपदेश छे एम जाणवं. २७१। कारणके ए ए स्थानोमां पवर्त्तवानो विधि श्रीजिनेश्वरोए बतावेल नथी. तेथी ए स्थानोने न करतो मुनि विराधक थतो नथी। २७२। तथा नदी उतरवानो उपदेश यथास्थित जाणवो अने तेनो जे विधि ते विधिवाद जाणवो, नदीनुं उतरबुं ते सावद्य छै. अने उतरवानो विधि ते निरवद्य छै २७३। जो नदीना पाणीमां एक पग पण धारण न करे तो पण दोष नथीज, पण जो नदीमां प्रवेश करता एक पग स्थलमां धारण न करे तो तेथी महादेश थाय छै. २७४। ' एवीरीते विचारीने गीताथों जे कहे ते सत्य 'ए उपदेश यथास्थित छे एम हुं जाणुंछं. २७५। जोके छद्मस्य अने केवली 'बाह्यथी 'समान क्रियाए नदीना जलने ओलंघेछे एटले नदी उतरे छे. तथापि ' निश्चयथी ' उत्स्रत्र तथा यथासूत्रपणुं रहेळछे, छग्नस्थनी प्रष्ट्रित उत्सुत्रवाळी अने केवळीनी प्रष्टति सुत्रानुसारी होय हे. २७६ । श्रीभगवतीसुत्रना सातमा, दशमा अने अहारमा शतकनेविषे तेमज तेना घणा स्थानोमां 'रियति ' एवं पद छे अने तेनो अर्थ 'चालेछे' एम कहेलछे अने अर्थमां पण समान छे-जुदापणुं नथी. २७७। जाेेेक खरेखर जिनेश्वरनो 'विधि' उपदेशके. ते। एमां एटलो अंतर केम? एवा

कारणे जिनेश्वरनो उपदेश निरवद्य होयछे. २७८। तथा श्रीभगवतीसुत्रना सातमा, दशमा अने अहारमा शतकनेविषे समानदंडक आ प्रमाणे जणावेल छे:-'' जेना क्रोध, मान, माया अने छोभ नाज्ञ पाम्या नथी, ते 'संपराइया' क्रिया करनारा जाणवा, ते उत्स्वेज चाले हे तथा जेओना क्रोध, मान माया अने छैाभ नाभ पामी गयाछै. तेओने 'इरिया-वहिया' क्रिया होयछे, ते सूत्रना अनुसारेज चालेछे. " आ प्रकारे सुत्रवचन है।वाथी, अनीवृत्तिमां ' एस्सुत्तमेवरी-यति ' तेमां ' उस्युत्त ' ए पढनं व्याख्यान ' अनाजाए 'एम करेल है. माटे गीताथेपि सत्र तथा अर्थ बन्ने विचारवा. ' अहासत्तं ' ए पदनं व्याख्यान ते। सगमज हे ज्यारे 'उत्स-त्रनो अर्थ अनाज्ञा त्यारे सूत्रनो अर्थ आज्ञाज जाणवो जोइए. निरवध-पापरहित आ उपदेशनो विधि श्रीसाधुरत्नगुरुना स्रपसाए जाणीने में संक्षेपथी कहेल छे. २७९ । खरतर गच्छ, तपगच्छ, उपकेशगच्छ, अथवा विशुद्ध उकेसगच्छ, कोरंटगच्छ, चित्रवाळगच्छ, मलधारीगच्छ, मवर-श्रेष्ट वह-गच्छ. अंचलगच्छ, नाणगच्छ, सांडेरगच्छ, पहिपुरगच्छ, आगमीयागच्छ, पुनमीयागच्छ विगेरे अने धर्मघोष नामे गच्छ बीजा पण गच्छवासीओ हालमां जे जे विद्यमानछे, ते ते सर्व पोतपोतानी परंपराने जणावे छे. तेमां पण जे जे श्रीजिन-वरनीआणाना अनुसारे पवर्ते छे. ते ते मने प्रमाण्छे. अने पे।ताना आचार्योए कहेल पण जे जे श्रीजिनवरनी आणाने

# आवार्यश्री ब्रातृचंद्रस्रि प्रन्थमाला पुस्तक ५३ मुं. २६३

अनुसारे होय ते ते मने प्रमाण छै. २८० थी २८३। जे कांइ प्रवचन-सूत्रसिद्धान्तथी विरुद्ध आ शास्त्र लखतां में लख्युं होय, तेनुं श्रीसंघसमस हुं 'मिच्छा मिदुक्क ं' आपुंछुं ते दुष्कृत मारुं मिध्या थाओ. २८४। विक्रम संवत् १५९१ ना वर्षे कार्तिकपूर्णिमाना दिवसे पार्श्वचंद्र-श्रीपार्श्वचन्द्रसूरिए आ समाचारी संवंधी ससपदीशास्त्र लख्युं छे. २८५। श्री सिद्धान्तमार्गना प्रेमी अने अत्यन्तश्रेष्ट वैरागी एवा साधु, साध्वी, श्रावक अने सुश्राविकाओने आ शास्त्र योग्य छे २८६। श्रीजिनवरकथित-सिद्धान्तरूप श्रेष्ट मानससरोवरमां रमणता करनार राजइंससरस्ता एवा जे शुद्ध-पवित्र धर्मनी सद्दृश्णा करेछे अने अनादिकालयो सिद्ध तथा सिद्धिने आपनार एवा धर्मनी प्रकृपणा करेछे,ते भाग्यशालीओने मारो नमस्कार थाओ.२८७। इति विश्ववंध श्रीमहावीरस्था मिश्रासननायकश्रीगौतमस्वामी,

सुधर्मस्यामिण्मुखसुविहितपरंपरायात-श्रीनागपुरीयवृहतःपागच्छनभोमणि-श्रीजिनागममार्गप्रकाशक-शासनप्रभावक सद्धर्मरक्षक-पंचाचारपालक-क्रियोद्धारकारकआत्मज्ञानरसिक-धर्मधुरंधरधोरी-स्वपरोपकारीआवालब्रह्मचारी-उग्रविहारी-धोरतपस्वी परमपुरुष-जगत्पुज्य-युगमधानश्रीमत्पार्श्वंदूरसूरीश्वरदादिषिरचित 'सप्तपदोशास्त्र' नो
गुजराती अनुवाद संपूर्ण। आ शास्त्र
अमणसंघनुं अखंडकल्याण
करनार अने शाश्वतीलक्ष्मी आपनार

# युगप्रधानश्रीपार्श्वचंद्रसूरीश्वरदादानो छंद।

(गिरिवर दरिसन विरला पावे-प देशी)

थुभ अनोपम पगलां सुंदर, रूप मनोहर महिमा मंदिर ।
चरणकमल बंदुं आणंदा, धन धन श्रीपार्श्वचंद्रमुरीन्दा। च०।?
वेल्लग पिता विमलादे माता, मागवंश गुरु जगत विख्याता। च०।
साधुरतनगुरुशिष्यशिरोमणि, गच्छपति वहतपगच्छनभोमणि रे
पंच महाव्रत पंचाचारा, पट्काय जीव प्रतिपालनहारा । च०
मोह मदन भड वैरिजिता, पंचइंद्रियजित बदीता ॥ च० ॥ ३
चिढुं प्रकारे धम प्रकाशे, उत्तम भवियण चित्त विकासे । च०
गुणसागरप्रतिवोधदिवाकर, सौम्यकलागुणे जित निशाकर ॥ ४
आगम निरवद्य मधुरी वाचा, बोधिवीज गुणदायक साचा।च०
करणी साची ने बुद्धि साची, पगटी धमसामग्री जाची।च०।६
निर्मेल शिवपद मारग साधे, शुद्धी जिनवर आण आराधे ।च०
श्रीपार्श्वचंद्रसुरि संकट चूरे, सकल कुशल वंछित फल पूरे।च० ६
श्रीसंघ चतुर्विध सेवा सारे, बहाण सम भवसायर तारे । च०
पूज्य अचिंत्य चिंतामणि कहीये, विमलचारित्र सेवक सुख लहीये७

श्रीपृज्याः पार्श्वचंद्रा जिनपतिसहज्ञा मार्गदा मार्गसंस्थाः, शृद्धाचारा यतीज्ञा व्रतसमितिरता ज्ञानदा ज्ञानवंतः । हन्ना तान् मर्त्यलोके नृपसुरमहिता वंदनार्थे सुरेंद्रै,— राहूताः स्वर्गलोके भवभयहरणाः ज्ञांतिदा मे भवंतु ॥१॥ तश्दा मे भवंत प्रष्टिदा मे भवंतु । श्रीरस्तु । सफलभविषु बोने ज्ञानविज्ञानपूर्णः । युणिगणगणनासु ज्ञानविज्ञानपूर्णः ॥ उदयगिरिषु चन्द्रः सद्वचोम्भोधिचन्द्रः । जयति जगति स्रितः सागरश्रन्द्रवर्षः ॥१॥



યશવ'ત શુક્રભાઈન્ડીંગ વર્કસ ઢાલગરવાડ—અમદાવાદ.